मानवाधिकार : नई दिशाएँ

सर्वे
भवन्तु सुखिन:

वार्षिक, अंक–4
2007

प्रकाशक : राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग
फरीदकोट हाउस,
कॉपरनिकस मार्ग,
नई दिल्ली – 110001,
भारत

© 2007 राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, भारत

प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के निजी विचार हैं। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, सलाहकार मण्डल या संपादक मण्डल का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

प्राप्ति स्थान : राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग
फरीदकोट हाउस,
कॉपरनिकस मार्ग,
नई दिल्ली -- 110001,
भारत
वेबसाईट : **www.nhrc.nic.in**
ई–मेल : **covdnhrc@nic.in**
मदद फोन : 23385368

MANAVADHIKAR-NAI DISHAAYEIN
An annual Journal of NHRC
in Hindi, Published by National Human Rights Commission
Faridkot House, Copernicus Marg,
New Delhi – 110001
website : www.nhrc.nic.in
E-mail : covdnhrc@nic.in
Madad Phone No. : 23385368

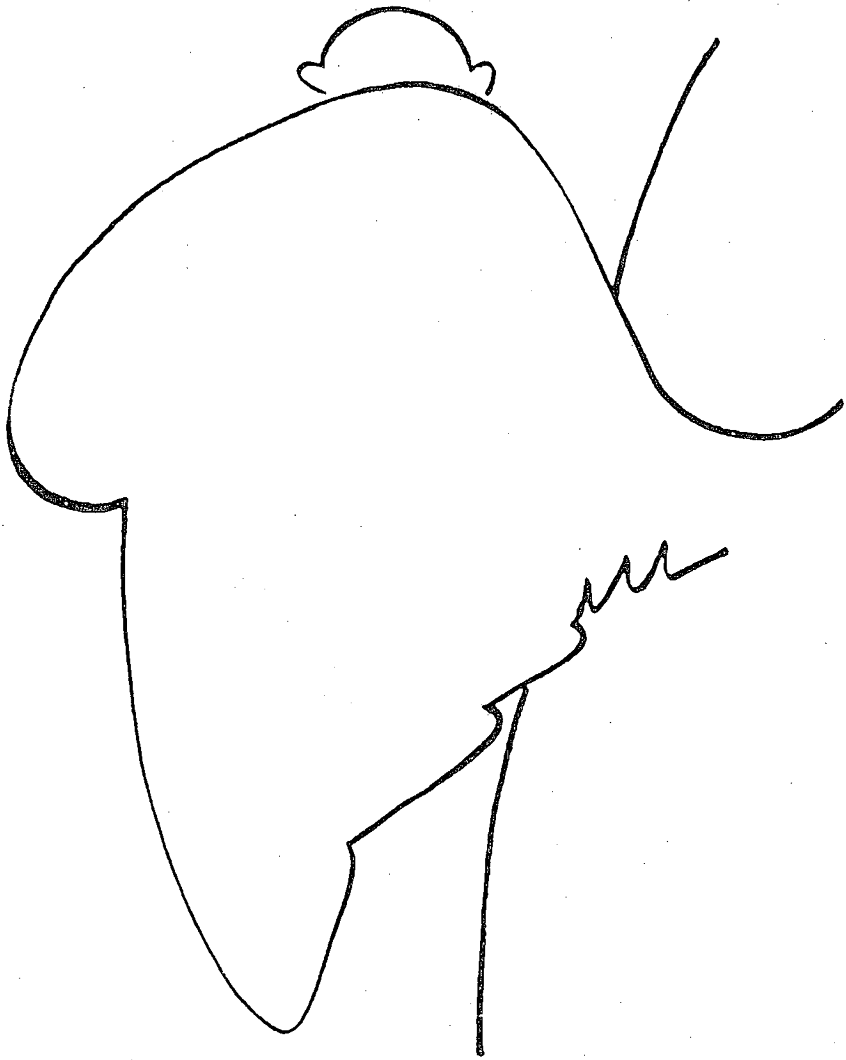

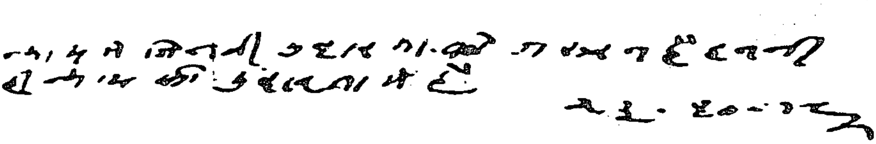

न्याय में जितनी उदारता की जरूरत है, इतनी ही न्याय की उदारता में है।

—महात्मा गाँधी
23-10-1945

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

अध्यक्ष

न्यायमूर्ति श्री सं. राजेन्द्र बाबु

सदस्य

न्यायमूर्ति डॉ0 शिवराज वी. पाटील
न्यायमूर्ति श्री वाई. भास्कर राव
श्री आर. एस. काल्हा
श्री पी. सी. शर्मा

महासचिव
श्री रवि कमल भार्गव

महानिदेशक
श्री दामोदर षडंगी

कार्यवाहक रजिस्ट्रार
श्री अनिल कुमार गर्ग

संयुक्त सचिव
श्रीमती अरुणा शर्मा

मुख्य समन्वयक (प्रशिक्षण)
श्री माइकल वी. शिरोमणि

सलाहकार मंडल

न्यायमूर्ति श्री सं. राजेन्द्र बाबु

श्री पी. सी. शर्मा

प्रो0 नामवर सिंह

श्री दामोदर षडंगी

श्रीमती अरुणा शर्मा

श्रीमती पी. वी. वलसला जी. कुट्टी
संयुक्त सचिव, राजभाषा विभाग

संपादक मंडल

प्रो0 नामवर सिंह	:	*मानद मुख्य संपादक*
अरुणा शर्मा	:	*संपादक*
सरोज कुमार शुक्ल	:	*सह संपादक*
डॉ. बालकृष्ण सिन्हा	:	*सहायक संपादक*

अकादमिक सहयोग : श्री राजेश कुमार कालड़ा
श्रीमती अंजलि सकलानी

कम्प्यूटरीकरण : श्रीमती सीमा शर्मा
श्रीमती सुमन माला सैनी
श्री गणेश प्रसाद

अनुक्रम

दो शब्द

आमुख

पुरोवाक्

संपादकीय

लेख

1.	मानव अधिकार शिक्षा	न्यायमूर्ति श्री वाई. भास्कर राव	3–11
2.	अंतरराष्ट्रीय पटल पर आयोग की भाषायी पहल	श्री पी. सी. शर्मा	12–20
3.	मानव अधिकार की कल्पना एवं आवश्यक तत्व	प्रो0 बी.बी. पांडे	21–26
4.	दाग़ दाग़ उजाला	श्री चमन लाल	27–38
5.	मानवाधिकार, भारतीय संविधान और इनका क्रियान्वयन	डॉ0 संजय दुबे	39–51
6.	वैवाहिक मानव अधिकार का विधिक प्रतिबिम्ब	डॉ0 एस. डी शर्मा	52–66
7.	स्वतंत्रता, समता एवं मानवाधिकार	डॉ0 के. एस. द्विवेदी	67–74
8.	मानव अधिकार संकल्पना, उद्भव, विकास और प्रसार	श्री विजय नारायण मणि त्रिपाठी	75–95
9.	मानव दुर्व्यापार एवं मानवाधिकार : एक त्रासदी	डॉ0 सरोज व्यास	96–101
10.	मानवाधिकार संरक्षण : भारतीय संस्कृति की वैचारिक परंपरा	श्री शिवराज सिंह रावत 'नि:संग'	102–117
11.	मानवाधिकार–वैश्विक संदर्भ में कर्तव्य	श्री एस. के. सिंह श्री मैथिली रमण प्रसाद सिंह	118–124

12. मानवाधिकार–जागरूकता की कमी	श्री महेन्द्र प्रताप गुप्त 'नभेन्द्र'	125–127
13. गांधी दर्शन : मानव अधिकारों की आधार पीठिका	श्रीमती अंशु गुप्ता	128–133
14. प्रेमचन्द्र के साहित्य में मानवाधिकार का यथार्थ	डॉ0 अप्रमेय मिश्र	134–138
15. बौद्ध धर्म और मानव अधिकार	श्री सरोज कुमार शुक्ल	139–142
16. भारतीय सिनेमा और मानवाधिकार	श्री हेमन्त राज पटेल	143–147

आयोग के कुछ महत्वपूर्ण निर्णय 149–160

- **पुस्तक समीक्षा** 163–169
- **आयोग के प्रकाशन** 170–171

दो शब्द

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की वार्षिक पत्रिका "मानवाधिकार : नई दिशाएँ" का चौथा अंक पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए हमें अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है।

यह प्रसन्नता का विषय है कि इस क्रम में मानव अधिकारों के अनेक पहलुओं का विवेचन किया गया है। यह पत्रिका एक ऐसा सशक्त माध्यम है जिसमें जन–चेतना जाग्रत करने, जनमानस को दिशा देने और मानवाधिकार की स्थिति की पड़ताल करने का काम जन भाषा में किया गया है। मुझे विश्वास है कि पत्रिका का यह अंक मानव अधिकार विषयक जानकारी को रोचक ढंग से प्रस्तुत कर आम आदमी तक उसे पहुँचाने में अवश्य सहायक होगा।

इस तरह के प्रकाशन लेखकों के सहयोग और रुचि के बिना संभव नहीं हैं। मुझे पूरा भरोसा है कि भविष्य में भी उनका सहयोग मिलता रहेगा। मानव अधिकार को एक वैचारिक–सामाजिक आन्दोलन के रूप में समाज में पैठ बनाने में इस पत्रिका की निर्णायक भूमिका होगी, इस आशा के साथ यह अंक पाठकों को समर्पित है।

सं। राजेन्द्र बाबु

(न्यायमूर्ति श्री सं० राजेन्द्र बाबु)

आमुख

आज़ादी के साठ वर्ष एक राष्ट्र के जीवन में बहुत मायने नहीं रखते। राष्ट्र का जीवन वर्षों में नहीं बल्कि शताब्दियों से निर्धारित होता है। लेकिन, आज़ादी के बाद छह दशक की यात्रा पूरी होना और उसमें अनवरत रूप से लोकतांत्रिक व्यवस्था का कायम रहना भी कोई कम महत्वपूर्ण नहीं है। आज़ादी के बाद हमने एक खुशहाल देश का सपना देखा था। एक ऐसा देश जिसमें भय, भूख और हर प्रकार के शोषण से मुक्ति मिल सके। हमारे संविधान में हर प्रकार के भेदभाव की समाप्ति के लिए पर्याप्त प्रावधान हैं। हमारी सरकारें भी इसके लिए प्रतिबद्ध रही हैं। इस दिशा में मानव अधिकारों की चेतना का असंदिग्ध रूप से विशेष महत्व है।

"मानवाधिकार : नई दिशाएं" नामक वार्षिक पत्रिका का प्रकाशन सामाजिक संवाद का मार्ग प्रशस्त करने के लिए आरंभ किया गया। विगत तीन अंकों में हमारा प्रयास रहा है कि मानव अधिकार से जुड़े विभिन्न प्रश्नों को उठाया जाए और उन पर सोचने की पहल की जाए। इस प्रयास में हमें सफलता भी मिली है और भारतीय समाज तथा संस्कृति को केन्द्र में रखकर अनेक सारगर्भित रचनाओं को प्रकाशित किया गया है। इस अंक में भी मानवाधिकार के विभिन्न पहलुओं पर विहंगम दृष्टि डालने का प्रयास किया गया है। मेरी हार्दिक कामना है कि यह क्रम विस्तृत होगा और यह प्रयास समाज को अपेक्षित दिशा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकेगा।

प्रेम चन्द्र शर्मा

(पी. सी. शर्मा)

पुरोवाक्

स्वतंत्रता और समानता लोकतांत्रिक व्यवस्था की रीढ़ है। सामाजिक विषमताओं तथा अज्ञानता के कारण लोकतांत्रिक व्यवस्था में सभी की भागीदारी अब भी नहीं हो पा रही है। फलतः मानव अधिकार सबंधी अनेक ऐसी घटनाएं हो रही हैं जो निन्दनीय हैं। ऐसी घटनाएं सामाजिक विकास और प्रगति के मार्ग में बाधक बन जाती हैं। भारत, मानव अधिकारों की स्थापना और संवर्धन की दिशा में निरंतर प्रयासरत है।

प्रस्तुत पत्रिका इसका एक जीवन्त प्रमाण है। इस पत्रिका की भूमिका परम्परा और आधुनिक संदर्भ के बीच सेतु बनाने की है। जहाँ एक ओर भारतीय परम्परागत चिन्तन को प्रस्तुत करने में यह प्रकाशन सफल हुआ है वहीं इसने वर्तमान समस्याओं पर भी विचार करने की भी चेष्टा की है। इस प्रकाशन से विशाल भारतीय समाज में मानव अधिकार की चेतना का प्रसार करने में निश्चित रूप से सहायता मिलेगी।

इसे ध्यान में रखते हुए इस अंक में मानव अधिकार शिक्षा तथा स्वतंत्रता एवं समानता पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। इसके अलावा इसमें मानव अधिकार की संकल्पना, उद्भव, विकास और प्रसार के साथ–साथ मानव–दुर्व्यापार जैसी समस्याओं पर चेतना जगाने का भी प्रयास किया गया है। आर्थिक विकास, सामाजिक न्याय के बिना बेमानी है और सामाजिक न्याय की स्थापना में मानव अधिकारों की जानकारी और उसे उपलब्ध कराने की प्रक्रियाओं की जानकारी बहुत आवश्यक है। मुझे विश्वास है प्रस्तुत पत्रिका का वर्तमान अंक इस तरह के दायित्व का निर्वाह कर सकेगी।

(रवि कमल भार्गव)

सम्पादकीय

भारतीय समाज अनेक चुनौतियों का सफलतापूर्वक सामना करते हुए वैश्विक मंच पर अपना महत्वपूर्ण स्थान बना रहा है। फिर भी गरीबी–अमीरी के बीच की खाई अब भी बनी हुई है और समाज में अभावों की चिन्ता अनेक तबकों, समूहों में देखी जा सकती है। विकास की चकाचौंध में हम इस तथ्य को नहीं झुठला सकते। कारण अनेक हैं पर उनकी दुहाई देना काफी नहीं है। आवश्यक यह है कि हम उनका समाधान करें। समाज के हर सदस्य को उसका हक मिल सके। यह एक विशेष दायित्व है जिसके प्रति एक राष्ट्र के रूप में हमारी असंदिग्ध प्रतिबद्धता है। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग इसी प्रतिबद्धता की श्रृंखला में एक महत्वपूर्ण कड़ी है।

"मानवाधिकार : नई दिशाएँ" पत्रिका के प्रकाशन का आरंभ इसी संकल्प के साथ शुरू हुआ था कि मानव अधिकारों पर गंभीर चिन्तन आरंभ हो और वह आम आदमी तक भी पहुंच सके। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर इस पत्रिका के पिछले अंकों में मानव अधिकार के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालने वाली रचनाओं को सम्मिलित किया गया। तदनुसार विभिन्न वर्गों, समूहों, दशाओं को ध्यान में रखकर लेखकों ने समाज की मानसिकता को बदलने की कोशिश की है।

इस पत्रिका का आरंभ से ही यह प्रयास रहा है कि भारतीय परंपरा और परिदृश्य को सामने रखा जाए। उसकी प्रासंगिकता को कम आंकना ठीक नहीं है, जैसा कि प्रायः होता है। इसे ध्यान में रखकर मानव अधिकार विषयक चिन्तन को समृद्ध करने के लिए विभिन्न क्षेत्रों के अधिकारी विद्वानों से लेख आमंत्रित किए गए और प्रकाशित किए गए। पत्रिका का यह प्रयास रहा है कि सरल और सुबोध भाषा में विचारों को प्रस्तुत किया जाए ताकि वे सहज रूप से सबके लिए ग्राह्य हो सकें। साथ ही पत्रिका के हर अंक में नए–नए विषयों पर सामग्री प्रस्तुत की गई है।

आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है – भारतीय समाज को मानव अधिकारों की शिक्षा देना और इन अधिकारों के प्रति लोगों को जागरूक करना। माननीय सदस्य न्यायमूर्ति श्री वाई. भास्कर राव का लेख 'मानव अधिकार शिक्षा' तथा 'अंतरराष्ट्रीय मंच पर आयोग की भाषायी पहल' शीर्षक से आयोग के माननीय सदस्य श्री पी. सी. शर्मा द्वारा लिखा गया लेख इस अंक की आधारपीठिका को स्थापित करने में मददगार एवं प्रेरणाप्रद साबित होंगे। आपने पिछले अंकों में देखा होगा कि मानव अधिकारों पर चर्चा करते हुए हमने हमेशा भारतीय संस्कृति, परंपरा एवं उसके रीति–रिवाजों को नजरंदाज़

नहीं किया है। इसी कड़ी में इस अंक में हम 'वैवाहिक : मानव अधिकार का विधिक प्रतिबिम्ब'; 'स्वतंत्रता, समता एवं मानवाधिकार'; 'मानवाधिकार संरक्षण : भारतीय संस्कृति की वैचारिक परंपरा' तथा 'बौद्ध धर्म में मानवाधिकारों की प्रासंगिकता' संबंधी लेखों को प्रकाशित कर रहे हैं। यही नहीं, आधुनिक संदर्भ में हम गाँधी दर्शन के साथ–साथ प्रेमचंद जैसे कालजयी साहित्यकार के योगदान को भी इस अंक में प्रकाशित कर उनकी स्मृतियों को सजोने का प्रयास कर रहे हैं। 'भारतीय सिनेमा और मानवाधिकार' विषयक लेख आपके दृष्टिकोण को विस्तृत फलक पर आलोकित करने में सहायक सिद्ध होंगे। 'दाग़ दाग़ उज़ाला' तथा 'मानव अधिकार की कल्पना एवं आवश्यक तत्व' शीर्षक से प्रकाशित लेख भी आपको रोचक लगेंगे। अन्य लेख तो सदा की तरह अपनी उपयोगिता प्रमाणित करेंगे ही।

पत्रिका के इस अंक में मानव जीवन से जुड़े इन्हीं सामाजिक–सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक पहलुओं को केन्द्र में रखकर इन लेखों को प्रकाशित करने का एक मात्र उद्देश्य यह है कि विचार विनिमय, विमर्श–परामर्श व संवाद के माध्यम से मानव अधिकारों के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है साथ ही भारतीय जन–समुदाय से मानव अधिकारों के साथ सीधा सरोकार भी स्थापित किया जा सकेगा।

आशा है हमारा यह प्रयास मानव–अधिकारों की चेतना के व्यापक विस्तार के लक्ष्य को पाने के साथ–साथ मानव अधिकारों की सोच के नए मार्ग को भी प्रशस्त करेगा। मुझे विश्वास है यह अंक आपको पसंद आएगा। हमें आपकी सार्थक प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा रहेगी।

अरुणा शर्मा

(अरुणा शर्मा)

लेख

मानव अधिकार शिक्षा

* न्यायमूर्ति वाई. भास्कर राव

मानव अधिकार और शिक्षा एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़े हैं। मानव अधिकारों को समाज में स्थापित करने के लिए यह जरूरी है कि मानवीय गरिमा और प्रतिष्ठा के बारे में जन–जागरूकता लाई जाए। जागरूकता और चेतना के लिए शिक्षा ही सर्वाधिक उपयुक्त साधन है इस दृष्टि से शिक्षा के अधिकार के अंतर्गत ही मानवाधिकारों की शिक्षा भी शामिल है। यहां शिक्षा का उद्देश्य और उसका दायरा भी अत्यंत विस्तृत है। इसमें व्यक्तित्व का समग्र विकास सबसे महत्वपूर्ण है। जिसकी परिधि में बौद्धिक, मानसिक, नैतिक और शारीरिक विकास समाहित है। ऐसी शिक्षा ही समाज में शोषण और उत्पीड़न पर रोक लगाने में कारगर सिद्ध हो सकती है। इसी से संवेदना, सहिष्णुता और शांति का मार्ग प्रशस्त होगा। शिक्षा में सैद्धांतिक पहलुओं के साथ–साथ व्यावहारिक पहलू पर विशेष रूप से ध्यान देना होगा। तभी हम जीवन की उन कठोर सच्चाइयों से परिचित हो सकेंगे जिनकी जड़ गरीबी, शोषण और भेदभाव की मानसिकता में है। हमारा कर्तव्य है कि हम नौजवान पीढ़ी को अच्छे संस्कारों और गुणों से पोषित करें।

हम जानते हैं कि मानव अधिकारों की शिक्षा, शिक्षा के अधिकार का एक अनिवार्य अंग है तथा हाल में इसे एक मानव अधिकार के रूप में बड़े पैमाने पर मान्यता दी गई है। अपने तथा दूसरों के अधिकारों और आजादी के ज्ञान को मानवीय प्रतिष्ठा तथा सभी के अधिकारों के सम्मान की गारंटी का मूलभूत साधन माना जाता है। मानव अधिकारों की शिक्षा का मूल भाव यह है कि शिक्षा का उद्देश्य केवल प्रशिक्षित और व्यावसायिक कामगारों को ही तैयार करना नहीं है बल्कि समाज में परस्पर व्यवहार करने का कौशल रखने वाले व्यक्तियों का विकास करने में सहयोग देना भी है। मानव अधिकार शिक्षा का उद्देश्य यह है कि विद्यार्थी एवं छात्र समाज में परिवर्तन लाने तथा समाज को साथ लेकर चलने की योग्यता विकसित करें। यह शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो विद्यार्थियों को अच्छा नागरिक बना सके और वे सामाजिक–आर्थिक विकास के लिए पूरी क्षमता

* सदस्य, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, नई दिल्ली (भारत)

के साथ जुड़ सकें। शिक्षा ही लोगों को सशक्त करती है, उनके जीवन स्तर में सुधार लाती है तथा सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक नीतियों की निर्णयात्मक प्रक्रिया में भागीदारी के लिए उनकी क्षमता में बढ़ोतरी करती है। हमें ऐसे समाज का निर्माण करना चाहिए जिसमें शिक्षा मानव व्यक्तित्व के पूर्ण विकास तथा मानव अधिकारों और मूलभूत स्वतंत्रता के लिए आदर को सुदृढ़ करने पर केन्द्रित हो।

महात्मा गाँधी ने कहा था कि यदि स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद मूल्यों पर आधारित शिक्षा नहीं दी गई तो हमारे देश का भविष्य क्या होगा? उनके शब्द इस प्रकार हैं :

"हमें याद रखना चाहिए कि हमारे लोग स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत बाद सुख–शांति की तलाश न करने लगे। जब हम स्वतंत्र हो जाते हैं तो चुनाव–व्यवस्था की खामियाँ, अन्याय, अमीर वर्गो का आतंक तथा प्रशासन को चलाने का दायित्व भी हमारे सामने आना निश्चित है। लोग यह महसूस करने लगेंगे कि अंग्रेजों के राज में अधिक न्याय था, बेहतर प्रशासन था, शांति थी और स्वतंत्रता के बाद के दिनों की तुलना में पहले के प्रशासकों में बहुत अधिक ईमानदारी थी। यद्यपि स्वतंत्रता का केवल एक लाभ होगा कि हमें दासता से तथा उसके कारण होने वाले अपमान के कलंक से मुक्ति मिल जाएगी। लेकिन, यदि शिक्षा का प्रसार होगा तो आशा बनी रहेगी। इससे लोगों में अपने बाल्यकाल में शुद्ध आचरण, ईश्वर में विश्वास तथा प्रेम की विशेषताओं का विकास होगा। स्वराज हमें केवल तभी खुशी दे सकेगा यदि हम इस कार्य में सफलता प्राप्त कर लेंगे। अन्यथा, भारत, घोर अन्याय और शासकों के अत्याचार का घर बन जाएगा।''(दिनांक 24.1.1922 का पत्र जो दैनिक हिन्दुस्तान में 15.8.1965 को पुनः प्रकाशित हुआ था)"

इस सदी के महान व्यक्तियों के विचार, समुचित शिक्षा के अधिकार के महत्व पर प्रकाश डालते हैं।

शिक्षा के मानव अधिकार का उद्देश्य सुख-शांति प्राप्त करना है। अतः इसे साक्षरता तक सीमित नहीं किया जाना चाहिए। शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तित्व का समग्र विकास यानी बौद्धिक, मानसिक, नैतिक एवं शारीरिक विकास करना है। व्यक्ति को समाज के लिए लाभदायक बनाना होना चाहिए। जब राष्ट्र या समाज पर्याप्त संख्या में इस प्रकार के व्यक्तियों को बनाने में सफलता प्राप्त करने में सक्षम हो पाता है, तभी सुख-शांति आ पाती है। इस पहलू पर तैतिरीयोपनिषद् में शिक्षावल्ली नामक अध्याय आठ में इन शब्दों में प्रकाश डाला गया है :–

युवास्यात्साधु युवाध्ययनकः, अशिष्टो दुर्धिष्ठो बलिष्ठोः
तस्मै पृथिवी सर्वम्, वित्तस्य पूर्णस्यात् स एको मानुषा आनंदः

"सुख-शांति यही है कि युवा चरित्रवान, विद्वान, दृढ़ तथा शक्तिशाली (नैतिक एवं शारीरिक रूप से) हों। तभी संपूर्ण जगत समृद्धि एवं वैभव से युक्त होगा। यह मानव की सुख-शांति का मापदण्ड है।"

यह अध्याय अत्यधिक शिक्षाप्रद है। यह घोषित करता है कि शिक्षा का अर्थ बौद्धिक, नैतिक अर्थात् मानव अधिकार शिक्षा एवं शारीरिक शिक्षा है। इसमें आगे लिखा है कि किसी राष्ट्र की वास्तविक सुख–शांति और समृद्धि उचित शिक्षा, जो व्यक्तित्व का समग्र विकास करती है, के माध्यम से सुसज्जित ऐसे मानवों की संख्या के अनुरूप होती है जो शारीरिक, बौद्धिक एवं नैतिक मनोबल से युक्त हैं।

औपनिवेशिक शासन से मुक्ति तथा लोकतांत्रिक शासन प्रणाली को अपनाने के बाद भी, विश्व के अधिकतर भागों में, हमने मानवाधिकारों का गंभीर उल्लंघन देखा है। इसका कारण है राष्ट्रवाद, जातिवाद, विदेशी–द्वेष, कामुकता और सांप्रदायिक असहिष्णुता। यह प्रवृत्ति अत्यधिक घृणित रूपों में दिखाई देती है जिनमें महिलाओं का बलात्कार, शोषण, बच्चों की अवहेलना एवं दुराचार तथा विदेशियों के प्रति तथा विदेशियों द्वारा, शरणार्थियों, विस्थापितों, अल्पसंख्यकों, स्थानीय लोगों, व्यक्तियों तथा अन्य कमज़ोर वर्गों पर सतत् अत्याचार शामिल हैं। इसके अलावा नई जैव–चिकित्सा तकनीकों से तथा एचआईवी/एड्स से पर्यावरणीय विकृति का खतरा भी है।

मानव अधिकारों के बढ़ते उल्लंघन को देखते हुए विशेष और पूर्वाभासी शैक्षिक नीतियों की जरूरत है ताकि हिंसक संघर्षों और संबंधित मानव अधिकारों के हनन को रोका जा सके। शिक्षा का उद्देश्य लोकतांत्रिक मूल्यों को पोषित करना, उनके लिए संवेदना उत्पन्न करना तथा मानव अधिकारों और लोकतंत्र पर आधारित सामाजिक परिवर्तन लाना होना चाहिए। मानव अधिकारों का प्रभावी प्रयोग, व्यक्तियों में समाज के प्रति उत्तरदायित्व की भावना पर भी निर्भर है।

मानव अधिकार संबंधी विश्व सम्मेलन की वियना घोषणा में तथा कार्रवाई के कार्यक्रम में (धारा 1 के विशेष पैरा 33 में) उल्लेख था कि मानव अधिकार शिक्षा, प्रशिक्षण तथा जन–सूचना, समुदायों के बीच मज़बूत और सौहार्दपूर्ण संबंधों के संवर्धन एवं प्राप्ति के लिए और आपसी समझदारी, सहिष्णुता तथा शांति के लिए आवश्यक है। सम्मेलन में सिफारिश की गई थी कि राज्य को निरक्षरता के उन्मूलन के प्रयास अवश्य करने चाहिए और मानवीय व्यक्तित्व के पूर्ण विकास की ओर तथा मानव अधिकार तथा मूलभूत स्वतंत्रता के लिए आदर की भावना को सुदृढ़ करने के लिए शिक्षा को निर्देशित करना चाहिए। इसने सभी राज्यों एवं संस्थानों से आह्वान किया था कि वे मानव अधिकारों, मानवीय कानून, लोकतंत्र एवं कानून के शासन को, औपचारिक एवं अनौपचारिक सभी शैक्षणिक संस्थानों के पाठ्यक्रमों में विषयों के रूप में शामिल करें। विश्व सम्मेलन के सुझावों के अनुसरण में, संयुक्त राष्ट्र महासभा ने दिनांक 23.12.1994 की संकल्प संख्या 49/1804 के तहत 1.1.1995 से प्रारंभ होने वाली 10 वर्षीय योजना (मानव अधिकार शिक्षा के लिए यू एन दशक) की घोषणा की।

व्यक्तियों तथा समूहों को मानव अधिकार शिक्षा देने का उद्देश्य यह है कि इससे

मानव अधिकारों की अवमानना करने के दृष्टिकोण में परिवर्तन होगा। साथ ही, समाज की सोच भी बदलेगी। सभी मानव अधिकारों का आदर होगा और सभ्य समाज शांतिपूर्ण साझेदारी के आदर्श में रूपांतरित हो जाएगा। मानव अधिकारों के विषय में शिक्षा प्राप्त करना ही अपने–आप में काफी नहीं है बल्कि निश्चय ही मानव अधिकारों के हनन की समाप्ति तथा लोकतंत्र, विकास, सहिष्णुता और आपसी आदर पर आधारित शांति की संस्कृति का निर्माण करने का एक साधन है। मूलभूत उद्देश्य, मानव अधिकारों की संस्कृति का निर्माण करना और लोकतांत्रिक समाज का विकास करना है जो प्रत्येक व्यक्ति और समूहों को अहिंसक एवं सौहार्दपूर्ण तरीकों का उपयोग करते हुए उनके भेदों एवं विवादों का समाधान करने में सक्षम बनाए। परिणामस्वरूप, प्रत्येक व्यक्ति द्वारा दूसरों के मानव अधिकारों का आदर करना समाज की संस्कृति बन जाएगी तथा विकसित समाज का मार्ग प्रशस्त होगा।

हमें हमेशा यह ध्यान में रखना होगा कि मानव अधिकारों का संरक्षण एवं संवर्धन मूलभूत उद्देश्य है तथा यह मनुष्य की भलाई के लिए है। समाज को सुग्राहीकरण की संपूर्ण प्रक्रिया से एवं मानव अधिकारों संबंधी जागरूकता फैलाने से पूर्ण लाभ प्राप्त करना चाहिए। महाविद्यालय स्तर की शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर मानव अधिकार पाठ्यक्रमों संबंधी सिफारिशों को प्रतिपादित करते समय हमने इस दृष्टि से भी ध्यान दिया है।

इस संदर्भ में, पाठ्यक्रम के एक भाग के रूप में क्षेत्रीय–दौरों तथा विभिन्न मानव अधिकार विषयों जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, दलितों, जनजातियों, किसानों, महिलाओं, बच्चों आदि के बारे में कॉलेज स्तर के विद्यार्थियों द्वारा प्रोजेक्ट रिपोर्ट तैयार करने पर बल दिया गया है। ये विषय विभिन्न राज्यों में अलग–अलग हो सकते हैं। ये क्षेत्रीय–दौरे छात्रों को व्यक्तिगत अनुभव प्रदान करेंगे तथा उन्हें समाज के कमजोर वर्गों के समक्ष पेश आ रही गरीबी, शोषण, भेदभाव आदि जैसी जीवन की कठोर सच्चाइयों से सामना करने का अवसर मिलेगा। इस प्रकार के वास्तविक जीवन के अनुभव छात्रों को मानव अधिकारों के सिद्धान्तों के साथ भावनात्मक रूप से जुड़ने तथा उन्हें संवेदनशील बनाने में लम्बे समय तक साथ देंगे। उनके क्षेत्र–अध्ययन के परिणामों को समय–समय पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू जी सी) के सामने रखना चाहिए। आयोग को उच्चाधिकार प्राप्त समिति गठित करनी चाहिए जो नोडल एजेंसी के रूप में सहायता प्रदान करें। यह एजेंसी सभी अध्ययन–रिपोर्टों को संकलित करके उनका विश्लेषण करे तथा ये रिपोर्टें सरकार को सौंपे, जो शासन की नीतियों के प्रतिपादन में अथवा कानून निर्माण या कानूनों की समीक्षा करने में आधारभूत सूचना का काम करेंगी। छात्रों द्वारा जिज्ञासावश की गई पूछताछ निष्पक्ष होगी और उत्तर देने वालों द्वारा दिए गए प्रत्युत्तर सच्चे होंगे तथा रिपोर्ट एक वास्तविक तस्वीर प्रस्तुत कर पाएगी। ये रिपोर्टें सरकार के लिए नीतियों के प्रतिपादन में सहायक सामग्री होंगी। उदाहरण के लिए किसी खास

राज्य में किसी विश्वविद्यालय विशेष के छात्रों को किसानों द्वारा की जाने वाली आत्महत्याओं का विषय सौंपा जा सकता है। छात्र उन क्षेत्रों का दौरा करेंगे जहाँ पर फसल की कटाई के मौसम से लेकर फसल की बिक्री तक की अवधि के दौरान किसानों द्वारा की जाने वाली आत्महत्याएं अधिक थीं तथा उन तथ्यों का अवलोकन करेंगे जिनके कारण उन्हें आत्महत्या जैसा कठोर कदम उठाना पड़ा।

विषय को दार्शनिक मोड़ देने के लिए भी मुझे क्षमा करें। सभी मनुष्य जन्मजात निष्कपट, ईमानदार, अनुरागी, दयालु और उदात्त होते हैं। जीवन की कठोर वास्तविकताएं और परिस्थितियाँ कभी–कभी उन्हें उनके मूल चरित्र से पथभ्रष्ट कर देती हैं तथा अपने आप को जीवित और संपोषित रखने के लिए वे अवांछित गुणों और मार्गों को अपना लेते हैं। फिर इच्छा और लालच उन्हें घेर लेते हैं और जीवित रहने और संपोषित होने के लिए प्रारम्भ में अपनाए गए अवांछनीय गुण मनुष्य को उलझा देते हैं तथा मनुष्य अपनी इंद्रियों और अपने द्वारा सृजित भौतिक संसार का गुलाम बन जाता है। यह हमारा कर्तव्य है कि हम नौजवान पीढ़ी, जो इस समय स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में शिक्षा ग्रहण कर रही है, को अपने अंतर्निहित अच्छे संस्कारों और गुणों की मूल प्रकृति से जुड़े रहने के लिए प्रोत्साहित व प्रेरित करें। उन्हें इसके लिए साहस और शक्ति प्रदान करें तथा उन्हें यह विश्वास दिलाएं कि जीवन में उनकी अपनी खुशी, अपने बंधुजनों की खुशी पर निर्भर है और यही मानव अधिकारों की आधारशिला भी है। यदि विद्यार्थियों को अपने बंधुजनों के जीवन की वास्तविक दयनीय स्थिति से अवगत कराया जाता है तो उनके हृदय का द्रवित होना स्वाभाविक है और जो उन्हें उनके जीवन में नजर आने वाले प्रत्येक गरीब, दलित व्यक्ति को निश्चित रूप से सहायता और समर्थन करने की शपथ लेने के लिए मजबूर करेगा। विद्यार्थियों को पंडित जवाहरलाल नेहरू के शब्दों का स्मरण कराना अनिवार्य है:–

"हमारी पीढ़ी के महान लोगों की यही आकांक्षा रही है कि प्रत्येक व्यक्ति की आँख का आँसू पोंछा जाए। संभवतः यह हमारी ताकत से बाहर हो, परन्तु जब तक लोगों की आँखों में आँसू और पीड़ा है तब तक हमारा कार्य सम्पूर्ण नहीं होगा।"

एक अन्य अज्ञात लेखक का खुशी और अन्य लोगों की सेवा करने के संदर्भ में एक उद्धरण स्मरण आता है :–

"खुशी व्यक्तिगत वस्तु नहीं है। जब आप किसी व्यक्ति को राहत पहुँचाते हैं तो इससे उस व्यक्ति के चेहरे पर फिर से मुस्कान आती है, ऐसे में केवल वही व्यक्ति ही इससे लाभान्वित नहीं होता बल्कि इससे आपको भी लाभ होता है अर्थात् आप भी उसकी खुशी में भागीदार बनते हैं। सबसे बड़ी खुशी हमें तब प्राप्त होती है जब हम दूसरों के कष्टों का निवारण करते हैं। इसलिए यदि हमें शांति में रहने की आदत है तो यह हमारी स्वाभाविक प्रकृति होगी कि हम मन में सेवाभाव रखें। शांतिपूर्ण वातावरण

का आनंद, उत्पीड़न से मुक्ति का आनंद, चिंताओं से मुक्ति, भूख से मुक्ति खुशी की ऐसी वास्तविक आधारशिलाएँ हैं जिनसे व्यक्ति पर सेवा के मार्ग पर चलने को प्रेरित होता है।"

संयुक्त राष्ट्र के एक सदस्य राज्य के रूप में, भारत, मानव अधिकार संधियों का अनुसमर्थन कर चुका है। इन संधियों अर्थात् विश्व मानव अधिकार घोषणा–पत्र का अनुच्छेद 26(2) में मानव अधिकार शिक्षा का प्रावधान निहित है और इस प्रकार अपने द्वारा की गई इन संधियों के अंतर्गत, भारत जनता में मानव अधिकार शिक्षा, प्रशिक्षण और जन-सूचना का प्रसार करने के लिए बाध्य है।

संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार शिक्षा दशक के तत्वावधान में मानव अधिकार शिक्षा के संबंध में राष्ट्रीय कार्य-योजना का प्रारूप तैयार करने के उद्देश्य से भारत सरकार द्वारा एक प्रारूप समिति गठित की गई। इस समिति ने राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग से मानव अधिकार शिक्षा पर राष्ट्रीय कार्य-योजना का प्रारूप तैयार करने का अनुरोध किया। यह कार्य वर्ष 2001 में पूरा कर दिया गया। राष्ट्रीय कार्य-योजना निम्नलिखित बिन्दुओं पर अपना ध्यान केन्द्रित करती है।

- मानव अधिकारों के प्रति जन–जागरूकता लाने के लिए कार्यनीति तैयार करना।
- मानसिक सोच में बदलाव लाकर एवं शिक्षा और प्रशिक्षण के माध्यम से मानव अधिकार संबंधी विशिष्ट लक्षित समूहों को सुग्राही बनाकर सामाजिक सशक्तीकरण के संवर्धन हेतु कार्यनीति तैयार करना। स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय, सरकारी अधिकारी जिनमें सेना और अन्य सशस्त्र बल, विशेष रूप से पुलिस, अर्ध–सैनिक बल और जेल अधिकारी, संसदीय सदस्य, कानून अधिकारी और न्यायिक अधिकारी भी शामिल हैं, की विशिष्ट लक्षित समूह के रूप में पहचान की गई है।

मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 की धारा 12 (छ) और (झ) आयोग को यह दायित्व सौंपता है कि वह मानव अधिकारों के क्षेत्र में अनुसंधान करे और इसको बढ़ावा दे तथा समाज के विभिन्न वर्गों में मानव अधिकार शिक्षा का प्रसार करे और प्रकाशन, मीडिया, सेमिनार और अन्य उपलब्ध साधनों के माध्यम से इन अधिकारों के सरंक्षण के लिए उपलब्ध उपायों के प्रति जागरूकता को बढ़ावा दे। इस कार्य के लिए सम्पूर्ण देश और इसके देशवासियों में मानव अधिकार संस्कृति पैदा करने की जरूरत है।

पिछले तेरह वर्षों में आयोग ने विशेष रूप से मानव अधिकार शिक्षा को बढ़ावा देने हेतु कई कदम उठाए हैं।

आयोग ने हमारे देश की मिट्टी में इसकी जड़ें गहराई तक ले जाने के लिए सर्वप्रथम हमारे समाज के तीन मुख्य क्षेत्रों पर ध्यान केन्द्रित किया जिसमें राजनीतिक दल, सभी स्तरों के कार्यपालक प्राधिकारी, शिक्षाविद्, अध्यापकों और छात्रों के लिए मानव अधिकार साक्षरता की जरूरत के अनुसार पाठ्यक्रमों का प्रबोधन करने वाले अधिकारी शामिल हैं।

स्कूल के विभिन्न स्तरों के लिए उचित रूप से पाठ्यक्रम तैयार करने हेतु आयोग ने शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय और राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान और प्रशिक्षण संस्थान (एन.सी.ई.आर.टी.) के साथ कई बैठकें की हैं।

आयोग ने सरकार से भी आग्रह किया है कि मानव अधिकार शिक्षा के महत्व पर उचित ध्यान दे। आयोग को प्राप्त सूचना के आधार पर सरकार ने मानव अधिकार पाठ्यक्रम को विश्वविद्यालयों में शुरू करने और मानव अधिकार शिक्षा संबंधी पाठ्य सामग्री किट तैयार करने पर कार्रवाई शुरू कर दी है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से प्राप्त वित्तीय सहायता से मानव अधिकार पर 35 विश्वविद्यालयों/कॉलेजों ने प्रमाण–पत्र, उपाधि–पत्र और स्नात्तकोत्तर पाठ्यक्रम शुरू कर दिए हैं।

जहाँ तक दूरवर्ती शिक्षा का प्रश्न है, आयोग को शिक्षा विभाग द्वारा यह सूचना दी गई है कि माध्यमिक एवं उच्च स्तर पर समाज विज्ञान पाठ्यक्रम हेतु राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय द्वारा तैयार माड्यूल में मानव अधिकार के विषय को भी रखा जा सकता है। आयोग ने इस संभावना का स्वागत किया क्योंकि आयोग का मानना है कि मानव अधिकार साक्षरता हेतु सभी उपलब्ध संभाव्य साधनों का प्रयोग किया जाना चाहिए। आयोग, दूरवर्ती शिक्षा कार्य प्रणाली का प्रयोग कर मानव अधिकार में कार्यक्रम शुरू करने के संबंध में इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय से सम्पर्क बनाए हुए है।

राष्ट्रीय मानव अधिकार संस्थान (एन.आई.एच.आर.) को नेशनल लॉ स्कूल ऑफ इंडिया यूनिवर्सिटी, बेंगलूरु में स्थापित किया गया। आयोग ने राष्ट्रीय मानव अधिकार संस्थान में मानव अधिकारों पर एक चेयर की स्थापना की है और इस चेयर से संबंधित व्यय का भार वहन करने हेतु एक न्यास भी तैयार किया है।

सिविल सेवकों, पुलिस अधिकारियों, जेल अधिकारियों, न्यायिक अधिकारियों, अर्ध–सैनिक बलों और सशस्त्र सेना के अधिकारियों, शिक्षाविदों, गैर–सरकारी संगठनों और मानव अधिकार कार्यकर्ताओं के लिए निरंतर प्रशिक्षण कार्यक्रम/कार्यशालाएँ/सेमिनार आयोजित किए जा रहे हैं।

आयोग हिंदी और अंग्रेजी में मासिक न्यूज़ लेटर, वार्षिक पत्रिका, वार्षिक रिपोर्ट और मानव अधिकारों से संबंधित विभिन्न विषयों पर नियम पुस्तकों, पुस्तिकाओं, सूचना पुस्तिकाओं (किट), पोस्टरों आदि का प्रकाशन भी करवाता है। इन प्रकाशनों का उद्देश्य

मानव अधिकारों के संरक्षण और मानव गरिमा के संवर्धन से संबंधित नई सोच को पैदा करना है। मानव अधिकार शिक्षा से संबंधित सामग्री पर आयोग ने एन.सी.ई.आर.टी. के सहयोग से मानव अधिकारों पर एक स्रोत पुस्तक (सोर्स बुक) का भी प्रकाशन किया है जिसका बाद में हिंदी और उर्दू में भी अनुवाद किया गया। 'लिंग, जाति, अशक्तता और धर्म पर आधारित भेदभाव' नामक एक अन्य पुस्तिका का भी जनवरी 2003 में प्रकाशन किया गया जिसका मूल उद्देश्य अध्यापकों का सुग्राहीकरण करना था।

वर्ष 2004 में मानव अधिकार के विभिन्न विषयों पर 'अपने अधिकार जानें' अंकमाला में आठ पुस्तिकाओं का प्रकाशन किया गया। इनके व्यापक प्रसार हेतु इन्हें क्षेत्रीय भाषाओं में अनूदित किया गया है। वर्ष 2004 में अनुसूचित जातियों पर होने वाले अत्याचारों की एक रिपोर्ट अर्थात् 'अनुसूचित जातियों के विरुद्ध अत्याचार रोकथाम संबंधी रिपोर्ट' भी प्रकाशित की गई। आयोग ने 2005 में 'मानव अधिकार, अशक्तता और कानून' नामक एक नियमावली का प्रकाशन करवाया। 10 दिसम्बर, 2005 को 'नौसिखियों के लिए मानव अधिकार शिक्षा' नामक एक पुस्तिका का भी प्रकाशन किया गया।

आयोग ने स्कूली स्तर पर मानव अधिकार शिक्षा के स्तर का आकलन करने के उद्देश्य से स्कूली स्तर पर मानव अधिकार शिक्षा पर स्थिति दस्तावेज तैयार करने के लिए 2005 में एक अध्ययन करवाया। इन स्थिति दस्तावेजों का मुख्य उद्देश्य यह पता लगाना था कि क्या विभिन्न स्तरों पर मानव अधिकार शिक्षा मौजूदा स्कूली पाठ्यक्रम का एक अभिन्न हिस्सा है। इस अध्ययन से पता चलता है कि मानव अधिकार शिक्षा को एक अलग विषय के रूप में नहीं पढ़ाया जाता। बहरहाल, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (एन.सी.ई.आर.टी.) और राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (एस.सी.ई.आर.टी.), दिल्ली ने प्राथमिक स्तर से उच्च माध्यमिक स्तर तक के विभिन्न विषयों में मानव अधिकार अवधारणा को शामिल किया है।

आयोग ने विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में स्नातकोत्तर उपाधि–पत्र / स्नातकोत्तर उपाधि के लिए मानव अधिकार शिक्षा पर सामान्य पाठ्यक्रम तैयार करने का प्रयास किया है। इसके अतिरिक्त, यह महसूस किया गया है कि विश्वविद्यालय और कॉलेजों को उपाधि–पत्र एवं प्रमाण–पत्र पाठ्यक्रमों में एक सामान्य पाठ्यक्रम सामग्री तैयार करने की जरूरत है। यह महसूस किया गया है कि प्रसंविदा, संधियों और अभिसमयों के संदर्भ में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर होने वाले बदलावों को ध्यान में रखते हुए यू.जी.सी. द्वारा मानव अधिकार, कर्तव्य और शिक्षा पर मौजूदा मॉडल पाठ्यक्रम की पुनः समीक्षा की जरूरत है ताकि इस पाठ्यक्रम को अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुरूप बनाया जा सके जिससे कि वे न केवल विदेशी विश्वविद्यालय में मानव अधिकार शिक्षा ग्रहण कर रहे विद्यार्थियों के साथ कड़ी प्रतिस्पर्धा में आगे निकल सकें बल्कि परिशोधित पाठ्यक्रम में सभी सुसंगत घटकों को शामिल कर मानव अधिकार शिक्षा ग्रहण करने के इच्छुक अंतरराष्ट्रीय विद्यार्थी समुदायों को भी आकर्षित कर सकें।

इस बात पर भी बल देने की आवश्यकता है कि राज्य मानव अधिकार आयोग राज्य महिला आयोग इत्यादि द्वारा मानव अधिकार प्रशिक्षण कार्यक्रमों/पाठ्यक्रमों को चलाया जाए जिससे पंचायती राज संस्थानों के कार्यकर्ताओं को लाभ मिल सके ताकि पंचायती राज संस्थान गाँव में लोगों के लिए अपने स्तर पर मानव अधिकार शिक्षा कार्यक्रम चला सकें।

देशभर में मानव अधिकार शिक्षा के प्रसार और जागरूकता फैलाने में आयोग के इस दिशा में किए गए प्रयासों में से एक प्रयास, स्कूली स्तर पर अध्यापनवृत्ति से जुड़े लोगों हेतु मानव अधिकार शिक्षा कार्य–प्रणाली और विश्वविद्यालय स्तर पर पाठ्यक्रम के संबंध में संस्तुतियाँ तैयार करना भी है।

अंतरराष्ट्रीय पटल पर आयोग की भाषायी पहल

* पी. सी. शर्मा

भाषा हमारे भावों की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है। हमारे अस्तित्व को प्रकट करने में भाषा सबल है। किसी भी रचनाकार के कार्य भाषा के बिना अधूरे हैं। किसी भी राष्ट्र की उन्नति में भाषा का महत्वपूर्ण योगदान होता है। भाषा के इसी महत्व को ध्यान में रखते हुए मानव अधिकार आयोग ने लोक कल्याण एवं मानव अधिकारों के संरक्षण के लिए अनेक कार्यक्रम शुरू किए हैं तथा हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं के माध्यम से जन–जन तक अधिकारों की चेतना पहुँचाने में प्रयासरत है। इसमें कोई अपवाद नहीं है कि अंग्रेजी आज व्यापार एवं विज्ञान की प्रमुख भाषा है परन्तु भारतीय समाज के लिए व्यवहार की भाषा अंग्रेजी नहीं बल्कि हिंदी है। अतः हिंदी के प्रचार–प्रसार के लिए अध्यापकों एवं विद्वानों को हिंदी सिनेमा जैसे सशक्त माध्यम से जुड़ना होगा तथा जन–साधारण की भाषा को ज्ञान के प्रसार का माध्यम बनना होगा।

भारत वर्ष अपने इतिहास के विशिष्ट दौर से गुज़र रहा है। राष्ट्रीय जीवन में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में क्रांतिकारी परिवर्तन आ रहे हैं। सदियों पुरानी रूढ़ियों और विसंगतियों को नष्ट कर नई अवधारणाएँ स्थापित हो रही हैं। इस नई दुनिया में यह कोशिश भी जारी है कि हम अपनी सभ्यता और संस्कृति के उन मूल तत्वों को न खो दें जो शताब्दियों से विश्व में हमारी एक अनूठी पहचान का आधार रहे हैं।

भाषा एक अद्‌भुत रचना है। यह रचना इतनी सबल हो जाती है कि रचनाकार उस पर हर काम के लिए निर्भर हो जाता है। भाषा से अलग उसकी कोई पहचान ही

---

* सदस्य, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, दिल्ली (भारत)
न्यूयार्क (अमरीका) में आयोजित आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर दिया गया अध्यक्षीय भाषण

मुश्किल हो जाती है। उसकी अस्मिता, उसका अस्तित्व भी भाषा पर निर्भर करता है। लेकिन, भाषा और अस्मिता का रिश्ता जितना सहज है, उतना ही जटिल भी है, क्योंकि भाषा एक नहीं है। हम अनेक भाषाओं का प्रयोग करते हैं। उनके बोलने वालों की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक हैसियत भी अलग–अलग होती है। हमारा विश्व बहुभाषिक है। विभिन्न देशों में अनेक भाषाएं बोली जाती हैं और उनका संबल पाकर देश और समाज अपने विकास या ह्रास की ओर अग्रसर होते हैं। भाषा और राष्ट्रीय विकास कितने जुड़े हैं यह अमेरिका, इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी और जापान के साथ अधिकांशतः अलग–थलग रहे चीन को भी जोड़ लें तो स्पष्ट हो जाएगा। भाषा का जैसा बहुभाषी रूप भारत में है वह शायद ही कहीं अन्यत्र मिले।

इसलिए विष्णुपुराण में हमारे संपूर्ण देश का चित्र इस प्रकार उभर कर आया है–

उत्तरं यत् समुद्रस्य, हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्
वर्षं तद् भारतं नाम, भारती यत्र संततिः।।

अर्थात् –समुद्र (यानी हिंद महासागर) के उत्तर में और हिमालय के दक्षिण में फैला जो देश है, वह भारत वर्ष के नाम से प्रसिद्ध है। इस विस्तीर्ण प्रदेश के निवासी भारतीय कहलाते हैं।

भारतवासी स्नान करते समय जब सात नदियों का स्मरण करते हैं, तब वे भारत की इसी भावनात्मक एकता की अभिव्यक्ति करते हैं। वे कहते हैंः–

गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिंधु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु।।

अर्थात्–गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिंधु, कावेरी आदि नदियाँ जो इस प्रदेश में एक–दूसरे से काफी दूर बह रही हैं, उनका जल–इकट्ठा कर मैं स्नान के उपयोग मैं लाता हूँ।

भाषा उन्नति का मूल है, इसमें किसी तरह का संदेह नहीं होना चाहिए, कारण कि हमारे सारे प्रयास इसी के माध्यम से होते हैं, इसी से जुड़े होते हैं। हम भाषा में ही जीते हैं। भाषा हमारे व्यवहार में घुली–मिली है।

सुभाषचंद्र बोस ने राष्ट्रीय एकता के संदर्भ में हिंदी के महत्व के बारे में कहा था–

"प्रांतीय ईर्ष्या–द्वेष दूर करने में जितनी सहायता हिंदी प्रसार से मिलेगी, उतनी दूसरी चीज से नहीं।"

इसी संदर्भ में रवींद्रनाथ ठाकुर का यह कथन बहुत ही समीचीन है:–

"आधुनिक भारत की संस्कृति एक विकसित शतदल कमल के समान है, जिसका एक–एक दल एक–एक प्रांतीय भाषा और उसकी साहित्य–संस्कृति है। किसी एक को मिटा देने से उस कमल की शोभा ही नष्ट हो जाएगी। हम चाहते हैं कि भारत की सारी प्रांतीय बोलियां, जिनमें सुंदर साहित्य की सृष्टि हुई है, अपने–अपने घर में (प्रांत में) रानी बन कर रहें और आधुनिक भाषाओं के हार की मध्य मणि हिंदी भारत–भारती होकर विराजती रहे।"

यहाँ तक कि, विदेशी विद्वानों ने भी, हिंदी की जरूरत को महसूस किया था। मैं आप का ध्यान फ्रेंच विद्वान गार्सा द तासी के शब्दों की ओर आकर्षित करना चाहूंगा। उन्होंने 18वीं शताब्दी के मध्य में यह बात कही थी–

"मैंने तहरीर के लिए यह जबान अखतियार की है, जो हिंदुस्तान के कई सूबों की जबान है। क्योंकि, इसे आम लोग बखूबी समझते हैं और बड़े तबके के लोग भी पसंद करते हैं।"

हिंदी के महत्व के संदर्भ में एक अन्य विदेशी विद्ववान प्रो0 व्हिन्स्की का यह उद्धरण बहुत ही प्रासंगिक है:–

"भारत की आत्मा को पहचानने के लिए हिंदी भाषा का ज्ञान अत्यंत आवश्यक है"।

हमारी अस्मिता प्रकट रूप में, भाषा में प्रतिबिम्बित होती है, और उसी से बनती बिगड़ती है। भाषाओं के साथ भेद–भाव बरतने के कारण कुछ समूह समाज के केन्द्र में और बहुतेरे सीमा पर चले जाते हैं। ऐसा होना, महज आँकड़ों का खेल न होकर, जिन्दगी का आँकड़ा होता है। उसका जीवन की गुणवत्ता से सीधा रिश्ता होता है। भारत के विभिन्न, भाषा–भाषी समूहों की आर्थिक स्थिति, समाज में वर्चस्व, राजनैतिक हिस्सेदारी और उनके द्वारा प्रयुक्त भाषा का आंकड़ा, स्पष्टतः भाषा और अस्मिता के बीच, गहरे रिश्ते को दिखाता है। भाषा की शक्ति और उसके प्रयोक्ता समाज की शक्ति के बीच सीधा रिश्ता है। भाषा की स्वीकृति और समाज की स्वीकृति साथ–साथ चलती है। यदि इसके अर्थ का विस्तार करें तो यह प्रकट होता है कि भाषायी असमानता आर्थिक असमानता की जननी है और पोषक भी। थोड़ा और गौर करें तो यह असमानता बहुतों को मनुष्यता के अधिकार से भी वंचित कर देती है तो कुछ को मालामाल। कष्ट की बात यह है कि ऐसी असमानता स्वदेश में ही है और अब भी एक बहुत बड़ा हिस्सा भारतीय समाज में अपने मूल मानव अधिकारों से वंचित है।

हिंदी एक जीवन्त भाषा है। इसमें बड़ी सुरम्यता और उदारता है। हिंदी के यही तो वे गुण हैं जो इसे दूसरी भाषाओं के शब्दों और रूपों को आत्मसात करने की असीम

क्षमता प्रदान करते हैं। हिंदी हमें दक्षिण एशिया के देशों में ही नहीं बल्कि पूरे एशिया और मॉरीशस, फिजी, सूरीनाम, ट्रिनीडाड व टोबेगो जैसे अन्य देशों के साथ भी जोड़ती है।

आज के युग में यत्र–तत्र–सर्वत्र उदारवाद, बाज़ारवाद और वैश्वीकरण (ग्लोबलाइज़ेशन) का बोलबाला है। हमारा देश ही नहीं, हमारी भाषा हिंदी भी इससे अछूती नहीं है। इसे रहना भी नहीं चाहिए। आए दिन समाचार–पत्रों और टीवी के कार्यक्रमों में, विशेष रूप से इनके विज्ञापनों में, बच्चों के लिए प्रसारित किए जा रहे मनोरंजक और शैक्षिक कार्यों में इसके दर्शन हो रहे हैं। विश्वास कीजिए, वैश्विक वाणिज्यीकरण के फलस्वरूप हिंदी का महत्त्व किसी तरह से कम होने वाला नहीं है। इससे तो इसका विस्तार ही होगा। 'कृण्वंतो विश्वं आर्यम्' के उद्घोष के समान ही हिंदी विश्व स्तर पर फैलेगी, फैल रही है। अभी छह महीने पहले हुआ 'विश्व हिंदी दिवस' तथा हैदराबाद में संपन्न प्रवासी भारतीयों का सम्मेलन इसका मूर्त गवाह है। प्रवासी भारतीयों के संदर्भ में एक विद्वान का निम्न कथन कितना प्रासंगिक है, जरा गौर करें:–

जिस तरह हिमालय भारत माता का अडिग प्रहरी है, उसी तरह गोस्वामी तुलसीदास का 'रामचरितमानस' देश–विदेश में बसे प्रवासी भारतीयों की भाषा, धर्म, संस्कृति और सभ्यता की रक्षा करने वाला सजग प्रहरी है।

इन आयोजनों के माध्यम से वैश्विक हिंदी का स्वरूप और उसकी व्यावसायिक, वाणिज्यिक, वैज्ञानिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक उपलब्धियाँ उजागर हुई हैं और हर वर्ष 10 जनवरी को अधिकाधिक उद्घटित होती रहेंगी। विश्व में हिंदी के प्रचार–प्रसार में विदेशी हिंदी विद्वानों, भारतवंशी प्रवासियों और अनिवासी भारतीयों का योगदान हमारे देश के हिंदी विद्वानों, साहित्यकारों, भाषा प्रेमियों आदि के योगदान की तुलना में किसी तरह से कम आँका नहीं जाना चाहिए। भारत को विकसित राष्ट्र बनाने और हिंदी को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पुष्पित और पल्लवित करने में सबका समान योगदान सराहनीय है। वह दिन दूर नहीं जब संयुक्त राष्ट्र संघ के मंच पर हिंदी को मान्यता मिलेगी। हिंदी का विस्तार और अधिक तेजी से होगा। इस संबंध में स्व. दुष्यंत कुमार की एक कविता से आपको रूबरू कराना चाहता हूँ:–

हो गई है पीर पर्वत सी पिघलनी चाहिए।
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।

मानव अधिकार आयोग ने लोक कल्याण एवं मानव अधिकारों के संवर्धन और संरक्षण की अनेक योजनाओं और कार्यक्रमों को शुरू किया है। जहां एक ओर आयोग ने अपने कार्यक्रमों के माध्यम से संपूर्ण भारत में सामाजिक न्याय की स्थापना को पुष्ट किया है, वहीं दूसरी ओर निकट भविष्य में हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के माध्यम

से मानव अधिकार सामग्री प्रस्तुत कर जन–जन तक इन अधिकारों की चेतना पहुंचाने का व्रत भी लिया है।

आयोग ने अनुभव किया कि चूंकि भारत की अधिसंख्य जनता मूलतः गैर–अंग्रेजीदां है और इस तरह केवल अंग्रेजी में ही मानव अधिकारों की जानकारी उपलब्ध रहना नाकाफी होगा। कहना न होगा कि ज्ञान के बिना मनुष्य बहुत सारी कठिनाइयों का सामना करता है और अनेक ज़ायज़ लाभों और हकों से भी हाथ धो बैठता है। भाषा के आधार पर अवसरों की असमानता भारतीय समाज का नकारात्मक पक्ष है। नौकरियों, सामाजिक–आर्थिक भागीदारी और प्रगति का न्योता अंग्रेजी परस्तों को अधिक और अंग्रेजी के प्रसाद से वंचित व्यक्तियों को कम मिलता है। हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं को बोलने वाले अनपढ़ों पर तो दुहरी मार है। इन सब कठिनाइयों के मद्देनजर आयोग ने हिंदी में और क्रमशः अन्य भारतीय भाषाओं के माध्यम से मानव अधिकार विषयक साहित्य को उपलब्ध कराने की व्यापक चेष्टा शुरू की। आयोग ने हिंदी और भारतीय भाषाओं के माध्यम से देश की सांस्कृतिक एवं भावनात्मक एकता द्वारा देश को एक सूत्र में जोड़ने की पहल शुरू की है। इस दृष्टि से आयोग ने संयुक्त राष्ट्र द्वारा प्रकाशित मानव अधिकार से संबंधित अंतरराष्ट्रीय प्रपत्रों (International Instruments) के संकलनों का हिंदी रूपांतर प्रस्तुत किया है जिससे मानव अधिकार के क्षेत्र में हिंदी में अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों, शोधार्थियों एवं स्वैच्छिक संगठनों और वकालत के पेशे से जुड़े व्यक्तियों के साथ–साथ आम आदमी को भी इन दस्तावेजों के बारे में जरूरी जानकारी मिल सके। लगभग 1,600 पृष्ठों के तीन खंड वाले ये 'अंतरराष्ट्रीय प्रपत्र' मानव अधिकारों के ऐसे पक्षों का समावेश करते हैं जो आज के उभरते अंतरराष्ट्रीय मुद्दों और भूमंडलीकरण की ओर बढ़ते व्यापक समाज की समस्याओं को संबोधित करते हैं।

वैसे तो ये अंतरराष्ट्रीय प्रपत्र मूल रूप से अंग्रेजी में भी नहीं है ये तो फ्रांसीसी, स्पेनी, चीनी व रूसी भाषाओं से अंग्रेजी में अनूदित हैं। इन अंतरराष्ट्रीय प्रपत्रों का अंग्रेजी से हिंदी में अनुवाद कराने में आयोग ने वैश्विक धरातल पर एक नई पहल की है जिससे न केवल अंतरराष्ट्रीय क्षितिज में हिंदी की प्रतिष्ठा एवं उसके कद को ऊंचा करने में हमें मदद मिलेगी बल्कि उसके सामर्थ्य की पुष्टि द्वारा संयुक्त राष्ट्र में उसकी दावेदारी को भी बल मिलेगा।

आयोग ने विशेष रूप से उल्लेखनीय एक और भी प्रयास किया है। आयोग के पास देश के कोने–कोने से आवेदन पत्र, शिकायतें और अनुरोध आते हैं जो आम आदमी की भाषा में होते हैं न कि कानूनी भाषा में। उनकी शब्दावली तकनीकी कम, पर जीवन में प्रयुक्त शब्दों की होती है। भाषा यदि संचार का माध्यम है तो वह जड़ माध्यम न होकर गतिशील माध्यम है। उसमें समय के साथ–साथ बदलाव भी आते रहते हैं। यह सोचकर आयोग ने निश्चय किया कि आम आदमी की शब्दावली को भी देखा जाए और

मानव–अधिकार से जुड़ी अभिव्यक्तियों को स्वीकार किया जाए। आयोग ने इस कार्य में रुचि ली और हमें प्रसन्नता है कि इस तरह आयोग में प्राप्त शिकायतों से जुड़ी सामग्री का अध्ययन कर 14000 से कुछ अधिक शब्द चुने गए जो भोजपुरी, मगही, अंगिका, राजस्थानी, मालवी, हरियाणवी जैसी अंचलों की बोलियों में प्रयुक्त हैं। इन शब्दों के अंग्रेजी पर्याय सुनिश्चित किए गए और 'अनुप्रयुक्त मानव अधिकार शब्दावली' शीर्षक से उसका प्रकाशन किया गया।

आयोग हिंदी में "मानवाधिकार : नई दिशाएं" नाम से एक वार्षिक पत्रिका भी कई वर्षों से निकाल रहा है। इसमें प्रकाशित सामग्री न केवल शोधपरक, सूचनाप्रद एवं महत्वपूर्ण है अपितु इसे स्तरीय बनाने में समाजशास्त्रियों, प्रशासन एवं पुलिस से जुड़े हुए वरिष्ठ अधिकारियों, मनोवैज्ञानिकों तथा मानव अधिकार से जुड़े कार्यकर्ताओं का भी निरंतर सहयोग मिल रहा है। इस पत्रिका के द्वारा आयोग न केवल भारतीय पारम्परिक समाज में मानवाधिकारों की अवधारणा को सामने लाने का प्रयास कर रहा है; अपितु आज के संदर्भ में मानव अधिकारों की दृष्टि से महत्वपूर्ण एवं ज्वलंत प्रश्नों पर भी विचार किया जा रहा है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि मानव अधिकार के क्षेत्र में हिंदी की उपस्थिति गौरतलब है।

आज जहां सभी देश एक–दूसरे से जुड़ रहे हैं और व्यापार, सामाजिक, शैक्षिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में सहयोग के अवसर बढ़ रहे हैं वहीं विभिन्न देशों के बीच आपसी रिश्तों में कई पेचीदगियां भी पैदा हो रही हैं। अभी ताजा घटना है:– हैदराबाद के सूर्यनारायण की अफगानिस्तान में हत्या, जो स्पष्टतः मानव अधिकार के हनन के दायरे में आती है। तात्पर्य यह कि मानव अधिकारों की अंतरराष्ट्रीय परिधि स्थानीय और व्यापक दोनों ही दृष्टियों से हमें समेटती है।

यह सच है कि वैश्वीकरण के इस मौजूदा दौर में अमेरिका और ब्रिटेन का अंग्रेजी अश्वमेध–प्रभाव बहुत तेज़ी से दुनिया को अपने नेटवर्क में समेट रहा है, पर हमें इस बदलती दुनिया में अपने पैरों पर खड़ा होने के लिए नियमों–कानूनों को ठीक से जानना आवश्यक है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त राष्ट्र संघ में अंग्रेजी के अलावा जिन भाषाओं, अर्थात् स्पेनी, चीनी, रूसी, फ्रांसीसी और अरबी को मान्यता प्राप्त है उसमें आज भी हिंदी भाषा शामिल नहीं है। ऐसा तब है जब आज हिंदी दुनिया की पहली तीन सबसे बड़ी जनसंख्या द्वारा बोली जाने वाली भाषाओं में से एक है। स्पष्ट रूप से यह राजनैतिक वर्चस्व का संकेत है। तथ्य यह भी है कि बोलने वालों की दृष्टि से चीनी भाषा के बाद हिंदी का विश्व में दूसरा स्थान है। कुछ शोधार्थियों ने तो इसे पहला स्थान भी दिया है। दूसरा तथ्य यह है कि भारतीय संदर्भ में अंग्रेजी की सम्यक् जानकारी रखने वालों का प्रतिशत ज्यादा नहीं है। ऐसी परिस्थिति में हमारा यह कर्तव्य बनता है कि हम मानव अधिकारों की बातें यहां की जनता की भाषा में, उनकी मातृभाषा में जन–जन तक पहुंचाएं।

अपनी मातृभाषा में हृदय बोलता है और उसमें काया और आत्मा दोनों का निवास रहता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य होने के नाते भारत की जो ज़िम्मेदारियाँ बनती हैं उनका अनुपालन ही राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की स्थापना के मूल बिन्दु हैं। भारतीय लोकतंत्र की सक्रिय संस्थाओं में से एक के रूप में इसने अपनी पहचान स्थापना के समय से ही बनाए रखी है और इसके सतर्क हस्तक्षेप के अनेक उदाहरण समकालीन इतिहास में मौजूद हैं। इस नाते इसे एक ऐसे सजग प्रहरी की भूमिका में देखा जाता है जिसकी उपेक्षा भारतीय व्यवस्था का कोई हिस्सा नहीं कर सकता।

किन्तु सजगता और सतर्कता केवल उन संस्थाओं के ही आवश्यक गुण नहीं हैं जिन्हें लोकतांत्रिक कार्यकलाप की निगरानी करनी पड़ती है। यह भी उतना ही जरूरी है कि भारत के साधारण जन समूह की भागीदारी सम्पूर्ण व्यवस्था में केवल मतदान के अधिकार का प्रयोग करने तक ही सीमित न रहे अपितु उस व्यवस्था के सभी अंगों से तथा उनकी परिचालन–शैली से वह परिचित हो। इसके लिए कारगर उपाय यही है कि भारतीय भाषाओं में लोकतांत्रिक मान्यताओं को प्रतिष्ठित करने वाला साहित्य सुगमता से उपलब्ध हो ताकि लोग जान सकें कि वे जिन अनुशासन के अंगीभूत होकर जीवन जी रहे हैं, उनका आधार क्या है?

यह सच है कि आज अंग्रेजी न केवल व्यापार और विज्ञान की एक प्रमुख भाषा है अपितु वर्तमान राजनैतिक–सामाजिक परिदृश्य के सभी क्षेत्रों में उसका अधिकार है। प्रशासन और अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों के सभी विमर्श मुख्यतः अंग्रेजी भाषा में ही होते हैं। विधि–व्यवस्था, अधिकार और कर्तव्य, मानव और प्रकृति के सम्बन्ध, मुख्यतः अंग्रेजी में सोचे और गढ़े जाते हैं। भारत भी इसका अपवाद नहीं है। चूँकि अंग्रेजी राज भारत में लम्बे अरसे तक रहा जिसके दौरान शिक्षा–व्यवस्था में प्रायः सर्वत्र अंग्रेजी की ही प्रधानता रही। इसलिए भारतीय चिन्तन प्रणाली में कुछ मूलभूत परिवर्तन हुए जिनका अभिलक्षण यह है कि सारा कामकाज और विचार–विमर्श अंग्रेजी के माध्यम से होता है किन्तु जब इन संवादों के निष्कर्ष भारतीय समाज में प्रसारित करने होते हैं तो यही अंग्रेजी भाषा बाधा बन जाती है क्योंकि राजकाज की भाषा भले ही अंग्रेजी हो, व्यापक भारतीय समाज के लिए व्यवहार की भाषा अंग्रेजी नहीं है। इसलिए भारतीय समाज के बारे में भारतीय समाज से बातचीत करने के लिए भारतीय भाषाओं का कोई विकल्प नहीं है।

किसी भी भाषा के साहित्य का परस्पर आदान–प्रदान करने में अनुवाद की विशेष भूमिका रहती है। इसके द्वारा जहां हम विश्व के सम्पूर्ण साहित्य से परिचित होते हैं वहीं दूसरी ओर उसकी सभ्यता, संस्कृति, आचार एवं व्यवहार से भी अपने को जोड़ने में सहजता का अनुभव करते हैं। इतिहास इस बात का गवाह है कि अनुवाद के माध्यम

से ही हमारे देश का संपूर्ण वैदिक, पौराणिक, औपनिषदिक एवं अन्य धर्मों के उत्कृष्ट ग्रंथों के साहित्य को विश्व के कोने–कोने तक पहुंचाया जा सका। उसी प्रकार हम भी विश्व की अनेक भाषाओं के उत्कृष्ट साहित्य से न केवल परिचित हुए अपितु वहां की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं भौगोलिक स्थापनाओं से भी हमारा रिश्ता मजबूत हुआ। आशा करते हैं कि अनुवाद के द्वारा एक बार फिर हम सम्पूर्ण विश्व में सामासिक संस्कृति (Composite culture) को बढ़ावा देने में सफल हो सकेंगे। हिन्दी सिनेमा की लोकप्रियता से भी देश–विदेश में सरल और सरस हिन्दी का प्रसार हो रहा है। अतः हिन्दी के प्रचार–प्रसार के लिए हिन्दी के अध्यापकों और विद्वानों को स्वयं को हिन्दी सिनेमा के सशक्त माध्यम से जोड़ना होगा।

आज विज्ञान और प्रौद्योगिकी का युग है। इसलिए जन साधारण की भाषा को सामान्य भावों और स्थापित परम्परा की कल्पनाओं के अलावा इस नए ज्ञान के प्रसार का माध्यम भी बनाना होगा। इसके लिए हिन्दी को विज्ञान से जुड़े नए विचारों और वैज्ञानिक शब्दों को ग्रहण करना होगा। इससे जहां एक ओर हम भाषायी मानकीकरण की ओर उन्मुख होंगे वहीं दूसरी ओर शब्दों के प्रयोग में एकरूपता (uniformity) के भी दर्शन होंगे। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि आज के संदर्भ में भाषा को मानकीकृत रूप (Standard form) प्रदान करने में मीडिया ने अहम भूमिका निभाई है। यदि हिन्दी को विश्व की एक प्रमुख भाषा बनाना है तो इसे आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी के साथ–साथ मीडिया से भी दोस्ताना संबंध बनाना होगा। लेकिन हिंदी से लगाव का अर्थ यह नहीं कि दूसरी भाषा का विरोध किया जाए, चाहे वह विदेशी भाषा ही क्यों न हो। हमने जो विदेशी भाषा सीखी है, उसे भुलाना नहीं चाहिए बल्कि उस भाषा के अपने ज्ञान को और बढ़ाना चाहिए। विश्वव्यापीकरण के इस युग में विदेशी भाषा का ज्ञान बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगा।

ज्ञात इतिहास की प्रथम रचना ऋग्वेद से एक उद्धरण मैं आप सभी विद्वानों के बीच बांटना चाहता हूँ, जिसमें कहा गया हैः–

ऋग्वेद में भी मानव समानता, प्रतिष्ठा, भाईचारा तथा सम्पन्नता प्राप्त करने के लिए समवेत प्रयास की आवश्यकता को प्रबुद्ध समाज का जीवन मूल्य बनाया है। यहाँ कोई श्रेष्ठ अथवा निम्न नहीं है, सभी भाई–भाई हैं और वे सभी 'बहुजन हिताय और बहुजन सुखाय' के लिए मिलकर कार्य करें।

यह आशा की जानी चाहिए कि मानव अधिकारों के क्षेत्र में हिंदी की यह भूमिका दिन पर दिन और प्रभावी होगी तथा भारतीय भाषाओं और भारतीय परिवेश में किया गया चिन्तन वैश्विक धरातल पर मील का पत्थर साबित होगा। साथ ही इस कोशिश से हम सम्पूर्ण विश्व को अगली पीढ़ियों के लिए भाषायी वातावरण के अनुकूल बनाने में मददगार साबित हो सकते हैं।

सभी की अपनी सीमाएँ तथा क्षमताएँ होती हैं और हम उसी के अनुरूप अपने को अभिव्यक्त करने में सक्षम हो पाते हैं। मैंने भी उसी परम्परा का पालन करते हुए कुछ विचार आपके समक्ष रखने का प्रयास किया है। इसी संदर्भ में मुझे '(स्व.) शिवमंगल सिंह सुमन' की एक कविता का स्मरण आ रहा है जिसको उद्धृत कर मैं आपसे विदा ले रहा हूं:–

कवि की अपनी सीमाएं हैं, कहता जितना कह पाता है
कितना भी कह डाले लेकिन, अनकहा अधिक रह जाता है।

मानव अधिकार की कल्पना एवं आवश्यक तत्व

* प्रो. बी. बी. पांडे

भारत के सभी धर्मों एवं परम्पराओं में मानवाधिकार विषयक विचार किसी न किसी रूप में निहित रहे हैं और इन्होंने किसी हद तक मानव अधिकार की भूमिका निभाई है। पिछली कुछ शताब्दियों के विषय में पढ़ें तो ज्ञात होता है कि भारत में मानव हितों की गरिमा का हनन उस प्रकार नहीं था जैसा यहूदी समुदाय में था। समय के साथ–साथ मानव अधिकार संबंधी सोच में विस्तार हुआ है और यह कहा जा सकता है कि हम कल्पना कर सकते हैं कि भारतीय समाज में मानव अधिकार मूल्यों को समाज की आधारशिला के रूप में जाना जाएगा। परन्तु इस संबंध में यह कहना गलत नहीं होगा कि मानव अधिकार, कल्याणकारी मूल्यों की केवल कल्पना मात्र नहीं है बल्कि धर्म एवं परम्परा के विपरीत यदि मानव अधिकारों का उल्लंघन होता है, तो उसके लिए विधिक परिणाम होते हैं। इस संदर्भ में भारतवर्ष में दो महत्वपूर्ण बदलाव हुए हैं पहला प्रोटेक्शन ऑफ ह्यूमन राइट्स एक्ट 1993, जिसमें मानव अधिकार की व्यापक व्याख्या है और दूसरा उच्चतम न्यायालय द्वारा अन्तरराष्ट्रीय मानव अधिकार कानून को देश में विस्तृत मान्यता देने की न्यायिक परम्परा। अतः मानव अधिकारों के दो स्रोत हैं एक हमारे संविधान में निहित है और दूसरा अन्तरराष्ट्रीय करारों में।

पिछले वर्ष आयोग द्वारा भारतीय संस्कृति में मानव अधिकार की अवधारणा विषय पर एक महत्वपूर्ण गोष्ठी का सफल आयोजन किया गया। संगोष्ठी में विविध धर्मों एवं पंथों के मानव अधिकार संबंधी विचार प्रस्तुत किये गये और लगभग सभी वक्ताओं ने पारम्परिक एवं पुराने विचारों को मानव अधिकार की 'नई' कल्पना से जोड़ने का प्रयास किया। इन सभी विचारों के फलस्वरूप इतना तो स्थापित हो गया कि भारतवर्ष के विभिन्न धर्म एवं परम्पराओं में कम या अधिक अंश में मानव अधिकार विचार निहित रहे हैं। चाहे

* परामर्शदाता (शोध), राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, दिल्ली

वह **'सर्वेभवन्तु सुखिनः'** रूपी विचार हो अथवा **'असतो मां सद्‌गमय'** रूपी विचार, कहीं न कहीं उनके तार आधुनिक मानव अधिकार से जुड़े प्रतीत होते हैं। पर इस प्रकार का जुड़ाव मात्र केवल इस बात का प्रमाण है कि विभिन्न धर्म एवं पंथ उसी प्रकार के मूल्यों और मान्यताओं को समर्थन देते रहे हैं जिन्हें आधुनिक मानव अधिकारों के द्वारा पोषित किया गया है। परंतु यह इस बात का प्रमाण नहीं कि हमारी संस्कृति में मानव अधिकार पहले से ही विद्यमान रहे हैं या भारतवर्ष के मानव अधिकार यहां के धर्मों या मान्यताओं के स्रोत से उपजे हैं। मेरी यह मान्यता है कि मानव अधिकार एक आधुनिक कल्पना है जिसका जन्म औद्योगिकीकरण के पश्चात् यूरोपीय एवं अन्य पाश्चात्य देशों में उपजने वाली विसंगतियों के कारण हुआ। विशेष तौर पर पिछली शताब्दी के तीसरे और चौथे दशक के सभी क्षेत्रों में मानव हितों एवं गरिमा का जिस प्रकार का हनन हुआ उसने उन समाजों को झकझोर कर रख दिया होगा।

उदाहरण के तौर पर नाज़ीवाद की विचारधारा जिस प्रकार यहूदी समुदाय के लोगों के भीषण नरसंहार के लिये जिम्मेदार रही उसने समाज को बाध्य किया कि कानून से इतर मानव अधिकारों की कल्पना की जाय। अतएव मानव अधिकार पाश्चात्य व्यवस्थाओं की मजबूरी ही थे, न कि उन समाजों में मानव कल्याण की स्वतंत्र कल्पना के द्योतक। ऐसी स्थिति में भारतवर्ष में अगर मानव अधिकार पिछली शताब्दी में या उससे पूर्व नहीं विद्यमान रहे तो आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि यहां के धर्म एवं परम्पराएं कुछ एक सीमा तक मानव अधिकार की भूमिका निभाते रहे हैं। साथ ही यहां मानव हितों और गरिमा का उस प्रकार का हनन नहीं था जैसा यहूदी समुदाय के नरसंहार में व्यक्त हुआ था। इसका यह तात्पर्य है कि मानव अधिकार हमारी मजबूरी नहीं रहे। शायद इसी कारण भारत में आज भी मानव अधिकारों की वैसी समझ और सम्मान नहीं बन पा रही है जैसी अपेक्षित है। यहाँ पर मैं मानव अधिकार की समझ एवं सम्मान बढ़ाने की दृष्टि से अक्सर उठने वाली बहसों का उल्लेख करूंगा:

1. **मानव अधिकार में मूल्यों की बहसः**– जिस प्रकार धर्म एवं परम्परा का आधार समाज द्वारा स्वीकृत और समर्थित मूल्य होते हैं ठीक उसी प्रकार मानव अधिकार भी मूल्य जनित होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति के शारीरिक हित, समानता, गरिमा तथा स्वतंत्रता की रक्षा हो यह मानव अधिकार के मूल मूल्य हैं। सभी धर्म एवं परम्पराएं व्यक्ति के हितों की रक्षा की बात करते हैं। यह संभव है कि वह व्यक्ति से अधिक महत्व समाज एवं व्यवस्था को देते हों। पर क्योंकि धर्म एवं परम्पराएं आदर्शों पर आधारित अधिक होते हैं इसलिये भी धर्म के मूल्यों में और व्यक्तिगत मूल्यों में विरोधाभास दिखाई देता है। हाल ही में प्रेमी युगलों की व्यक्तिगत आज़ादी और परम्पदावादी मूल्यों के बीच टकराव की कई घटनाएं प्रकाश में आई हैं। हरियाणा में सगोत्र और सकुल विवाह करने वाले दम्पति को ग्राम पंचायत ने मृत्युदण्ड की सज़ा सुनाई और उसे लागू भी कर दिया। ऐसी स्थिति में परम्परा

के मूल्य और मानव अधिकार के मूल्यों के बीच साफ टकराव दिखता है। क्या प्रेमी युगल के मानव अधिकारों को परम्परा के मूल्यों से ऊंचा स्थान दिया जाए? क्या धर्म एवं परम्परा के मूल्य का आधुनिक समाज में कोई महत्व नहीं?

वास्तव में भारत जैसे धर्म एवं परम्परा प्रधान देश में धर्म एवं परम्परा की उपयोगिता को नकारा नहीं जा सकता। बहुत–सी धार्मिक और पारम्परिक मान्यताएं मानव अधिकार की कल्पना की प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से समर्थन करती हैं। ऐसे मूल्यों और मान्यताओं का स्वागत करना होगा। पर जहां मूल्य एवं मान्यता मानव अधिकार विरोधी साबित होती हैं वहां उसका परित्याग करना ही उचित होगा। पंचायत ने सगोत्र एवं सकुल परम्परा के निर्वहन के लिये दम्पति विरोधी जो निर्णय लिया वह मानव अधिकार विरोधी था और उस निर्णय का अनुपालन एक जघन्य अपराध एवं मानव अधिकार का विरोध भी। अतएव मानव अधिकार के उद्भव के बाद केवल उन मूल्यों की सार्वभौमिकता रहती है जो मानव अधिकार उन्मुख होते हैं। पाश्चात्य देशों में जहां धर्म एवं परम्पराओं को औद्योगिकीकरण के दौर में जानबूझ कर कमज़ोर किया गया, वहां मानव अधिकार तथा विधि के शासन के मूल्यों का महत्वपूर्ण स्थान है। विश्व औद्योगिकीकरण के इस दौर में आने वाली अगली अर्धशताब्दी बाद शायद भारतीय समाज में भी मानव अधिकार मूल्यों को समाज की आधारशिला के रूप में जाना जाएगा, यह कल्पना की जा सकती है।

2. **मानव अधिकार में 'जुरिडिकल' एवं विधिक तत्व की बहसः**– मानव अधिकार केवल सद संकल्प और कल्याणकारी मूल्यों की कल्पना मात्र नहीं है। न ही इनका मानना या ना मानना नितान्त स्वैच्छिक। क्योंकि धर्म एवं परम्परा के विपरीत मानव अधिकार उल्लंघन एवं मानव अधिकार विरोधी व्यवहार के विधिक परिणाम होते हैं। ऐसे परिणाम तीन स्तर पर संभव हैं:–

(क) अंतरराष्ट्रीय स्तर पर

(ख) राष्ट्रीय स्तर पर–राष्ट्रीय एवं राज्य मानवाधिकार आयोग / अन्य आयोगों के स्तर पर

(ग) राष्ट्रीय स्तर पर–संवैधानिक तथा सामान्य न्याय प्रणाली के माध्यम से अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मानव अधिकार का उल्लंघन एवं हनन मुख्यतया सदस्य राज्यों के माध्यम से प्रभावी होता है। मानव अधिकार संबंधी विभिन्न अभिसमयों के अंतर्गत गठित कमेटियां समय–समय पर राज्यों के ऊपर मानव अधिकार के मानकों के अनुरूप व्यवहार की अपेक्षा करती हैं। मानकों पर खरे न उतरने की स्थिति में सदस्य राज्य को कूटनीतिक दबाव का सामना करना पड़ सकता है।

राष्ट्रीय स्तर पर विधिक परिणामों का अधिक प्रत्यक्ष प्रभाव देखा जा सकता है। चाहे वह मानव अधिकार आयोगों/अन्य आयोगों की कार्यवाही हो अथवा संवैधानिक एवं सामान्य न्याय प्रणाली में होने वाली कार्यवाही सभी का परिणाम मानव अधिकार का रक्षाकारी विधिक निर्णय प्राप्त करना है। भारतवर्ष में दो बदलाव इस संदर्भ में विशेष महत्व के हैं: प्रथम, प्रोटेक्शन ऑफ ह्यूमन राइट्स एक्ट, (पी.एच.आर.ए.) 1993 में मानव अधिकार की संवैधानिक अधिकार समाहित–परिभाषित किया जाना और द्वितीय, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अंतरराष्ट्रीय मानव अधिकार कानून को देश में विस्तृत मान्यता देने की नयी न्यायिक परम्परा।

पी. एच. आर. ए. 1993 की धारा 2 (1) (घ) में मानव अधिकार की संवैधानिक अधिकार समाहित परिभाषा कहती है कि "मानव अधिकार व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता, समानता एवं गरिमा के बाबत संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकार और अंतरराष्ट्रीय करारों में दिये गये वे अधिकार हैं जिन्हें भारत में न्यायालयों के माध्यम से लागू किया जा सकता है" इस प्रकार मानव अधिकारों के दो स्रोत हैं, एक, वह जो संविधान की धाराओं में निहित हैं और दूसरा, जो अंतरराष्ट्रीय करारों में निहित हैं। स्वतंत्रता के बाद के छः दशकों में भारतीय उच्च न्यायालयों ने अनेक निर्णयों में नागरिक के मूल अधिकारों को बढ़ावा देने वाले निर्णय दिये हैं, जिनका सीधा सरोकार मानव अधिकारों से रहा है। खासतौर पर 1997 में और उसके बाद सर्वोच्च न्यायालय ने अंतरराष्ट्रीय करारों से संबंधित महत्वपूर्ण नज़ीरे भी दी हैं जिनमें यह निर्णित किया गया है कि सभी अंतरराष्ट्रीय करार भारत वर्ष में न्यायालयों द्वारा लागू किये जा सकते हैं बशर्ते वह किसी मौजूदा भारतीय कानून विरोधी न हो।

इस प्रकार यह स्थापित होता है कि अन्य विधिक अधिकारों की तरह ही मानव अधिकार का 'जुरिडिकल' तत्व उन्हें समाज में उपयुक्त अन्य सूत्रों से भिन्न, श्रेष्ठ एवं विशिष्ट बनाता है।

3. **मानव अधिकार के प्रति 'जवाबदेही' की बहस** :– मानव अधिकार के प्रति जबाबदेह कौन होगा? क्योंकि मानव अधिकार का हनन केवल राज्य के कर्मचारियों के हाथों नहीं होता है इसलिये 'जबाबदेही', बहस का एक विशेष मुद्दा बन जाती है।

पाश्चात्य देशों में राज्य लंबे समय से आधुनिक रूप में विकसित हुए और आज वह अत्यंत सुगठित एवं समर्थ बन चुके हैं। क्योंकि राज्य व्यक्ति एवं समाज के समस्त अंगों को अनुशासित करने में सक्षम है इसलिये मानव अधिकार हनन के लिये उसे जबाबदेह बनाना न्यायोचित प्रतीत होता है। राज्य की ऐसी

जबावदेही अधिकतर मानव अधिकार की रक्षा के लिये कारगर सिद्ध होती है। इसके विपरीत हमारे देश में, जब हम मानव अधिकार के प्रति जबावदेही केवल राज्य के ऊपर डालते हैं तो वह एक थोथा संकल्प मात्र प्रतीत होता है। हालांकि प्रोटेक्शन आफ ह्यूमन राइटस एक्ट, 1993 की धारा 12 (ए) स्पष्ट उल्लेख करती है कि: (i) मानव अधिकार के हनन एवं उसके हनन के प्रति प्रोत्साहन या (ii) मानव अधिकार के हनन के रोकथाम में बरती गई लापरवाही के लिये किसी भी सरकारी मुलाजिम के विरुद्ध पीड़ित की याचिका अथवा स्वयं की जानकारी के आधार पर आयोग कार्यवाही कर सकता है। इस प्रकार मानव अधिकार के प्रति जबाबदेही मुख्य तथा सरकारी मुलाजिम की रखने की परिकल्पना की गई है। पर हमारे देश के संदर्भ में क्या ऐसी परिकल्पना समुचित है?

हम देखते हैं कि समाज में व्याप्त असमानता, शोषण, असम्मान एवं अन्याय के लिये राज्य के इतर जाति, धर्म, पंथ व्यवस्थाएं जिम्मेदार हैं। बंधुआ मजदूर प्रथा, बाल मजदूर प्रथा, नारी शोषण के विभिन्न रूप जैसे देवदासी, विधवाश्रम, बहु पत्नी प्रथा आदि कहीं न कहीं धर्म एवं परंम्परा से समर्थित हैं क्योंकि राज्य इतना समर्थ नहीं है कि इन प्रथाओं से वास्तविक स्तर पर मुक्ति दिला सके, इसलिये मानव अधिकार के हनन का सिलसिला निर्बाध रूप में चलता आ रहा है। ऐसी स्थिति में आवश्यकता है कि मानव अधिकारों के प्रति राज्य के अलावा उसके क्षेत्र के बाहर रहने वाले शक्तिशाली समूहों की और व्यक्तियों की भी जबावदेही हो। इस दिशा में भारतीय उच्च न्यायालयों ने कुछ पहल की है जो सराहनीय है जैसे संविधान की धारा 12 में 'राज्य' की परिभाषा को विस्तार देकर। ऐसे विस्तार से मानव अधिकार के संरक्षण की जबाबदेही न केवल विभागीय कर्मचारियों की होगी वरन् कारपोरेशन्स तथा अन्य राज्य तुल्य संस्थाओं के कर्मचारियों की भी होगी। इसके अलावा कुछ एक वादों में संविधान निहित मूल अधिकारों के प्रति व्यक्तियों की भी जबाबदेही न्यायालयों ने मानी है। बोधिसत्व गौतम बनाम शुभ्रा चक्रवर्ती (1996 एस.सी.सी. 490) के बाद में सर्वोच्च न्यायालय ने अपीलार्थी की याचिका खारिज करते समय यह स्पष्ट किया कि: 'मूल अधिकार व्यक्ति एवं व्यक्तिगत संस्थाओं के विरुद्ध भी लागू किये जा सकते हैं और बलात्कार केवल मूल मानव अधिकार का उल्लंघन नहीं है वरन् धारा 21 द्वारा प्रदत्त पीड़िता के सबसे महत्वपूर्ण मौलिक अधिकार का भी हनन है'। अतएव आवश्यकता है भारतीय समाज में उपयुक्त मानव अधिकार व्यवस्था जिसमें विस्तृत और सार्थक जबाबदेही की संभावना रह सके।

4. **मानव अधिकार में व्यक्तिगतता की बहस:**— हाल ही में मानव अधिकार की चर्चा के दौरान एक प्रश्नकर्ता ने प्रश्न उठाया: क्या प्रेमी–युगल के मानव अधिकारों को परिवार एवं समूह के अधिकारों के ऊपर स्थान दिया जाना चाहिए? क्या केवल एक हनीफ का मानव अधिकार ब्रिटिश अथवा आस्ट्रेलिया समाज के सुरक्षा

के अधिकार से अधिक महत्वपूर्ण है? प्रश्न थोड़ा जटिल इसलिये प्रतीत होता है क्योंकि इसमें मानव अधिकार की प्राथमिकता और उसके और अन्य समाजिक हितों के सामंजस्य की बात निहित है। इससे कोई इनकार नहीं कर सकता कि माता–पिता और परिवार की भूमिका सन्तति के जन्म, लालन–पालन और शिक्षा की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। पर वही माता–पिता एवं परिवार जब सन्तति की स्वतंत्रता का विरोधी बन जाए तब मानव अधिकार संतति की स्वतंत्रता को माता–पिता एवं परिवार की इच्छा के ऊपर रखने का विधान देते हैं। केवल एक हनीफ के मानव अधिकार की रक्षा समाज की सुरक्षा के नाम पर उठाए गए कदमों को चुनौती देने के लिये काफी सिद्ध हो सकती है।

मानव अधिकार दर्शन की यही विशिष्टता है कि वह प्रत्येक व्यक्ति के मानव–रूप में जन्मने पर आधारित है। मानव अधिकार जन्मना होते हैं और राज्य एवं समाज उनका साधारणतया परित्याग नहीं कर सकता। इन्टरनेशनल कान्वनैन्ट ऑन सिविल एण्ड पॉलिटिकल राइट्स 1966 की धारा 4 (2) स्पष्ट शब्दों में व्यक्त करती है कि आपातकाल की स्थिति में भी धारा 6, 7 एवं 8 का परित्याग नहीं किया जा सकता। अस्तु केवल एक व्यक्ति का भी मानव अधिकार उतना ही महत्वपूर्ण है और सामाजिक समर्थन का हकदार है जितना एक समूह का।

इस संदर्भ में लगभग चार दशक पूर्व की एक घटना याद आती है जिसमें एक युवामन जिज्ञासु के रूप में मैंने ही भागवत पुराण के प्रकाण्ड मर्मज्ञ स्वामी अखण्डानन्द महाराज से प्रश्न किया था: "स्वामीजी आपने अखण्ड ब्रह्माण्ड की विराट कल्पना से हमें अवगत कराया है। पर इस कल्पना में भूख, शीत अथवा गर्मी से दम तोड़ने वाले एक–एक व्यक्ति का क्या स्थान है? क्या उसके प्रति सम्पन्न वर्ग की किसी प्रकार की जबावदेही है?" स्वामीजी ने अविचलित भाव से उत्तर दिया: "अखण्ड ब्रहमाण्ड की विराट कल्पना में एक–दो पिण्ड के फूटने अथवा मृतपाय होने का कोई भी अर्थ नहीं।" "तो फिर उस भूख से दम तोड़ने वाले, ठंड में ठिठुर कर या गर्मी में प्यास से मरने वाले एक व्यक्ति के लिये आपकी इस महान कल्पना का क्या अर्थ? क्या इस प्रकार आप केवल खाते–पीते समाज के लिये चर्चा को सीमित नहीं कर रहे?" मैं जानता था इस प्रकार के प्रश्न की अपेक्षा स्वामीजी को नहीं रही होगी। पर आज भी जब कोई व्यवस्थाओं की बात करता है तो मेरे मन में उस एक, सबसे विपन्न और निरीह व्यक्ति के पक्ष की बात आती है। कौन सबसे विपन्न और सबसे निरीह है जिसके समर्थन में मानव अधिकार समूह और समाज से भी ऊपर स्थान प्राप्त करता है वह अलग–अलग स्थिति पर तो निर्भर करेगा ही, पर उससे भी अधिक निर्भर करेगा विचारधारा और चेतना पर जो पीर पराई जाणे रे पर विश्वास करती हो।

दाग़ दाग़ उजाला

* चमन लाल

बंधुआ श्रम मानवीय गरिमा पर सबसे बडा आघात है। मानवीय अधिकारों का यह जघन्यतम उल्लंघन है। प्रस्तुत लेख बंधुआ श्रम की समस्याओं पर केन्द्रित है। इस लेख में लेखक ने अपने अनुभवों के आधार पर बंधुआ श्रम की समस्याओं से निजात पाने के लिए कई कारगर उपाय भी बताएं हैं। लेखक का मानना है कि बंधुआ श्रम से पूरी तरह से निजात पाने के लिए सरकार, जनता तथा गैर–सरकारी संगठनों के बीच एक ऐसा कारगर तंत्र स्थापित किया जाना चाहिए जो सम्पूर्ण दृष्टियों से उस पर विचार करे तथा पीड़ित श्रमिक के लिए हर संभव पुनर्वास की व्यवस्था कराए। ऐसा करने से समाज में उन्हें न केवल आरामदायक जीवन जीने का अवसर मिलेगा बल्कि उन्हें समाज में गरिमा एवं सम्मानपूर्वक जीवन जीने का अवसर भी मिलेगा और उन्हें समाज की मुख्य धारा में लाया भी जा सकेगा। लेखक ने अपने अनुभवों के आधार पर यह बात रेखांकित की है कि इस समस्या से निजात पाने में यदि 'पुल' फैक्टर के बजाए 'पुश' फैक्टर की ओर ध्यान दिया जाए तो उनकी दृष्टि में यह अधिक कारगर होगा।

मार्च 2003 का कोई दिन था। जस्टिस रामास्वामी और मैं चण्डीगढ़ में हरियाणा के मुख्य मंत्री से प्रदेश में बंधुआ श्रम की स्थिति के बारे में चर्चा कर रहे थे। उससे पहले वरिष्ठ अधिकारियों की मीटिंग में, जिसमें मुख्य सचिव तथा प्रमुख सचिव, श्रम के अतिरिक्त, विषय से जुड़े सभी विभागों के सचिव उपस्थित थे। न्यायमूर्ति श्री रामास्वामी ने हरियाणा तथा पंजाब से लगातार प्राप्त होने वाली बंधुआ श्रम संबंधी शिकायतों पर राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की चिंता व्यक्त की थी। मैंने सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 11 नवबंर 1997 को आयोग को दिये गये निर्देशों का उल्लेख किया जिसके तहत पूरे देश में बंधुआ श्रम पद्धति (उन्मूलन) अधिनियम 1976 को प्रभावी ढंग से लागू करने की जिम्मेदारी राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग को सौंपी गई थी। मुख्य मंत्री ने वही कहा जो हमने मीटिंग की शुरूआत में उनके अधिकारियों के मुंह से सुना था: हरियाणा

* विशेष सम्पर्ककर्ता, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, नई दिल्ली

में कहीं भी कोई बंधुआ श्रमिक नहीं मिलेगा। हर कामगार, चाहे वह हरियाणा का हो या बाहर का प्रवासी मज़दूर, सरकार द्वारा निर्धारित न्यूनतम वेतन से ज़्यादा ही पाता है। हरियाणा की प्रगतिशील सरकार ने कामगारों का शोषण मूलतः समाप्त कर दिया है। आयोग को मिलने वाली शिकायतें ग़ैर सरकारी संगठनों की मनगढ़ंत कहानियां हैं जिनके बल पर वे बाहर के देशों से मोटी रकमें बटोर रहे हैं। जब मैंने पूछा कि बिहार तथा झारखण्ड से मोटी एडवांस रकम देकर लाये जाने वाले, ईंट के भट्टों और पत्थर की खदानों पर काम कर रहे मज़दूर–पुरुष, स्त्री और बच्चे, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिनियम के परिभाषा संबंधी प्रावधानों पर दिए गए स्पष्टीकरण के अनुसार बंधुआ श्रम की श्रेणी में क्यों नहीं माने जाते तो किसी के पास कोई जवाब नहीं था। जस्टिस रामास्वामी द्वारा कानून का खुलासा किया जाने के बाद मुख्य सचिव ने आश्वासन दिया कि शीघ्र ही प्रवासी मज़दूरों द्वारा चल रहे प्रदेश के सभी प्रतिष्ठानों, विशेषतः ईंट भट्टों और स्टोन क्रशर का सर्वेक्षण कराया जायेगा तथा अधिनियम के प्रावधानों का सर्वोच्च न्यायालय की रूलिंग के मुताबिक पालन कराया जायेगा। इस आश्वासन की ख़बर शायद मुख्यमंत्री तक नहीं पहुंची थी। उन्होंने मिली हई ब्रीफ़िंग के अनुसार दोहराया कि उनका शासन बंधुआ श्रम के कलंक से मुक्त है। जस्टिस रामास्वामी ने चुटकी लेते हुए मुख्य मंत्री को बधाई दी कि उनके प्रदेश में जहां श्रम विभाग से प्राप्त जानकारी के अनुसार 2275 ईंट भट्टे और 777 स्टोन क्रशर प्रवासी मजदूरों से चलाये जा रहे हैं, बंधुआ श्रम के समूल उन्मूलन का असंभव लक्ष्य प्राप्त कर लिया गया है। मुख्य मंत्री ने यह कटाक्ष हंस कर झेल लिया और हम दोनों को खाने की मेज़ की तरफ़ ले गये।

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने वर्ष 1998 में देश के विभिन्न राज्यों में बंधुआ श्रम की स्थिति की समीक्षा का काम मुझे और सेवानिवृत्त आई.ए.एस. अधिकारी श्री के. आर. वेणुगोपाल को सौंपा था। अपनी काबलियत, ईमानदारी और संवेदनशीलता के लिए विख्यात श्री वेणुगोपाल को दक्षिण भारत के चार प्रांत–आंध्रप्रदेश, तमिलनाडू, कर्नाटक तथा केरल की ज़िम्मेदारी मिली और मुझे बाकी के 14 राज्य जो बंधुआ श्रम से ग्रस्त चिह्नित किये गये हैं। इनमें प्रमुख हैं: उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, पंजाब और हरियाणा। बिहार, झारखण्ड और छत्तीसगढ़ में बंधुआ श्रमिक पाये कम जाते हैं लेकिन ये राज्य बंधुआ श्रमिकों की बाहर सप्लाई के लिए कुख्यात हैं।

श्री वेणुगोपाल का और मेरा अनुभव बताता है कि हरियाणा की तरह बाकी राज्यों में भी नौकरशाही का रवैय्या बंधुआ श्रम की समस्या के बारे में नकारात्मक है। अधिकतर सरकारें इस समस्या की उपस्थिति से साफ इन्कार करती हैं। कुछ मानती हैं कि पहले यह समस्या थी लेकिन 1976 में अधिनियम के लागू होने पर यह समाप्त हो गई। अधिनियम के प्रावधानों के पालन में किसी भी ज़िले में निगरानी समितियों द्वारा वांछित जांच करके इस कुरीति की उपस्थिति के बारे में वास्तविक जानकारी इकट्ठी करने का कोई प्रयास देखने में नहीं आया।

1 अप्रैल 1993 से 31 मार्च 2007 की अवधि में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग में बंधुआ श्रम संबंधी 1429 शिकायतें प्राप्त हुई। उत्तर प्रदेश (463) सूची में पहले स्थान पर है। उसके बाद आते हैं पंजाब़ (412) तथा हरियाणा (174)। यह ग़ौरतलब है कि लगभग सभी शिकायतें ग़ैर सरकारी संगठनों के माध्यम से प्राप्त हुई हैं। कभी किसी बंधुआ श्रमिक ने स्वयं आयोग का दरवाज़ा नहीं खटखटाया। यह बात सर्वोच्च न्यायालय द्वारा नीरजा चौधरी बनाम म.प्र. सरकार (1984) 3 एस.सी.सी. 243) में उल्लिखित स्थिति की पुष्टि करती है। न्यायालय ने इस मामले में अपने निर्णय बंधुआ श्रम की समस्या के निवारण में ग़ैर सरकारी संगठनों की भूमिका पर ज़ोर देते हुए कहा था कि ज़िला प्रशासन को इन संगठनों का आदर करना चाहिए क्योंकि उनके सहयोग से ही बंधुआ श्रमिकों का चिह्नांकन संभव है। न्यायालय ने आगे यह भी कहा कि ग़ैर सरकारी संगठनों से मिलने वाली शिकायतों पर तुरंत कार्रवाई की जाये, जांच के लिए गठित अधिकारी दस्ते में संगठन का एक प्रतिनिधि शामिल किया जाये तथा मौके पर की गई कार्रवाई की रिपोर्ट की एक प्रतिलिपि भी उसे उपलब्ध कराई जाये। इन निर्देशों के अनुपालन की वास्तविक स्थिति क्या है? बंधुआ श्रम के क्षेत्र में काम कर रहे ग़ैर सरकारी संगठनों का अनुभव हैं कि प्रशासन को सीधी भेजी गई शिकायत पर अक्सर कोई कार्रवाई नहीं होती। अगर उनके लगातार प्रयासों से तंग आकर कहीं जाँच शुरू की भी जाती है तो उसका निपटारा जल्द हो जाता है। नतीजा हर जांच का यही होता है कि शिकायत झूठी है या शिकायत करने वाला श्रमिक अपने स्थान पर नहीं मिला। यही वजह है कि अधिकतर ग़ैर सरकारी संगठन बंधुआ श्रम संबंधी शिकायतें राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग को संबोधित कर रहे हैं। आयोग इन शिकायतों को राज्य सरकार के माध्यम से संबंधित ज़िला मजिस्ट्रेट को भेजता है। आयोग से प्राप्त शिकायत पर कार्रवाई तो होती है और जांच भी प्रायः किसी राजपत्रित राजस्व (रेवेन्यू) अधिकारी द्वारा कराई जाती है लेकिन रिकार्ड बतायेगें कि लगभग सभी शिकायतों की जांच रिपोर्ट यही कहती है कि मामला बंधुआ श्रम पद्धति (उन्मूलन) अधिनियम के अंतर्गत नहीं आता; शिकायत मज़दूरी के भुगतान से संबंधित हैं; शिकायतकर्ताओं को उनकी देय राशि दिला दी गई है और वे स्वेच्छा से अपने घर चले गये हैं। कई मामलों में विस्तृत छानबीन से पता चला कि आयोग से शिकायत मिलने के बाद जिला प्रशासन ने अजीब फुर्ती के साथ शिकायतकर्ताओं से संपर्क किया, उन्हें मज़दूरी की देय राशि दिलाई तथा काम से छुड़ाकर जबरदस्ती अपने प्रदेश भेज दिया। कहीं कहीं तो प्रशासन ने मज़दूरों की तुरंत वापसी के लिए मुफ्त ट्रांसपोर्ट व्यवस्था भी की। ऐसे कई प्रकरणों में आयोग ने पुनः जांच के आदेश दिये तथा सही जांच के बाद शिकायतकर्ताओं को बंधुआ श्रम से मुक्त घोषित कराके उनके पुनर्वास की व्यवस्था कराई। यद्यपि ऐसे सभी प्रकरणों में आयोग के हस्तक्षेप से पुनर्वास की धनराशि वितरित हुई, संबंधित अभियुक्तों के अभियोजन में कोई रूचि नहीं ली गई। शायद ही किसी केस में किसी ज़िला मजिस्ट्रेट ने अधिनियम की धारा 21(2) द्वारा प्रदत्त पावर्स का इस्तेमाल कर 'समरी ट्रायल' के प्रावधान का उपयोग किया हो।

पिछले दस वर्षों के अनुभव में मेरी जानकारी में एक भी ऐसा मामला नहीं आया जिसमें अधिनियम की धारा 16, 17, 18, 19 तथा 20 के प्रावधानों के तहत किसी अभियुक्त को दण्डित किया गया हो जबकि एक बड़ी संख्या में बंधुआ श्रमिक चिह्नित कर मुक्त कराये गये हैं तथा उनके पुनर्वास की व्यवस्था भी कहीं–कहीं हुई है। हां, एक दो मामलों में पिछले 3–4 सालों में, तीन महीने के कारावास की रिपोर्ट देखने को मिली है। सभी राज्यों में अधिनियम के तहत दर्ज किए गए मामले या तो विवेचना में पड़े हैं या कोर्ट में लंबित हैं। यद्यपि अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार सभी राज्यों (महाराष्ट्र को छोड़कर) में कार्यपालक मजिस्ट्रेटों को मामलों की सुनवाई के लिए सक्षम घोषित किया गया है, ये मामले अधिकतम स्थानों पर ज्यूडिशियल मजिस्ट्रेटों की अदालतों में ही अपनी रफ्तार से चल रहे हैं। आयोग के प्रयासों से इस कार्रवाई में फुर्ती तो आई है और धीरे–धीरे पुराने मामले निपटने लगे हैं पर हर केस का अंजाम अभियुक्त की रिहाई से ही हो रहा है। विवेचना में शुरू से कई कमियां रखी गईं या रह गई हैं जिनका लाभ बचाव पक्ष को ही मिलना है।

बंधुआ श्रम के विषय को जनमानस की चेतना में लाने का श्रेय पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज (पी.यू.सी.एल) द्वारा 1985 में सर्वोच्च न्यायलाय में दायर जनहित याचिका क्रमांक 3922 को जाता है। इस याचिका की सुनवाई पर सर्वोच्च न्यायालय ने वर्ष 1995 में तमिलनाडु सरकार से बंधुआ मज़दूरी की अनुमानित संख्या पूछी। हलफ़नामे से दिये गए सरकार के जवाब के मुताबिक राज्य में बंधुआ श्रम के इक्का दुक्का मामले ('स्ट्रे केस') ही नोटिस में आये थे। इस उत्तर से असंतुष्ट न्यायालय ने दो सदस्यीय आयोग (सर्वश्री सिराज सैत एवं डॉ0 फ़ेलिक्स तीर्थराज) गठित कर तमिलनाडु में बंधुआ श्रम की स्थिति का आकलन कराया। अक्टूबर' 95 में प्रस्तुत आयोग की रिपोर्ट के अनुसार तमिलनाडु में बंधुआ श्रमिकों की संख्या लगभग दस लाख थी। सर्वोच्च न्यायालय ने सभी राज्यों को सर्वेक्षण द्वारा अपने–अपने में बंधुआ श्रमिकों की संख्या मालूम करने के आदेश दिये। 1996–97 में कराये गये सर्वेक्षण के अनुसार तमिलनाडु में 25,008 बंधुआ श्रमिक चिह्नित हुए। यह उल्लेखनीय है कि केवल 7 राज्यों ने ही 96–97 के सर्वेक्षण के फलस्वरूप हल्फनामे दायर करके बंधुआ श्रमिकों की निम्नलिखित संख्या बताई:–

अरूणाचल प्रदेश	:	3,526
बिहार	:	106
कर्नाटक	:	19
मध्य प्रदेश	:	18
उत्तर प्रदेश	:	237
महाराष्ट्र	:	2
तमिलनाडु	:	25008
कुल	:	**28916**

अरूणाचल प्रदेश की जानकारी सुलंग नाम से जानी जाने वाली एक सामाजिक कुरीति से जुड़ी हुई है जिसके बल पर एक विशेष जनजाति के लोग उम्र भर दासता का जीवन जीने के लिए अभिशप्त हैं। तमिलनाडु के सर्वेक्षण के परिणाम पी.यू.सी.एल. तथा कई अन्य गैर सरकारी संगठनों के दावे से कम होते हुए भी विश्वसनीय माने जा सकते हैं। शेष राज्यों के सर्वेक्षण के नतीजे विशेषतः महाराष्ट्र (2) के जहां प्रवासी मजदूरों की एक बड़ी संख्या कार्यरत है, असलियत से कोसों दूर है।

सर्वोच्च न्यायालय के निदेशानुसार और बाद में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के प्रयासों के फलस्वरूप बंधुआ श्रम की समस्या से ग्रस्त सभी राज्यों में गैर सरकारी संगठनों के सहयोग से बंधुआ श्रमिकों के चिह्नांकन का काम लगातार चलता रहा है यद्यपि उसके नतीजे कुछ इलाकों को छोड़कर निराशाजनक ही रहे हैं। सरकार के श्रम मंत्रालय से प्राप्त जानकारी के मुताबिक 31 मार्च 2006 तक देश के 18 राज्यों में 2,86,642 बंधुआ श्रमिक चिह्नित किये जा चुके हैं। तमिलनाडु (65,573), कर्नाटक (63,437), उड़ीसा (50,029), आंध्र प्रदेश (37,988), बिहार (13,792), मध्य प्रदेश (13,125) और राजस्थान (7,488) में चिह्नांकन का काम संतोषजनक माना जा सकता है। महाराष्ट्र (1,404), गुजरात (64), हरियाणा (582) पंजाब (60) पश्चिमी बंगाल (32) के आंकड़े बंधुआ श्रम संबंधी शिकायतों को देखते हुए नगण्य ही कहे जा सकते हैं।

बंधुआ श्रम पद्धति (उन्मूलन) अधिनियम 1976 में बंधुआ श्रमिकों की भौतिक मुक्ति तथा बंधुआ ऋण से मुक्ति के विशिष्ट प्रावधान हैं। लेकिन उनके पुनर्वास के बारे में अधिनियम में कुछ भी कहा नहीं गया है। यह निर्विवादित सत्य है कि बंधुआ श्रम पद्धति के शिकार लोगों में 95 प्रतिशत से अधिक अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्गों से संबंध रखते हैं। यह भी स्पष्ट है कि इस समस्या का मूल कारण आर्थिक विपन्नता और पिछड़ापन है। ऐसी स्थिति में बंधुआ श्रमिकों का चिह्नांकन कर, उनको भौतिक मुक्ति तथा बंधुआ ऋण से आजाद करा देना पर्याप्त नहीं है। इस शोषण से उनकी वास्तविक मुक्ति तभी संभव है जब उनके पुनर्वास की पक्की व्यवस्था की जाये। इस बात को समय–समय पर दिये गए अपने निर्देशों में सर्वोच्च न्यायालय ने पूरी तरह से स्पष्ट कर दिया है कि पुनर्वास का अभिप्राय केवल आर्थिक सहायता मुहय्या कराना नहीं है। उनकी आजीविका का समुचित तथा सुदृढ़ प्रबंध कर उनका सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक पुनर्वास सुनिश्चित करना भी आवश्यक है।

मुक्त कराये गये बंधुआ श्रमिकों के पुनर्वास के लिए केन्द्र सरकार ने सन् 1978 से ही एक योजना चलाई। इसमें प्रत्येक मुक्त बंधुआ श्रमिक के लिए 4,000/– रू0 की लागत के पुनर्वास पैकेज का प्रावधान किया गया जिसमें केन्द्र तथा संबंधित राज्य सरकार की बराबर की हिस्सेदारी है। यह राशि बढ़ाकर 1 फरवरी 86 से 6,250/– रू0, 1 अप्रैल से 95 से 10,000/– रू0 तथा 1 अप्रैल 1997 में 20,000/– रू0 कर दी गई है। सर्वोच्च न्यायालय ने 23 मई 1994 के आदेश में पुनर्वास व्यवस्था के संबंध

में विस्तृत निर्देश दिये जिनके अनुसार मुक्त कराये गए बंधुआ श्रमिकों के लिए कृषि, पशुपालन अथवा अन्य व्यवसायों का प्रबंध किया जाना है।

भारत सरकार के श्रम मंत्रालय से प्राप्त जानकारी के अनुसार वर्ष 1997 से लेकर 31 मार्च 2006 तक मुक्त कराये गए 2,86,642 बंधुआ श्रमिकों में से 26,680 श्रमिकों को इस योजना के अंतर्गत पुनर्वासित किया गया है। श्रम मंत्रालय पुनर्वास की राशि के आबंटन को पुर्नवास की इतिश्री मान लेता है तथा वास्तविक स्थिति की कोई जानकारी इकट्‌ठी नहीं की जाती। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग द्वारा की गई समीक्षाएं बताती हैं कि बंधुआ श्रमिकों के चिह्नांकन और उनकी मुक्ति के बाद तुरंत जारी किया जाने वाला रिलीज़ सर्टिफिकेट' उन्हें हफ्तों नहीं मिलता। मुक्ति का प्रमाण पत्र प्राप्त करने के बाद मुक्त बंधुआ श्रमिकों को पुर्नवास के लिए महीनों नहीं सालों प्रतीक्षा करनी पड़ती है। आयोग के सामने ऐसे कई प्रकरण आये हैं जिनमें पांच वर्ष से अधिक अवधि बीत जाने पर भी पुर्नवास की कोई व्यवस्था नहीं हुई। आजीविका का अन्य कोई साधन न होने के कारण, बंधुआ श्रम के शोषण से आज़ाद कराये गये अभागे लोग, अक्सर पूरी तरह से असहाय बन जाते हैं। इनके पास इसके सिवाये कोई रास्ता नहीं बचता कि वे फिर अपने पुराने मालिक के चरणों पर जा गिरें और किसी भी शर्त पर अपनी वही गुलामी वापस ले लें जिससे इनको रिहा कराने के सरकारी दावों का बखान रिपोर्ट दर रिपोर्ट जारी रहता है। इलाहाबाद के शंकरगढ़ क्षेत्र में वर्ष 2002 में इसी तरह की समीक्षा के दौरान मुझे पता चला कि प्रशासन द्वारा मुक्त कराये गये श्रमिकों को महीनों पुनर्वास की सरकारी मदद की विफल प्रतीक्षा करने के बाद पुराने मालिकों के पास पहले से भी कम मजदूरी की दरों पर वापस लौटना पड़ा था।

श्रम मंत्रालय की पुनर्वास योजना में योजना के मूल्यांकन का भी प्रावधान है। इसके लिए प्रत्येक राज्य को प्रति वर्ष 5 लाख रूपये की राशि उपलब्ध कराई जा सकती है जिससे राज्य के पांच ज़िलों में किसी अनुभवी शोध संस्थान या ग़ैर सरकारी संगठन द्वारा मूल्यांकन कराया जा सकता है। मैंने कुछ राज्यों की मूल्यांकन रिपोर्टें पढ़ी हैं। एक दो को छोड़कर शेष सभी रिपोर्टें बहुत साधारण स्तर की पाई गईं। ज्यादातर रिपोर्टों में सर्वविदित सामान्य बातें कही गई हैं। मुक्त कराये गये बंधुआ श्रमिकों में इतने प्रतिशत दलित, आदिवासी तथा अन्य पिछड़े वर्गों के लोग हैं, इतने प्रतिशत अशिक्षित है, इतने प्रतिशत भूमिहीन हैं, आदि आदि। गहन विश्लेषण कर यह मालूम करने की कोशिश नहीं की गई कि पुनर्वास योजना का किस–किस को क्या–क्या लाभ मिला, पुनर्वास में कितना समय लगा, पुनर्वास व्यवस्था के परिणाम स्थायी तथा टिकाऊ सिद्ध हुए या नहीं। संभव सुधारों के लिए व्यावहारिक सुझाव तो शायद ही किसी रिपोर्ट में देखने को मिलें। सबसे दुःखद बात तो यह है कि श्रम मंत्रालय ने किसी भी रिपोर्ट पर अपनी कोई टिप्पणी या प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। कम से कम मुझे तो इसका कोई सबूत देखने को नहीं मिला हालांकि मैंने यह जानने की काफी कोशिश की है।

जहां पुनर्वास में विलंब के कई प्रकरण मेरे नोटिस में आये हैं वहां यह बात भी बार–बार सुनने को मिली कि श्रम मंत्रालय बजट में इस मद में उपलब्ध धनराशि का आधा हिस्सा भी व्यय नहीं कर पाता है। इसकी वजह राज्य सरकारों से पुनर्वास के प्रस्ताव प्राप्त न होना है। इस सिलसिले में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने विशेष रूचि लेकर पुनर्वास के कुछ पुराने लंबित प्रकरणों को निपटाने में अहम् भूमिका निभाई है। उदाहरण के तौर पर मैं दो प्रकरणों का उल्लेख करना चाहता हूँ।

उत्तर प्रदेश में मुक्त कराये गए बंधुआ श्रमिकों के पुनर्वास के विषय पर एक विशेष कार्यशाला इलाहाबाद में 11 नवंबर 2003 को आयोजित की गई थी। इस कार्यशाला में पता चला कि वर्ष 1998–99 से 2002–03 के बीच मुक्त कराये गए 482 बंधुआ श्रमिकों का पुनर्वास तब तक नहीं हुआ था। एक विशेष कार्य योजना बनाकर पहले इन श्रमिकों को ट्रेस किया गया। इनमें से केवल 330 श्रमिक ही मिल पाये। मैंने 16 मार्च 2004 को कानपुर में उत्तर प्रदेश में बंधुआ श्रम की स्थिति की समीक्षा की। पता चला कि वर्ष 2003–04 में चिह्नित बंधुआ श्रमिकों को मिलाकर, दिनांक 31 जनवरी 2004 के पुनर्वास के 395 प्रकरण लंबित थे। 31 मार्च 2004 तक यह संख्या 398 हो गई थी। 5 नवबंर 2004 की अगली समीक्षा में मुझे जानकर बहुत प्रसन्नता हुई कि इनमें से 324 प्रकरणों का निवारण 31 मार्च 2004 तक हो गया था। अगली समीक्षा तक बाकी प्रकरण भी निपटा दिए गए। इसमें तत्कालीन श्रम आयुक्त श्रीमती अनिता जैन महनागर ने विशेष रूचि ली थी। उनके उत्तराधिकारी श्री शारदा प्रसाद ने इस काम को आगे बढ़ाया। यह सराहनीय काम श्रम मंत्रालय, भारत सरकार के महानिदेशक (कल्याण) श्री मनोहर लाल के सहयोग से ही संपन्न हुआ। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के इस तरह के हस्तक्षेप का असर प्रदेश के सभी ज़िलों पर पड़ा और मुक्त कराये गए बंधुआ श्रमिकों के पुनर्वास का काम तेजी से होने लगा। यह बात अपनी जगह सही है कि चिह्नित किए जाने वाले बंधुआ श्रमिकों की संख्या समस्या के वास्तविक आकार का एक छोटा–सा टुकड़ा ही प्रतिबिम्बित करती है।

फ़रवरी 2002 में एक ग़ैर सरकारी संगठन 'बचपन बचाओ आंदोलन' ने आयोग को बिहार के 146 ऐसे व्यक्तियों की सूची प्रस्तुत की जिन्हें वर्ष 1994 से 1999 के दौरान उ0 प्र0 में बंधुआ श्रम से मुक्त कराया गया था। उनके पुनर्वास का काम तब तक शुरू भी नहीं हुआ था। आयोग में जस्टिस रामास्वामी यह विषय देखते थे। मेरे सुझाव पर उन्होंने बिहार के प्रमुख सचिव, श्रम तथा श्रम आयुक्त को दिल्ली बुलाया। उन्हें पहले इन व्यक्तियों को संबंधित ज़िला कलक्टरों को जिम्मेदारी देकर ट्रेस करने का काम दिया। उसके साथ ही उनके पुनर्वास के प्रस्ताव तैयार करवाकर केन्द्र सरकार की योजना के अंतर्गत उनको राहत दिलाने के निदेश दिये। मैंने 21 अक्टूबर 2002 को बेतिया (पश्चिमी चंपारण) में बिहार में बंधुआ श्रम की स्थिति की समीक्षा की। तब तक 146 में से 114 बंधुआ श्रमिकों को ट्रेस कर लिया गया था। उनमें से 6 को पुनर्वास पैकेज

पहले मिल चुका था। शेष 108 में से 42 का पुनर्वास पूरा हो गया था तथा 66 के लिए कार्रवाई जारी थी जो अगले 6 महीनों में पूरी कर ली गई।

यद्यपि सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशों पर आधारित केन्द्र सरकार की पुनर्वास योजना का लक्ष्य मुक्त कराये गए बंधुआ श्रमिकों को आजीविका के स्थाई और टिकाऊ अवसर उपलब्ध करना है तथा नगद राशि के वितरण की मनाही है अधिकतर प्रकरणों में पुनर्वास पुख्ता साबित नहीं हुआ है। मैंने पाया है कि अधिकतर राज्य सरकारें पुनर्वास के नाम पर धनराशि बाँटने का काम ही कर रही हैं। अपने अनुभव में मुझे दो प्रकरण ऐसे मिले जिन्हें सही पुनर्वास के नमूने के तौर पर प्रस्तुत किया जा सकता है।

दिसंबर 2000 में विदिशा (मध्य प्रदेश) में महाराष्ट्र के एक गैर सरकारी संगठन 'समर्थन' के सहयोग से पत्थर की खदानों पर काम करते 85 बंधुआ श्रमिकों को मुक्त कराया गया था। सरकारी ख़जाने से अन्तरिम राहतः– 1000 रू0 प्रति श्रमिक, ड्रा कराने में हो रही देरी की वजह से जिला कलक्टर वीरा राणा ने बजट के किसी अन्य मद से 50,000/– निकालकर प्रति परिवार को 250/– रू0 नगद के अलावा, अनाज, चीनी, चायपत्ती तथा रहने के लिए जगह बनाने के वास्ते बांस और प्लास्टिक की शीट तत्काल उपलब्ध कराई। इनके पक्के पुनर्वास में हो रही देरी की शिकायत स्वामी अग्निवेश, अध्यक्ष, बंधुआ मुक्ति मोर्चा ने आयोग से की। आयोग के आदेश पर मैंने विदिशा जा कर स्थिति का पूरा जायज़ा लिया। मैंने पुनर्वास की प्रक्रिया धीमी पाई। कलक्टर विदिशा ने अपने स्तर पर सारी कार्रवाई पूरी कर ली थी देरी राज्य के मुख्यालय, भोपाल में हो रही थी। मैं इस सिलसिले में भोपाल में प्रमुख सचिव श्रम विभाग से भी मिला। मई 2002 में म0 प्र0 में बंधुआ श्रम की स्थिति जस्टिस रामास्वामी तथा मैंने की। तब इस प्रकरण पर विशेष रूप से चर्चा हुई। मुक्त कराये गए 85 में से 70 श्रमिक म. प्र. के थे जिनका राज्य में ही पुनर्वास होना था। हम ने पाया कि सभी श्रमिकों को केन्द्र सरकार की योजना के अनुरूप पुर्नवासित कर दिया गया था। 20,000/– रू0 के राहत पैकेज के अलावा प्रत्येक श्रमिक को अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम के तहत मिलने वाली राशि (6250/–) का 25 प्रतिशत जो एफ.आई.आर. दर्ज करते ही देय होता है, उन्हें दिलाया गया। इस अनिवार्य प्रावधान का अनुपालन मैंने विभिन्न राज्यों में बंधुआ श्रम की स्थिति की समीक्षा के दौरान तब तक कहीं और नहीं देखा था। यह भी उल्लेखनीय है कि कुछ परिवारों को 'नबार्ड' से ऋण दिलाकर अपना कोई व्यवसाय या धंधा करने का अवसर दिलाया गया। ग्राम कंजरा पत्थर में 36 सदस्यों के 17 परिवारों से मुलाकात के दौरान मैं एक ऐसे श्रमिक से मिला जो पुनर्वास पैकेज की राशि से रिक्शा चलाने का काम करने लगा था। एक ने किराने की दुकान खोल ली थी। कलेक्टर विदिशा ने विशेष रूचि लेकर कुछ श्रमिकों को उसी इलाके में मज़दूरी का काम दिला दिया था। मुझे यकीन हुआ कि लगभग सभी परिवार गुज़ारे लायक कमाई करके आरामदेह तो नहीं, लेकिन शोषण से मुक्त सादी और सम्मानपूर्ण जिंदगी जी सकते थे।

मार्च 2003 में स्वामी अग्निवेश ने मुझे मध्य प्रदेश के शिवपुरी जिले में बंधुआ मुक्ति मोर्चा द्वारा चलाये जा रहे एक पुनर्वास अभियान की सूचना दी। आयोग से अनुमति प्राप्त कर मैंने शिवपुरी का दौरा किया। युवा, आई.ए.एस. अधिकारी ज़िला कलक्टर कांता राव ने बड़े उत्साह के साथ मुझे पुनर्वास अभियान की पूरी जानकारी दी। जुलाई 2002 में सहरिया अनुसूचित जनजाति के 15 परिवारों के 27 सदस्य–15 पुरूष और 12 महिलाओं को बंधुआ मुक्ति मोर्चा द्वारा बंधुआ श्रम से मुक्त कराया गया था। ये लोग शिवपुरी जिले में बसना चाहते थे। जिला कलक्टर ने शिवपुरी शहर के पास ही ग्राम बांस खेड़ी में जमीन का एक–एक टुकडा अलॉट कर, पुनर्वास पैकेज की धनराशि से इंदिरा आवास योजना वाले मकान बनाने के लिए आर्थिक सहायता उपलब्ध कराई। चूंकि ये लोग बरसों से पत्थर की खदानों पर काम कर रहे थे, इन्होंने खदानों के लीज़ दिलाये जाने की प्रार्थना की। कलक्टर ने विधिवत् इनके स्वयं सहायता समूह गठित कर इन्हें 12 हेक्टेयर खदानी ज़मीन अलाट कर दी जहां शीघ्र ही ये लोग काम करने लगे। इनकी बस्ती में एक हैण्ड पंप लगवाकर पेय जल की व्यवस्था की गई। इनके 3 से 6 वर्ष की उम्र के सभी बच्चों को ग्राम बांस खेडी के आंगनवाडी केन्द्र से जोड़ दिया गया। 23 बच्चों को बांसखेड़ी की प्राथमिक पाठशाला में भर्ती कराया गया। 17 बड़े बच्चे को फरीदाबाद में बंधुआ मुक्ति मोर्चा द्वारा चलाये गए आवासीय स्कूल में भर्ती कराया गया। रेडक्रॉस के सौजन्य से एक विशेष स्वास्थ्य शिविर आयोजित कर इनका स्वास्थ्य परीक्षण कराया गया तथा 22 वयस्क और 3 बच्चों के मुफ्त उपचार की भी व्यवस्था की गई। इन सभी परिवारों के नाम जिला शिवपुरी में चल रहे बी.पी.एल. सर्वेक्षण में दर्ज कराये गये। इनको बी.पी.एल. राशन कार्ड जारी हो गए तथा ग्राम बांस खेड़ी में सार्वजनिक वितरण प्रणाली की फेयर प्राइस शॉप खोल दी गई।

मुक्त बंधुआ श्रमिकों के मुखिया सिद्धा पुत्र हज़ारी से हुई बातचीत बड़ी रोचक थी। उसने और उसके साथी बुद्धा पुत्र बधई ने अपनी गुलामी की ज़िदगी और उससे रिहाई का सिलसिला क्रमवार सुनाया। उन्होंने बड़े उत्साह से अपने स्वतंत्र काम के बारे में बताया। पहले बंधुआ मज़दूर की हैसियत से पति–पत्नी मिलकर 50 रूपये रोज़ कमाते थे। अब उनकी आय 250 रू0 प्रतिदिन है। वे खुश हैं कि उनके बच्चे पढ़ रहे हैं। उनके जागे स्वाभिमान का एक स्पष्ट तथा चिरस्मरणीय प्रमाण मिला। अपने घर बनाने के काम में वे पानी की कमी अनुभव कर रहे थे। कलक्टर ने आश्वासन दिया कि वे शिवपुरी नगरपालिका से रोज़ एक टैंकर पानी भेजने की व्यवस्था करा देंगे। मैंने उनको यह सुविधा मुफ्त घोषित करने से रोकते हुए मुखिया से पूछा कि क्या वे अतिरिक्त पानी मुफ्त चाहते हैं या औरों की तरह निर्धारित दामों पर। मुझे असीम प्रसन्नता हुई जब सिद्धा ने तपाक से कहा कि वे इस सुविधा का मूल्य चुकाना चाहेंगे। मैंने कांता राव को बधाई दी कि उसने एक लंबे अरसे से गुलामी का गरिमाविहीन जीवन जीने वाले इन लोगों में आत्म सम्मान की भावना पैदा कर दी थी।

एक और मार्मिक बात। मेरे आने की सूचना पाकर ज़िला प्रशासन के अधिकारियों के अलावा शिवपुरी शहर के कुछ संभ्रांत नागरिक भी उस जगह एकत्र हो गये थे। शिवपुरी लॉयन क्लब के पदाधिकारी श्रमिकों के लिए पका हुआ खाना लाये थे। इस तरह की चैरिटी में मुझे कभी रूचि नहीं रही है। उस अवसर पर तो मुझे यह बात और भी खली। मैंने अपने तरीके से उन्हें समझाया कि दया के रूप में खाना बांटने के बजाये उनके साथ बैठकर सभी लोग खाना खायें तो ज्यादा अच्छा रहेगा। उन लोगों को खाने के डिब्बे पकड़ाते हुए हमने भी एक डिब्बे से वही पदार्थ चखकर उन्हें उनकी इन्सानी बराबरी का अहसास दिलाने की कोशिश की। बाद में वहीं मौजूद एक अध्यापक ने पत्र लिखकर मेरी प्रशंसा करते हुए मुझे मेरे कहे कुछ शब्द याद दिलाये थे जो स्वयं मुझे बहुत अच्छे लगे। मैंने कहा था: "हम लोग दीन दुखियों के आंसू पोंछ कर खुद को गौरवान्वित अनुभव करते हैं। हम यह भूल जाते हैं कि इन आसुंओं के लिए हम ही किसी न किसी रूप में ज़िम्मेदार हैं। उनके आंसू पोंछने से कहीं बड़ी सेवा उन्हें रोने से बचाने की स्थिति सुनिश्चित करना है। उन्हें अभाव तथा विपन्नता से मुक्त कराके गरिमामय जीवन के अवसर प्रदान कराना है।"

वर्ष 2003 में झारखण्ड में बंधुआ श्रम की स्थिति की समीक्षा के दौरान मैंने मोटे तरीके से पुनर्वास योजना का मूल्यांकन करने का प्रयास किया था। झारखण्ड के ज़िला लोहरदग्गा में वर्ष 1996–97 ओर 1998–99 के बीच उत्तर प्रदेश से मुक्त करवाकर लाये गये 5 बंधुआ श्रमिकों के पुनर्वास की व्यवस्था की गई थी। इनमें से चार को योजना के तहत दिए जाने वाले पैकेज के अलावा दो–दो एकड़ भूमि भी अलॉट की गई। तीन को इन्दिरा आवास योजना तथा दो को मिलियन वैल स्कीम का लाभ दिलाया गया। एक को कपड़े की दुकान खोलने के लिए 13,000/– रूपये का ऋण उपलब्ध कराया गया। दो को सामाजिक सुरक्षा पेंशन स्वीकृत की गई। मैं जानना चाहता था कि सरकारी रिपोर्टों में पुनर्वासित दिखाये गए इन श्रमिकों की वास्तविक स्थिति क्या है? मैंने जिला कलक्टर लोहरदग्गा को स्वयं इन पांचों व्यक्तियों से संपर्क कर, उनकी आर्थिक दशा का जायजा लेकर रिर्पोट भेजने के लिए कहा। पहली रिपोर्ट जो अनुविभागीय अधिकारी की जांच पर आधारित थी मुझे संतुष्ट नहीं कर सकी। मेरे आग्रह पर कलक्टर ने स्वयं जांच करके जो रिपोर्ट भेजी वह उल्लेखनीय है। इसके अनुसार 5 में से 3 व्यक्ति गांव में खेती से अपने परिवर पाल रहे हैं तथा उन्हें काम के लिए घर छोड़ना नहीं पड़ता। उनका पुनर्वास संतोषजनक साबित हुआ है। शेष दो फिर उ0 प्र0 में ईंट भट्टों पर बंधुआ श्रमिकों की हैसियत से काम करने लगे हैं। पुनर्वास की यह सफलता (60 प्रतिशत) कम नहीं कही जा सकती, लेकिन गौर करने लायक बात यह है कि इन लोगों के पुनर्वास के लिए भारत सरकार की योजना का 20,000/– रू0 का पैकेज ही नहीं भूमि का आबंटन तथा अन्य योजनाओं का लाभ भी दिलाया गया था। स्थाई तथा टिकाऊ पुनर्वास तभी संभव है। वापस ईंट के भट्टों पर जाने वाले दो व्यक्तियों में से एक को भूमि भी अलॉट हुई थी। मेरे विचार में वह भी कोशिश करके गांव में ही जीने लायक कमाई

कर सकता था। इस तरह के कुछ और प्रकरणों के अध्ययन के फलस्वरूप मुझे मज़दूरों के पलायन (माइग्रेशन) में 'पुश' तथा 'पुल' फैक्टर की बात समझ में आई। मुझे जब भी मौका मिला जिला कलक्टरों को समझाने की कोशिश की कि वे 'पुल फैक्टर' को कंट्रोल करने में अपना समय तथा शक्ति गंवाने के बजाये 'पुश फैक्टर' पर अपना प्रयास केन्द्रित करें। दूसरे किनारे की कशिश और बेहतर जिदंगी की संभावना लोगों को अपने घरों से दूर खींचती रहेगी। यह कोई नई बात नहीं। यह सारी दुनिया में हो रहा है। ग़रीबी से निजात और अमीरी की हवस दो अलग बातें हैं। गरीबी से छुटकारा पाने की कोशिश करने वालों की संख्या इतनी अधिक नहीं कि हम सोचने लगें कि कुछ नहीं किया जा सकता है। बड़ी संख्या तो उनकी है जो कम अमीरी से अधिक अमीरी की ओर बढ़ने में लगे हैं। उनकी दौड़ अंतहीन है क्योंकि वह ज़रूरत से नहीं लालच से जुड़ी है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि ग़रीबी उन्मूलन की वर्तमान योजनाओं के सही संचालन तथा उपलब्ध संसाधनों के युक्तिपूर्ण उपयोग से यह व्यवस्था की जा सकती है कि ग़रीब ग्रामीण लोगों को काम की तलाश में मजबूरन घर समाज छोड़कर दूर के स्थानों को जाना न पड़े।

यह सच है कि बंधुआ श्रम अब पुराने पारंपरिक रूपों में बहुत कम दिखाई देता है और कामगारों में अपने अधिकारों के बारे में बढ़ती चेतना शोषण तथा उत्पीड़न की पुरानी प्रणालियों को समाप्त कर रही है। लेकिन भूमण्डलीकरण और बाजारी व्यवस्था के इस दौर में आर्थिक शोषण के नये तरीके ईजाद हो रहे हैं। दुर्बल वर्गों के करोड़ों भूमिहीन इन्सानों के पास जीवित रहने के लिए सिवाय अपना श्रम बेचने के कोई अन्य उपाय नहीं है। आवश्यकता के बजाये लालच से चलने वाली आज की दुनिया में किसी भी मज़दूर को उसके श्रम की उचित कीमत एक अच्छी और कल्याणकारी शासन व्यवस्था ही दिला सकती है। खुले बाजार की व्यवस्था में आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया जहां कुछ क्षेत्रों को सरकारी हस्तक्षेप से मुक्त करा देती है, कुछ पहलुओं पर निगरानी की आवश्यकता बढ़ जाती है। सर्वोच्च न्यायलाय द्वारा स्पष्ट की गई व्यापक परिभाषा के अनुसार देश के विभिन्न राज्यों में बंधुआ श्रमिकों की संख्या में वृद्धि हो रही है। श्रम मंत्रालय से समय–समय पर जारी होने वाले निर्देशों, गैर सरकारी संगठनों के प्रयासों तथा राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के हस्तक्षेप के बावजूद बंधुआ श्रमिकों के चिह्नांकन का काम धीमी गति से चल रहा है। चिन्हित बंधुआ श्रमिकों के पुनर्वास की योजना कतई प्रभावी सिद्ध नहीं हुई है। समस्या के मूल कारण सर्वविदित हैं: गरीबी, भूमिहीनता, विपन्नता, आजीविका के साधनों का अभाव तथा कर्ज़दारी सारे सरकारी प्रयास बीमारी को जड़ से निपटाने के बजाये लक्षण मिटाने के काम में लगे हैं। समस्या का संपूर्ण और स्थायी हल सुझाने की क्षमता मुझमें नहीं है। अपने अनुभव से मैं इतना अवश्य कह सकता हूं कि श्रम से संबंधित कुछ कानूनों का सख्ती से पालन कराके बंधुआ श्रम की घटनाओं में काफी कमी लाई जा सकती है। ये अधिनियम हैः न्यूनतम वेतन अधिनियम 1948, बालश्रम (प्रतिषेध एवं विनियिमन) अधिनियम, 1986।

बंधुआ श्रम मानवीय गरिमा पर सबसे बड़ा आघात है। मानव अधिकारों का यह जघन्यतम उल्लंघन है। सभी नागरिकों को वंश, जाति, धर्म, लिंग और भाषा के भेदभावों के बिना सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय दिलाने का वादा करने वाले संविधान को अमल में आये 57 साल हो गये हैं। बंधुआ श्रम की कुत्सित प्रथा समाप्त करने वाला अधिनियम भी 31 साल से लागू है। इसके बावजूद बंधुआ श्रम की दासता का सिलसिला जारी है। यह हमारी स्वाधीनता की रोशनी में उसी किस्म का धब्बा है जिसका ज़िक्र मशहूर पाकिस्तानी शायर फ़ैज अहमद फ़ैज ने आज़ादी के आगमन को 'यह दाग़ दाग़ उजाला' बताते हुए किया था। एक महान् आर्थिक शक्ति के रूप में उभरता 21वीं शताब्दी का भारत सामंती युग के इस कलंक को साथ लेकर आगे नहीं बढ़ सकता।

मानवाधिकार, भारतीय संविधान और इनका क्रियान्वयन

* डॉ. संजय दुबे

मानव चेतना के संपूर्ण विकास के लिए मानव अधिकारों का होना अत्यावश्यक है। वे सभी अधिकार जो मनुष्य की स्वतंत्रता व गरिमा को पोषित करते हैं और उसके सामाजिक, भौतिक एवं आध्यात्मिक कल्याण के लिए आवश्यक हैं, मानवाधिकार कहलाते हैं। मानवाधिकार के सार्वभौमिक घोषणा पत्र में भी उल्लेख है कि "कानून के समक्ष सभी समान हैं और बिना किसी भेद के कानून की सुरक्षा पाने के अधिकारी है"। भारतीय संविधान में भी इसे कुछ परिवर्तन के साथ सम्मिलित किया गया है। मानव अधिकारों की घोषणा से संपूर्ण मानव जाति में सुरक्षित भविष्य के प्रति विश्वास उत्पन्न हुआ है। मानवाधिकारों की प्रतिबद्धता को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने वर्ष 1993 में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की स्थापना की। भारत में मानवाधिकारों के क्रियान्वयन हेतु राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग को सशक्त एवं सक्षम बनाया गया है। सिविल न्यायालय को प्राप्त शक्तियां, शिकायतों की जांच के लिए आयोग को भी प्राप्त हैं। मानवाधिकार की रक्षा के लिए विभिन्न आयोग गठित किए गए हैं जैसे राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग, राष्ट्रीय महिला आयोग, बाल अधिकार संरक्षण आयोग, आदि। मानवाधिकारों की रक्षा एवं क्रियान्वयन हेतु सूचना प्राप्त करने का अधिकार महत्वपूर्ण साधन है। अधिकारों के साथ–साथ कर्तव्यों को भी शामिल किया जाना आवश्यक है अन्यथा टकराव की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। मनुष्य अपने दायित्वों के प्रति जागरूक रहेगा तो अधिकार प्रत्येक को स्वयं ही प्राप्त हो पाएंगे। अतः मानवीय संवेदनाओं के आधार पर मानवाधिकारों का क्रियान्वयन अधिक सहज हो पाएगा।

मानव इस सृष्टि की सर्वोत्तम रचना है। उसका विकास निश्चित रूप से इस

* निदेशक, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, दिल्ली

सृष्टि का विकास है। आदि काल से वर्तमान तक 'मानव' विकास के अनेक चरणों से गुजरा है। कभी दासता की जंजीरों में जकड़ा, पशुओं के समान जीवन को ढोता, कभी विद्रोह और क्रान्ति दूत के रूप में पूरे समाज को आन्दोलित करता तो कभी विवेकशील और चिन्तनशील इकाई के रूप में अपने और अपने साथियों के भविष्य को संवारने हेतु शासन व्यवस्था से आग्रह, समझौता अथवा टकराता दिखाई देता है। मात्र मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जिसे निरन्तर समाज की आवश्यकता रही है और इसी समाज में वह अपने और पूरे समाज के विकास के प्रयास कर सकता है। प्रत्येक मनुष्य में अनेक क्षमताएं, प्रतिभाएं और सम्भावनाएं होती हैं और इनके विकास के लिए उसे अनुकूल परिस्थितियां और उचित अवसरों की आवश्यकता होती है। प्रख्यात राजनीतिक विचारक टी.एच. ग्रीन का कहना है "मानव चेतना अपना विकास चाहती है। चेतना के लिए स्वतंत्रता आवश्यक है और स्वतंत्रता के लिए अधिकार आवश्यक हैं।" प्रो0 हेराल्ड लास्की का मानना है कि अधिकारों की अनुपस्थिति में मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास सम्भव नहीं है। अतः मनुष्य प्रारम्भ से ही समाज अथवा राज्य के समक्ष अपनी मांगें प्रस्तुत करता रहा है। यह मांगें उन स्थितियों एवं अवसरों को प्राप्त करने के लिए थीं जो उसके विकास के लिए आवश्यक थे। यहां यह उल्लेखनीय है कि जब मनुष्य को राज्य द्वारा प्रदत्त कोई भी अधिकार प्राप्त नहीं था, तब भी उसको जीने का अधिकार था। यह एक ऐसा प्राकृतिक अधिकार था जिसका मनुष्य कभी भी परित्याग नहीं कर सकता। जान लॉक के अनुसार राज्य की उत्पत्ति से पहले भी मनुष्य के पास कुछ प्राकृतिक अधिकार थे जिनमें जीवन, स्वतंत्रता और सम्पत्ति के अधिकार प्रमुख थे। इसी प्रकार रुसो का भी मानना था कि प्राकृतिक अधिकार किसी एक व्यक्ति अथवा संस्था को नहीं अपितु पूरे समाज को सौंपे गए थे। अनेक विचारकों और चिन्तकों ने अधिकारों की अवधारणा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। यह प्राकृतिक अधिकार ही मानवाधिकारों का आधार बने। अतः ऐसे सभी अधिकार जो मनुष्य की स्वतंत्रता व गरिमा का पोषण करने तथा उसके भौतिक, नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक कल्याण के लिए अनिवार्य होते हैं, मानवाधिकार की श्रेणी में आते हैं।

मानवाधिकारों की प्राप्ति के लिए किए गए संघर्ष का इतिहास भी उतना ही पुराना है जितना मानव सभ्यता का इतिहास। आदि मानव से लेकर आज तक के मानव द्वारा अपने निजी स्वार्थों और हितों के लिए अन्य प्राणियों के अधिकारों का हनन एक निर्विवाद और निरन्तर सत्य रहा है। शक्ति सम्पन्न वर्ग अपने हितों के लिए दुर्बल वर्ग का शोषण करता रहा है। इसी निर्बल वर्ग को दस्यु और दास की संज्ञा दी गई और उनके साथ पशुओं से बदतर व्यवहार किया गया। शासक की इच्छा ही कानून थी। परन्तु समय–समय पर शोषित वर्ग ने भी विद्रोह किए, शोषकों से टकराया और अधिकारों के लिए संघर्ष किया। आधुनिक जनतांत्रिक अधिकारों के लिए संघर्ष मुख्यतः तेरहवीं शताब्दी में मुखर हुआ। ब्रिटेन में 1215 ई0 में प्रसिद्ध मैग्नाकार्टा की घोषणा निरंकुश शासकों पर नियंत्रण करने का साधन बनी। 1628 के पैटीशन आफ राईट्स तथा 1689

के बिल आफ राइट्स में मानवाधिकारों की विस्तृत अवधारणा देखने को मिलती है। 1776 में हुए उत्तरी अमेरिका के स्वतंत्रता संग्राम को भी अधिकारों के लिए किए गए संघर्ष का एक हिस्सा माना जा सकता है। 1789 की फ्रांसीसी क्रांति के समय सभी मनुष्यों की समानता, स्वतंत्रता, सुरक्षा और दमन के विरुद्ध अधिकारों की पुष्टि की गई। दोनों विश्वयुद्ध भी साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष का परिणाम थे। इन विश्व युद्धों में मानवाधिकारों का खुल कर उल्लंघन हुआ। एक तरफ हिटलर ने गैस चैम्बरों में हज़ारों निरपराध लोगों को मौत के घाट उतारा तो दूसरी ओर मित्र देशों ने हिरोशिमा और नागासाकी में परमाणु बम का प्रयोग कर लाखों लोगों का जीवन नष्ट किया।

इसी प्रकार की अनेकानेक बर्बर और पीड़ादायी घटनाएं भारत की धरती पर भी घटीं। मुगलकाल में स्थान–स्थान पर हुई बगावतें और लड़ाईयां इसी संघर्ष का एक हिस्सा थीं। 1857 से प्रारम्भ हुए इस संघर्ष की पराकाष्ठा 1919 को देखने को मिली जब अपने अधिकारों के लिए आवाज उठाने वाले हजारों भारतीयों को गोलियों से भून दिया गया। 1919 में ही अंग्रेजों ने 'रोलेट एक्ट' जैसा काला कानून लागू किया। जैसे–जैसे अत्याचार बढ़े, अधिकारों का हनन हुआ वैसे–वैसे संघर्ष भी तीव्र और उग्र हुआ और इसकी परिणति भारत की स्वतंत्रता के रूप में हुई। स्वतंत्र भारत के लिए संविधान का निर्माण करने वाले संविधान सभा के सभी सदस्य इस राष्ट्रीय आंदोलन के भागीदार रहे थे। अतः उनके सामने स्पष्ट लक्ष्य था कि स्वतंत्र भारत के नागरिकों को वे सभी अधिकार सुनिश्चित किए जाएं जिनकी प्राप्ति के लिए वे निरन्तर संघर्ष करते रहे हैं और जिनसे उन्हें वंचित रखा गया था।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद 1945 में सैन फ्रांसिस्को में मानवाधिकारों और स्वतंत्रताओं को बढ़ावा देने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर को स्वीकार किया गया। चार्टर में कई स्थानों पर मानवाधिकार का स्पष्ट उल्लेख है। 1946 में संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग की स्थापना की गई जिसे मानवाधिकारों से सम्बन्धित एक विस्तृत अन्तरराष्ट्रीय दस्तावेज तैयार करना था। आयोग ने मानवाधिकारों का सार्वभौमिक विश्व घोषणा पत्र तैयार किया और 10 दिसम्बर 1948 को इसे सर्वसम्मति से महासभा में पारित किया गया। जब आयोग मानवाधिकार का घोषणा पत्र तैयार कर रहा था, उस समय 22 जनवरी 1947 को भारत की संविधान सभा में एक प्रस्ताव पारित करके ऐसे संविधान की कल्पना की गई "जिसमें भारत के सभी लोगों को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय, स्तर जन्य समानता, अवसर की समानता तथा विधि और सार्वजनिक नैतिकता की मर्यादा के अधीन विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, आस्था, उपासना, व्यवसाय, संगठन तथा कर्म की स्वतंत्रता को सुनिश्चित एवं सुरक्षित रखा जाएगा।" कहने का अभिप्राय यह है कि भारत के संविधान निर्माता मानवाधिकारों के प्रति पूर्णतः सजग और भारतीय संविधान में इन्हें समाहित करने के लिए दृढ़ संकल्प थे। संयुक्त राष्ट्र के अधिकार पत्र पर हस्ताक्षर करके भारत इन अधिकारों के प्रति अपनी आस्था और सहमति व्यक्त कर चुका था।

राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान अनेक अवसरों पर स्वतंत्रता और मूलभूत अधिकारों के लिए दावे किये जाते रहे। बाल गंगाधर तिलक ने कहा "स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे प्राप्त करके रहूंगा।" दिसम्बर 1927 के मद्रास के कांग्रेस अधिवेशन में अधिकारों के घोषणापत्र के आधार पर भारत के लिए स्वराज संविधान का प्रारूप तैयार करने का निर्णय लिया। इसी सन्दर्भ में 1928 में मोती लाल नेहरू कमेटी ने 19 मौलिक अधिकारों की घोषणा की। 1931 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने कराची अधिवेशन में मूलभूत अधिकारों के प्रति अपनी प्रतिबद्धता का संकल्प लिया जिसमें न्यूनतम वेतन, अस्पृश्यता उन्मूलन जैसे सामाजिक, आर्थिक अधिकार सम्मिलित थे। कैबिनेट मिशन प्लान ने संविधान सभा की मांग को स्वीकार किया तथा भारत के संविधान में प्रत्याभूत मौलिक अधिकारों की आवश्यकता को भी माना। 22 जनवरी 1947 को जवाहर लाल नेहरू द्वारा प्रस्तुत उद्देश्य प्रस्ताव को संविधान सभा में पारित किया गया जिसमें भारत के भावी शासन के लिए एक ऐसे संविधान के निर्माण का संकल्प किया गया जो भारत के लोगों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, प्रतिष्ठा, अवसर और कानून के समक्ष समानता; विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, आस्था, उपासना, व्यवसाय की कानून और नैतिकता के अन्तर्गत स्वतंत्रता सुनिश्चित और प्रत्याभूत करेगा। अतः मानवाधिकार के घोषणा पत्र से पूर्व ही भारतीय संविधान निर्माता मानवाधिकारों को संविधान में सम्मिलित करने का निश्चय कर चुके थे। 26 नवम्बर 1949 को पारित और 26 जनवरी 1950 से लागू भारतीय संविधान में वर्णित मौलिक अधिकारों और मानवाधिकारों के सार्वभौमिक घोषणा पत्र के अनुच्छेदों में पर्याप्त साम्य है, जिन्हें निम्नलिखित अनुच्छेदों के माध्यम से स्पष्ट देखा जा सकता है।

मानवाधिकार के सार्वभौमिक घोषणा पत्र के अनुच्छेद 7 को "कानून के समक्ष सभी समान है और बिना किसी भेदभाव के कानून की सुरक्षा पाने के अधिकारी हैं" भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 में भाषा के थोड़े परिवर्तन के साथ सम्मिलित किया है" राज्य किसी व्यक्ति को कानून के समक्ष समानता अथवा विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा। मानवाधिकारों के अनुच्छेद '2' "नस्ल, रंग, लिंग, भाषा, धर्म, राजनीतिक अथवा अन्य विचार, राष्ट्रीय अथवा सामाजिक मूल, सम्पति, जन्म अथवा अन्य किसी स्थिति के आधार पर किसी भेदभाव के बिना प्रत्येक मनुष्य इस घोषणा में वर्णित सभी अधिकारों और स्वतंत्रताओं का अधिकारी है" को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15 (1) में समाहित किया गया है' – राज्य केवल धर्म, नस्ल, जाति, लिंग, स्थान अथवा इनमें से किसी भी आधार पर किसी नागरिक के साथ भेदभाव नहीं करेगा। सार्वभौमिक घोषणा के अनुच्छेद 21 (2) "प्रत्येक व्यक्ति को अपने देश की सरकारी सेवा तक पहुंच का समान अधिकार है" को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 16 (1) में देखा जा सकता है– "राज्य के अन्तर्गत किसी पद पर नियोजन अथवा नियुक्ति से जुड़े सभी विषयों में सभी नागरिकों के लिए अवसरों की समानता होगी। इसी प्रकार सार्वजनिक घोषणा पत्र के अनुच्छेद 19– "प्रत्येक को विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का

अधिकार है" को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19 (1) में सम्मिलित की गई स्वतंत्रताओं में देखा जा सकता है" सभी नागरिकों को भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार है"। इसी प्रकार घोषणा पत्र के अनुच्छेद 20 (1), 23 (4) और 13(1) को भी अनुच्छेद 19 (1) में ही सम्मिलित किया गया है जो प्रत्येक भारतीय नगारिक को छः स्वतंत्रताएं प्रदान करता है। जीवन और शरीर की सुरक्षा से सम्बन्धित घोषणा पत्र के अनुच्छेद '3' का भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 में वर्णन है, जिसके अनुसार किसी भी व्यक्ति को उसके जीवन अथवा वैयक्तिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अतिरिक्त किसी प्रकार से वंचित नहीं किया जाएगा। मानवाधिकार घोषणा पत्र का अनुच्छेद 4 – "किसी को भी दास अथवा दासता की अवस्था में नहीं रखा जाएगा और दासों के व्यापार को सभी रूपों में प्रतिबन्धित किया जाएगा" भारतीय संविधान के अनुच्छेद 23 (1) में समाहित प्रतीत होता है जिसके अनुसार "मानव का व्यापार, बेगार तथा इसी प्रकार का अन्य बलात श्रम प्रतिबन्धित है तथा इस प्रावधान का कोई भी उल्लंघन अपराध होगा जो कानून के अनुसार दण्डनीय होगा। घोषणा पत्र के अनुच्छेद 7 में वर्णित है कि "राज्यों को पुरुषों और महिलाओं दोनों को समान काम के लिए समान वेतन के अधिकार को स्वीकृति देनी चाहिए" और भारतीय संविधान का अनुच्छेद 39 (क) कहता है "पुरुषों और महिलाओं दोनों के लिए समान काम के लिए समान वेतन होगा।" घोषणा पत्र के अनुच्छेद 4 "सदस्य राज्यों को मान्यता देनी चाहिए कि अधिकारों की प्रकृति लोकतान्त्रिक समाज में केवल जनसाधारण के कल्याण में वृद्धि करना होना चाहिए" को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 38 में थोड़े भाषा परिवर्तन के साथ वर्णित किया गया है। जिसके अनुसार "राज्य, लोगों के कल्याण में वृद्धि करने वाली सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करेगा"। घोषणा पत्र के अनुच्छेद 14 को देखिए, इसमें वर्णित है "सदस्य राज्य ऐसी योजना बनाएं कि एक तर्कसंगत अवधि में निःशुल्क अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा देने की सुविधा हो सके"। इसी अनुच्छेद को भारतीय संविधान का अनुच्छेद 46 स्वीकार करते हुए कहता है" राज्य सभी 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेगा। कहने का अभिप्राय यह है कि भारतीय संविधान ने सार्वभौमिक घोषणा पत्र में व्यक्त सभी मानवाधिकारों को अपने में समाहित किया है। इन अनुच्छेदों को आप भारतीय संविधान के भाग 3 में वर्णित मौलिक अधिकारों अथवा भाग 4 में वर्णित राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों में खोज सकते हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 से लेकर अनुच्छेद 51 तक मानवाधिकारों को ही मौलिक अधिकारों एवं नीति निदेशक सिद्धांतों के रूप में व्यक्त एवं वर्णित किया गया है।

आइए, एक बार संक्षिप्त रूप में यह देखें कि इस सार्वभौमिक मानवाधिकार घोषणा के 30 अनुच्छेदों में किन अधिकारों को स्वीकृत और सम्मिलित किया गया है।

1) सभी मनुष्य प्रतिष्ठा और अधिकारों के संदर्भ में स्वतंत्र और समान पैदा हुए हैं।

2) सभी को बिना किसी भेदभाव के इस घोषणा में सन्निहित अधिकारों और स्वतंत्रताओं का हक है।

3) प्रत्येक को अपने जीवन, स्वतंत्रता और अपने शरीर की सुरक्षा का अधिकार है।

4) किसी को दासता या पराधीनता की दशा में नहीं रखा जाएगा।

5) किसी के प्रति निर्दय अमानुषिक या अपमानजनक व्यवहार नहीं होगा।

6) प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक स्थान पर कानून की दृष्टि में व्यक्ति के रूप में स्वीकार किए जाने का अधिकार है।

7) कानून की दृष्टि में सभी समान है और सभी को बिना भेदभाव के समान कानूनी संरक्षण का अधिकार है।

8) प्रत्येक व्यक्ति को अधिकारों का उल्लंघन करने वालों के विरुद्ध उपचार प्राप्त करने का अधिकार है।

9) किसी को मनमाने ढंग से गिरफ्तार, नजरबन्द या देश से निष्कासित नहीं किया जा सकता।

10) आपराधिक मामले में आरोपित व्यक्ति की सुनवाई न्याय संगत और निष्पक्ष न्यायाधिकरण में सार्वजनिक तौर पर होगी।

11) अदालत द्वारा अपराधी घोषित होने तक प्रत्येक व्यक्ति को निर्दोष माने जाने का अधिकार है।

12) किसी भी व्यक्ति की अन्तरंगता, उसके परिवार, घर अथवा पत्राचार के साथ स्वेच्छाचारी ढंग से हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा। इस प्रकार के हस्तक्षेप के विरुद्ध कानून के संरक्षण का अधिकार होगा।

13) प्रत्येक व्यक्ति को अपने देश में आवागमन और आवास का अधिकार है और उसे स्वदेश सहित किसी भी देश को छोड़ने और स्वदेश लौटने का अधिकार है।

14) प्रत्येक व्यक्ति को राजनीतिक कारणों से उत्पीड़न से बचने के लिए अन्य देश में शरण लेने का अधिकार है।

15) प्रत्येक व्यक्ति को एक राष्ट्रीयता का अधिकार है जिसे मनमर्जी से नकारा नहीं जाएगा।

16) प्रत्येक वयस्क स्त्री और पुरुष को विवाह करने और परिवार बनाने का अधिकार है।

17) प्रत्येक व्यक्ति को सम्पत्ति का अधिकार है और उसे मनमाने ढंग से सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जाएगा।

18) प्रत्येक व्यक्ति को विचार, अन्तरात्मा अर्थात अन्तर्भावना और धैर्य की स्वतंत्रता का अधिकार है तथा इन्हें प्रकट करने की स्वतंत्रता है।

19) प्रत्येक व्यक्ति को विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार है।

20) प्रत्येक व्यक्ति को शान्तिपूर्ण ढंग से एकत्रित होने तथा संघ बनाने की स्वतंत्रता है।

21) प्रत्येक व्यक्ति को अपने देश की सरकार में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से भाग लेने, लोक सेवा में प्रवेश पाने का अधिकार है।

22) प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक सुरक्षा का अधिकार है तथा उसे राज्य द्वारा प्रदत्त आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार की प्राप्ति का अधिकार है।

23) प्रत्येक व्यक्ति को काम करने तथा रोज़गार चुनने तथा बेरोज़गारी से संरक्षण का अधिकार है। प्रत्येक को समान काम के लिए समान वेतन का अधिकार है।

24) प्रत्येक को काम के घंटों की न्यायपूर्ण सीमा तथा विश्राम और अवकाश का अधिकार है।

25) प्रत्येक व्यक्ति को तथा उसके परिवार को स्वास्थ्य एवं कल्याण की दृष्टि से उपयुक्त जीवन स्तर का अधिकार है तथा विवाहिता तथा अविवाहिता से जन्में समस्त बच्चों को समान सामाजिक संरक्षण का अधिकार है।

26) प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है और प्राथमिक शिक्षा निःशुल्क उपलब्ध होनी चाहिए।

27) प्रत्येक व्यक्ति को सांस्कृतिक जीवन में भाग लेने, कलाओं का रसास्वादन करने, वैज्ञानिक उन्नति तथा उसके लाभ में भागीदार होने का अधिकार है तथा उसे अपनी वैज्ञानिक, साहित्यिक अथवा कलात्मक कृति से उत्पन्न नैतिक और आर्थिक हितों की सुरक्षा का अधिकार है।

28) प्रत्येक व्यक्ति को ऐसी व्यवस्था का अधिकार है जिसमें इस घोषणा में उल्लिखित अधिकारों और स्वतंत्रताओं को पूर्णतः प्राप्त कर सके।

29) प्रत्येक व्यक्ति इन अधिकारों और स्वतंत्रताओं के निष्पादन में लोकतांत्रिक समाज के कानूनों से बंधा होगा जिससे दूसरों के अधिकारों और स्वतंत्रताओं को सुरक्षित रखा जा सकेगा। इन अधिकारों और स्वतंत्रताओं का उपयोग किसी भी स्थिति में संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों और सिद्धान्तों के विरुद्ध नहीं किया जाएगा।

30) इस घोषणा के किसी भी भाग का यह अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए जिससे यह प्रतीत हो कि किसी भी राज्य, समूह अथवा व्यक्ति को किसी ऐसे प्रयास में संलग्न होने का अधिकार है जो इस घोषणा में वर्णित अधिकारों को नष्ट करने का लक्ष्य लिए हो।

इन मानवाधिकारों की घोषणा से पूरी मानव जाति में नव आशा का संचार हुआ और एक सुरक्षित भविष्य के प्रति विश्वास उत्पन्न हुआ। मानवाधिकारों की घोषणा तथा

प्रसंविदाओं पर कई सहमत राज्यों ने हस्ताक्षर किए और अपनी प्रतिबद्धता प्रकट की। स्वयं संयुक्त राष्ट्र ने भी सिद्धान्त रूप में स्वीकार किए इन मानवाधिकारों को व्यवहारिक रूप देने के लिए नागरिक तथा राजनीतिक प्रसंविदा के भाग 4 में प्रावधान किया कि अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर एक मानवाधिकार समिति का गठन होगा जिसके लिए सदस्य राज्यों के नामित सदस्य 18 सदस्यों का निर्वाचन करेंगे। इस समिति का कार्यकाल चार वर्ष निश्चित किया गया और इसका मुख्यालय जेनेवा में बनाया गया है। सदस्य राज्यों के नागरिक, मानवाधिकारों के उल्लंघन की शिकायतें इस समिति के समक्ष कर सकेंगे। मानवाधिकारों के संरक्षण के लिए नागरिक तथा राजनीतिक प्रंसविदा में एक कार्य नियमावली निश्चित की गई है जिसके अनुसार यह समिति कार्य करती है।

मानवाधिकारों के प्रति प्रतिबद्ध भारत सरकार द्वारा मानवाधिकारों के उल्लंघन के मामलों के दृष्टिगत 28 सितम्बर 1993 को राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की स्थापना की गई। उक्त आयोग के सदस्यों एवं अध्यक्ष की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा एक विशेष समिति की सिफारिश पर की जाती है। प्रधानमंत्री की अध्यक्षता वाली इस विशेष समिति में लोकसभा अध्यक्ष, गृहमंत्री, भारत सरकार, लोकसभा एवं राज्य सभा में विपक्ष के नेता तथा राज्य सभा के उप–सभापति सदस्य होते हैं, जो राष्ट्रपति को अपनी सिफारिश भेजते हैं। भारत के राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का अध्यक्ष ऐसे व्यक्ति को नियुक्त किया जाता है जो उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश रह चुका हो। एक सदस्य जो उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश हो या रह चुका हो, एक सदस्य जो उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश हो या रह चुका हो। दो सदस्य जिन्हें मानवाधिकार संबंधी ज्ञान अथवा व्यावहारिक अनुभव हो। उच्चतम न्यायालय में कार्यरत न्यायाधीश अथवा उच्च न्यायालय में कार्यरत मुख्य न्यायाधीश को सदस्य नियुक्त करने के लिए भारत के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श लेना जरूरी है।

इनके अतिरिक्त राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग, राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग तथा राष्ट्रीय महिला आयोग के अध्यक्ष भी इस आयोग के सदस्य समझे जाते हैं [सेक्शन 12 धारा (बी) से (जे)] राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के अध्यक्ष का कार्यकाल पांच वर्ष तक का या 70 वर्ष की आयु, जो भी पहले हो, तक होता है। सदस्य का कार्यकाल भी पांच वर्ष का होता है लेकिन उनकी पुनर्नियुक्ति पांच वर्ष के लिए हो सकती है लेकिन किसी भी स्थिति में 70 वर्ष तक की आयु से अधिक नहीं हो सकती है। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के अध्यक्ष या सदस्य को पद से हटाने के लिए उस का उच्चतम न्यायालय द्वारा की गई जांच में दोषी पाया जाना अथवा अक्षमता का आरोप सिद्ध होना अनिवार्य है। इसी अधिनियम के अनुसार राज्य सरकारें भी अपने राज्यों में राज्य मानव अधिकार आयोग का गठन कर सकती हैं। इसके अतिरिक्त जिला स्तर पर भी एक सत्र न्यायालय को मानवाधिकार अदालत घोषित किया जा सकता है। उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि भारत मानवाधिकारों के क्रियान्वयन के प्रति पूर्णतः सजग एवं सक्रिय है।

क्रियान्वयन की दृष्टि से राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की शक्तियां और कार्य बहुत विस्तृत हैं। मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम के अनुसार राष्ट्रीय आयोग को निम्नलिखित दस कार्य सौंपे गएः–

1. अपनी पहल यानी स्वतः संज्ञान पर अथवा किसी पीड़ित व्यक्ति द्वारा अथवा उसकी ओर से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा की गई शिकायत की जांच करना।

2. किसी न्यायालय के समक्ष लम्बित किसी कार्यवाही में जिसमें मानव–अधिकारों के अतिक्रमण का कोई अभिकथन अन्तर्वलित हो, उस मामले में न्यायालय की सहमति से हस्तक्षेप करना।

3. राज्य सरकार के नियन्त्रण के अधीन किसी जेल या किसी अन्य संस्था का, जहां व्यक्ति उपचार, सुधार या संरक्षण के लिए रखा गया हो, वहां के निवासियों की परिस्थितियों का राज्य सरकार को सूचित करके निरीक्षण करना एवं उससे सम्बन्धित सिफारिशें करना।

4. मानव अधिकारों के संरक्षण के लिए संविधान में या संविधान के अधीन किसी अन्य विधि द्वारा किए गए पूर्व उपायों की समीक्षा करना तथा प्रभावपूर्ण कार्यान्वयन के लिए सिफारिश करना।

5. मानव अधिकारों में बाधक कारकों जिनमें आतंकवादी कार्य सम्मिलित हैं–की समीक्षा करना एवं उपयुक्त सुझाव देना।

6. मानवाधिकारों से संबंधित संधियों, अन्य दस्तावेजों तथा उपकरणों का अध्ययन करना एवं प्रभावपूर्ण कार्यान्वयन के लिए सिफारिशें करना।

7. मानव अधिकारों के क्षेत्र में शोध करना एवं उसका संवर्धन करना।

8. समाज के विभिन्न वर्गों के बीच मानव अधिकारों की जानकारी का प्रचार–प्रसार करना तथा प्रकाशनों, संचार, विचार माध्यमों, गोष्ठियों तथा अन्य साधनों के माध्यम से इन अधिकारों के संरक्षण के लिए उपलब्ध उपायों के प्रति जागरूकता में वृद्धि करना।

9. मानवाधिकारों के क्षेत्र में कार्य कर रहे गैर सरकारी संगठनों और संस्थाओं के प्रयासों को उत्साहित करना।

10. ऐसे अन्य सभी कार्य करना, जो मानव अधिकारों के संवर्धन के लिए आवश्यक समझे जाएं।

उपरोक्त दायित्व निर्वाह का व्यापक क्षेत्र इस बात को सुनिश्चित करता है कि भारत में मानवाधिकारों के क्रियान्वयन हेतु राष्ट्रीय आयोग को सशक्त एवं सक्षम बनाया गया है। मानवाधिकारों के उल्लंघनों की शिकायतों की जांच करते हुए आयोग केन्द्र सरकार अथवा किसी राज्य सरकार अथवा उसके अधीन किसी अन्य प्राधिकरण, संगठन अथवा संस्था से निश्चित समय के भीतर कोई भी जानकारी अथवा रिपोर्ट मांग सकता

है। यदि रिपोर्ट समय पर उपलब्ध न करवाई जाए तो आयोग स्वयं जांच कर सकता है। यदि आयोग सन्तुष्ट हो जाए कि जांच आवश्यक नहीं है अथवा विश्वास हो जाए कि संबंधित सरकार या प्राधिकरण द्वारा अपेक्षित कार्रवाई प्रारम्भ कर दी गई है अथवा पूरी कर ली गई है तो वह शिकायत के बारे में आगे कार्यवाही नहीं करेगा तथा शिकायतकर्ता को तदनुसार सूचित कर सकेगा। आयोग को शिकातयों की जांच करते समय वे सभी शक्तियां प्राप्त हैं जो सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 के अधीन किसी सिविल न्यायालय को प्राप्त हैं। आयोग को अपने कार्यों के पालन हेतु ऐसी शक्तियों का प्रयोग करने में एक सिविल न्यायालय और उसकी कार्यवाही को न्यायिक कार्यवाही समझा जाएगा।

ठीक इसी प्रकार से राज्य अपने क्षेत्र में राज्य मानवाधिकार आयोग का गठन कर सकते हैं। इनके सदस्यों की नियुक्ति भी एक विशेष समिति की सिफारिश पर राज्य सरकार करती है और यह आयोग अपने क्षेत्राधिकार के सभी नागरिकों की शिकायतों की जांच कर सकता है और जांच करने के बाद उचित कार्रवाई हेतु सिफारिश कर सकता है। इसी श्रृंखला में राज्य सरकार मानवाधिकार के उल्लंघन से जुड़े मामलों के शीघ्र निपटारे के लिए जिला सत्र न्यायालय को उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सहमति से मानवाधिकार न्यायालय के रूप में अधिकृत कर सकती है।

इन सबके अतिरिक्त समाज के कमजोर एवं शोषित वर्ग के हितों की रक्षा के लिए तथा उनके अधिकारों के संरक्षण हेतु अनेक अन्य आयोग भी गठित किए गये हैं। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को एक लम्बी अवधि तक शोषण और अन्याय सहना पड़ा जिसके फलस्वरूप इनके विकास का मार्ग अवरुद्ध रहा और सामाजिक समरसता की कमी रही। संसद ने अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए राष्ट्रीय आयोग गठित किया जो इनके हितों की रक्षा करने, इनके हितों को हानि पहुंचाने वाली शिकायतों की जांच करने, सामाजिक न्याय की दृष्टि से प्रदान की गई सुविधाओं को उपलब्ध करवाने तथा इनकी उन्नति का मूल्यांकन करने तथा अपने सुझाव देने का कार्य करता है। यह आयोग स्वयं कोई कार्रवाई तो नहीं कर सकता परन्तु कार्रवाई हेतु सिफारिश कर सकता है।

इसी प्रकार महिलाओं के हितों एवं अधिकारों के रक्षार्थ राष्ट्रीय महिला आयोग तथा राज्य महिला आयोगों का गठन किया गया है। समाज में महिलाओं को गरिमापूर्ण जीवनयापन का अधिकार है, परन्तु समय–समय पर उनकी अवहेलना, शोषण, दहेज एवं उत्पीड़न की घटनाएं सुनने और देखने को मिलती हैं। महिला आयोग न केवल पीड़ित महिलाओं की शिकायतों की ही जांच करते हैं, अपितु महिलाओं को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करने में भी सक्रिय भूमिका निभाते हैं। कार्य स्थलों पर यौन शोषण, अश्लील संकेत अथवा भाषा का प्रयोग, पुलिस द्वारा पीड़ित महिलाओं की प्राथमिकी दर्ज न करना, महिलाओं को पूछताछ के लिए देर रात तक थाने में रोकना अथवा पतियों

द्वारा की गई ज्यादतियों तथा दहेज उत्पीड़न के विरुद्ध पर्याप्त कदम उठाए गए हैं और महिलाओं को भयमुक्त जीवन की स्थितियाँ प्रदान करने के प्रयास किए गए हैं।

भारत में समय–समय पर साम्प्रदायिक दंगों के समाचार भी आते रहते हैं। विभिन्न धर्मों वाले इस पंथ निरपेक्ष देश में अल्प संख्यकों के हितों को सुरक्षित रखने के लिए एक राष्ट्रीय आयोग का गठन किया गया है। अन्य आयोगों की भांति यह आयोग भी अल्पसंख्यकों की शिकायतों की जांच करता है और अपनी सिफारिशें केन्द्र सरकार को भेजता है। अल्पसंख्यकों के हित में नीतियाँ बनाने के लिए यह सरकार को परामर्श भी दे सकता है। यहां यह उल्लेख करना आवश्यक है कि केन्द्र सरकार ही किसी जाति अथवा वर्ग विशेष को किसी विशेष क्षेत्र के लिए अथवा पूरे देश में अल्पसंख्यक घोषित कर सकती है और यह आयोग केवल घोषित अल्पसंख्यकों के लिए ही कार्य करेगा।

मानवाधिकारों की रक्षा एवं क्रियान्वयन हेतु सूचना प्राप्त करने का अधिकार एक अन्य महत्वपूर्ण साधन है। विश्व के सभी लोकतान्त्रिक देशों में इस अधिकार को एक अनिवार्य अंग के रूप में स्वीकार किया गया है। संयुक्त राष्ट्र के सार्वभौमिक मानवाधिकारों के घोषणा पत्र 1948 (अनुच्छेद 19) और नागरिक एवं राजनैतिक अधिकारों के अन्तरराष्ट्रीय सन्धि पत्र 1966 (अनुच्छेद 19 ए) में भी इस अधिकार को मान्यता दी गई है। भारत में 2005 में सूचना की पारदर्शिता सुनिश्चित करने, भ्रष्टाचार को रोकने तथा अधिकारियों एवं मन्त्रियों को जनता के प्रति उत्तरदायी बनाने की दृष्टि से "सूचना का अधिकार अधिनियम 2005" लागू किया।

इससे पूर्व सूचना का अधिकार केवल विधायिका, न्यायपालिका और प्रेस को ही प्राप्त था। लोकतंत्र में सर्वोच्च सत्ता जनता के हाथ में होती है और उसे यह जानने का भी अधिकार है कि उसके द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि क्या करते हैं तथा क्यों और कैसे करते हैं। इस अधिनियम से पूर्व जननेता अपने मतदाताओं के प्रति उदासीन रहते थे और यह मानकर चलते थे कि उनसे पूछताछ करने वाला कोई नहीं है। इस अधिनियम के लागू होने से जननेताओं की स्वेच्छाचारिता पर अंकुश लगेगा और वे अपने कृत्यों के प्रति अधिक सावधान एवं सतर्क रहेंगे। मतदाताओं को यह अधिकार है कि उन्हें चुनाव लड़ने वाले प्रत्याशियों के संबंध में पूरी सूचना उपलब्ध हो। अतः अब कानूनन यह अनिवार्य हो गया है कि चुनाव से पूर्व प्रत्याशी को लिखित रूप में अपनी शिक्षा, चल–अचल सम्पत्ति, क्या किसी आपराधिक मामले में सजा हुई है अथवा क्या किसी न्यायालय में कोई मुकदमा चल रहा है–से सम्बन्धित जानकारी देनी होती है।

सूचना के अधिकार के अन्तर्गत कोई भी व्यक्ति एक निश्चित शुल्क जमा करवा कर वांछित जानकारी प्राप्त करने के लिए आवेदन कर सकता है और आवेदक को तीस दिन के भीतर जानकारी उपलब्ध कराने का प्रावधान है। जीवन, मृत्यु अथवा व्यक्तिगत स्वतंत्रता के मामलों में जानकारी 48 घंटों में देनी होगी। विभिन्न न्यायालयों ने अपने निर्णयों के माध्यम से यह व्यवस्था दी है कि रोगी अस्पताल से अपने इलाज का मेडिकल

रिकार्ड, निलंबित अथवा निष्कासित किए गए कर्मचारी इसका कारण, उपभोक्ता को अपनी शिकायत के निवारण में हुई कार्यवाही तथा सन्देहास्पद मामलों में जानकारी प्राप्त करने का कानूनी अधिकार है।

पारदर्शिता के इस उपकरण से सरकारी कार्यालयों में भ्रष्टाचार कम होगा तथा निरंकुशता पर रोक लगेगी। कुछ संवेदनशील क्षेत्रों को इस अधिकार की परिधि से बाहर रखा गया है, क्योंकि उससे देश की सुरक्षा को खतरा हो सकता है और कुछ हद तक यह अनिवार्य भी है।

भारतीय न्यायपालिका नागरिकों के मौलिक अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं की संरक्षक है और समय–समय पर उच्चतम न्यायालय ने ऐसे निर्णय दिए हैं जिनसे विधायिका और कार्यपालिका आहत हुई है और कई बार टकराव की स्थिति भी बनी परन्तु जनहित के मामलों में उन निर्णयों का सर्वत्र स्वागत हुआ और उच्चतम न्यायालय ने अपनी भूमिका का दृढ़ता एवं निष्पक्षता से निर्वाह किया। उच्चतम न्यायालय के इन निर्णयों को न्यायिक सक्रियता (Judicial activism) का नाम दिया गया। 'मेनका गांधी बनाम भारत संघ' केस में उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया कि "किसी भी व्यक्ति के जीवन और स्वतंत्रता को किसी भी प्रकार का कानून बना कर छीना नहीं जा सकता" जीवित रहने के अधिकार में स्वास्थ्य की देखभाल, पर्यावरण की शुद्धता, रोजगार और शिक्षा तक को सम्मिलित किया गया है। इसी प्रकार बन्धुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत संघ मामले में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय देते हुए कहा कि "प्रत्येक व्यक्ति को शोषण मुक्त गरिमापूर्ण जीवन जीने का अधिकार है।" एक अन्य मामले में उच्चतम न्यायालय ने चिकित्सा अधिकारियों को कहा कि वे औपचारिकताएं पूरी करने के बजाय दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति के इलाज को प्राथमिकता दें। इस प्रकार उच्चतम न्यायालय ने नागरिकों के मानवाधिकारों के संरक्षण के लिए अतिरिक्त सक्रियता दिखाई। उच्चतम न्यायालय जनहित याचिकाओं के आधार पर अनेक निर्णय दे चुका है जिनसे असहाय और निर्धन वर्ग के कष्टों एंवं दु:खों का निवारण हुआ है। मानवाधिकार के हनन से पीड़ित व्यक्तियों को सरकार से आर्थिक मुआवजा दिलाने का मार्ग भी न्यायालयों ने ही खोला है।

जेलों में वर्षों से बंद कैदियों की स्थिति का जायजा लेने के लिए 23 अक्तूबर 1978 को उच्च्तम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश एवं अन्य न्यायाधीशों की एक टीम ने तिहाड़ जेल का निरीक्षण किया और उनकी स्थिति में सुधार लाने तथा इस विषय पर काम करने के लिए गैर सरकारी संस्थाओं को हस्तक्षेप करने की अनुमति प्रदान की। इसी प्रकार आपराधिक छवि वाले नेताओं को मंत्री नियुक्त करने पर भी सरकार की खिंचाई की। कहने का अभिप्राय यह है कि भारत में मानवाधिकारों के संरक्षण हेतु अनेक साधन एवं संस्थाएं उपलब्ध हैं।

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, राज्य मानव अधिकार आयोग, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग, राष्ट्रीय महिला आयोग, राज्य महिला आयोग,

अल्पसंख्यकों के लिए राष्ट्रीय आयोग, बालश्रम (प्रतिषेध एवं विनियमन) अधिनियम 1986, बन्धित श्रम पद्धति (उत्सादन) अधिनियम 1976, मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 तथा सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005; भारत में मानवाधिकारों को प्राप्त करवाने, उनके संरक्षण एवं क्रियान्वयन के सशक्त एवं सार्थक उपकरण एवं साधन हैं।

अन्त में यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि अधिकारों की प्राप्ति का आर्थिक स्थिति से सीधा संबंध है। गरीब देशों में गरीबी की स्थिति में जी रहे लोगों को ही ऐसे अधिकारों से वंचित रहना पड़ता है। अधिकार प्राप्त करने की जटिल प्रक्रिया और ज्ञान तथा शिक्षा की कमी निरन्तर आड़े आती है। भारत में इस स्थिति से उबरने के लिए उच्चतम न्यायालय ने जनहित याचिकाओं तथा उत्पीड़ित व्यक्ति अथवा समूह विशेष की ओर से समाज का कोई भी व्यक्ति अथवा संस्था द्वारा याचिका दायर करने की अनुमति एवं महत्व प्रदान किया है जिससे अनेक पीड़ित वर्गों एवं समूहों जैसे बंधुआ मजदूरों, विचाराधीन कैदियों को राहत मिली है। मानवाधिकारों के कार्यान्वयन से ही आज पर्यावरण के प्रति जागरूकता एवं जिम्मेवारी बढ़ी है।

निश्चित रूप से यह पूरी प्रक्रिया मानव जाति को राज्य अथवा राज्य सरकार से अधिकार दिलवाने की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति को यह आश्वासन मिला है कि उस पर अकारण अत्याचार और अन्याय नहीं किया जा सकता–परन्तु क्या इतने मात्र से मानव सुख और शन्ति प्राप्त कर सकेगा। अधिकार और कर्तव्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। मात्र अधिकार व्यक्ति को संघर्ष की ओर ले जा सकते हैं। आवश्यक है कि विविधता पूर्ण और असंतुलित समाज में मनुष्य अपने कर्तव्यों का ठीक तरह से पालन करें, राजनीतिक अधिकारों के साथ–साथ अपने सामाजिक दायित्वों के प्रति जागरूक रहें, मानवता के गुण धर्म को आत्मसात कर मानवीय व्यवहार करे तो ये सभी अधिकार प्रत्येक को स्वतः ही प्राप्त हो जाएंगे। वास्तव में युद्ध मैदानों में लड़े जाने से पूर्व मस्तिष्क में लड़े जाते हैं। भारत देश ऋषि, मुनियों और दार्शनिकों की भूमि रहा है और यहां "वसुधैव कुटुम्बकम" का दर्शन रहा है। सत्य, अहिंसा और प्रेम का सन्देश देने वाले इस भारत भू पर आज इन्हीं गुणों का अभाव दिखता है।

न्यायालयों, आयोगों तथा विधिक और सांविधानिक प्रावधानों के बावजूद इस विशाल और विविधता पूर्ण देश में मानवाधिकार हनन के समाचार यदा–कदा पढ़ने को मिल जाते हैं। भारत की गौरवशाली सांस्कृतिक विरासत और परम्पराएं मानवीय मूल्यों से भरपूर हैं और यही मूल्य मानवाधिकारों के व्यवहारिक पक्ष को समर्थन एवं आधार प्रदान करते हैं मानवीय मूल्य ही निर्धारित करते हैं कि अधिकार असीम नहीं होते–प्रत्येक अधिकार के साथ कुछ सीमाएं एवं कर्तव्य संलग्न हैं जो अधिकारों को सार्थक बनाते हैं। मानवीय संवेदनाओं और मूल्यों के आधार पर मानवीय व्यवहार से मानवाधिकारों का कार्यान्वयन अधिक सुगम एवं सरल होगा।

वैवाहिक मानव अधिकार का विधिक प्रतिबिम्ब

* डॉ. एस. डी. शर्मा

मानव की नैसर्गिक आकांक्षा नैसर्गिक तथा प्राकृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए उद्वेलित रहती है। इस प्रकार की आकांक्षा का मूल–भाव मानव के स्वतंत्र, समान और गरिमायुक्त वातावरण में पैदा होने में सन्निहित होता है। गरिमायुक्त वातावरण समतामूलक समाज का मूलभूत आधार होता है। गरिमायुक्त वातावरण में स्त्रियों तथा पुरूषों को समान रूप से आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नागरिक और राजनैतिक अधिकार प्राप्त होते हैं। इन अधिकारों को लागू करने में जातिय, धर्म, राष्ट्र एवं लिंग का विभेद करने से परिवार तथा समाज की समृद्धि प्रभावित होती है। सामाजिक समृद्धि सार्वजनिक विकास का परिचायक होती है। सामाजिक विकास मानव के लिए पौष्टिक भोजन, स्वास्थ्य, शिक्षा, प्रशिक्षण, लोक नियोजन का अवसर तथा अन्य समस्त आवश्यकताओं को समाहित करता है। विकास की प्राप्ति समाज की परम्परागत कुप्रथाओं के परित्याग से ही सम्भव होती है। कुप्रथा में परिणति के कारण मानव की आकांक्षा धूमिल होने लगती है। फलतः नवयुवक तथा नवयुवतियां अपनी वयस्क अवस्था प्राप्त करने के बाद भी अपने हित के निर्णयों के लिए अपने माता–पिता, संगे सम्बन्धियों अथवा हितैशियों पर निर्भर रहते हैं और उनके द्वारा लिये गये निर्णयों को परम्परागत स्वरूप में सहजता से अंगीकार कर लेते है। कालान्तर में इस तरह की स्वीकारोक्ति घरेलू हिंसा को जन्म देती है, जिसके कारण मानव के मानव अधिकारों का उल्लंघन होता है।

मानव अधिकारों का लक्ष्य मानवों की अन्तर्निहित गरिमा, समता और अहस्तान्तरणीय अधिकारों को प्रदत्त करना होता है। ये अधिकार स्वतन्त्रता, न्याय और

* संकायाध्यक्ष विधि संकाय, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, एस.एस. जे. परिसर, अल्मोड़ा–263601
(सम्बन्धित विषय पर लेखक ने 23 एवं 24 फरवरी 2007 को उच्च शिक्षा के दिग्विन्यास के प्रशिक्षार्थी प्राध्यापकों को कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखंड में व्याख्यान दिये।)

विश्व शान्ति के नींव के रूप में कार्य करते हैं। मानव अधिकारों के माध्यम से मानवों में विश्वास, निर्भयता और उच्च आकांक्षाओं की प्रतिपूर्ति होती है। उच्च आकांक्षा के कारण मानव अपने हित से विनिश्चय स्वयं करता है। इस प्रकार के विनिश्चय में मानव को अपने जीवन साथी के चयन का अधिकार प्राप्त है। प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह अपनी स्वेच्छा से विधिक प्रावधानों के अधीन रहते हुये अपने हित के निर्णय ले सके। इसके साथ ही महिलाओं को विशेष रूप से यह अधिकार है कि उनके विरूद्ध किसी भी रूप की घरेलू हिंसा नहीं होनी चाहिए। यदि किसी महिला के विरूद्ध किसी भी प्रकार की प्रत्यक्ष तथा परोक्ष हिंसा की जायेगी तो राज्य इस प्रकार की हिंसा से महिलाओं की संरक्षा करेगा, क्योंकि प्रत्येक प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक प्रपीड़न से संरक्षा प्राप्त करना मानव का मूलभूत अधिकार है। फलतः जहाँ मानव को स्वेच्छा से विवाह करने का अधिकार है, वहीं ठीक दूसरी ओर प्रत्येक महिला को विवाह से पहले और विवाह के पश्चात् घरेलू हिंसा से संरक्षा प्राप्त करने का अधिकार भी प्राप्त हैं। अतः सम्बन्धित मानव अधिकारों का क्रमशः वर्णन लोक जानकारी के लिए निम्नानुसार किया जाना सम्यक एवं समीचीन जान पड़ता है।

स्वेच्छानुसार विवाह करने का मानव अधिकारः– सम्प्रति मानव अधिकारों का मूलभूत स्रोत संयुक्त राष्ट्र संघ का चार्टर है। इसी उद्देशिका में स्पष्टतः संयुक्त राष्ट्र के सदस्य देशों ने अभिव्यक्त किया है कि हम मूलभूत मानव अधिकारों, मानव की गरिमा और मानव प्राणियों की योग्यता तथा पुरुष एवं महिला के समान अधिकारों में विश्वास करते हैं।[1] संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के लक्ष्य के अनुरूप मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा 1948 का सृजन किया गया है। इस घोषणा में मानवों के सर्वांगीण विकास के लिए सभी प्रकार के मानवीय अधिकारों का उल्लेख किया गया है। प्रारम्भ में मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा को स्वीकार करते समय संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों की संख्या मात्र 58 थी।[2] शनैः–शनैः यह संख्या बढ़ती गई और उपनिवेश स्वतंत्र होते गये और आज संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्यों की संख्या 192 तक पहुंच गई है। विश्व स्तर पर मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा के अनुरूप अधिकारों का बिगुल निनादित हो रहा है। इन घोषणाओं का लक्ष्य मानवों को गरिमा, समता तथा अन्तर्निहित अधिकारों को मान्यता देना है।[3]

(i) **मानव अधिकार की सार्वभौम घोषणा एवं विवाह का अधिकारः–** मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा को समतामूलक समाज की स्थापना के लिए, सभी के हितों के लिए तथा सभी के कल्याण के लिए घोषित किया गया है। इसके लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्यों का दायित्व है कि वह सम्बन्धित घोषणाओं की जानकारी, अनुपालन तथा प्रभावोत्पादक के लिए कार्रवाई सुनिश्चित करें तथा इन घोषणात्मक अधिकारों को आधार स्तम्भ मानकर सभी मानव प्राणियों के विकास के कार्यों को गति प्रदान करें। सार्वभौम घोषणा में मानवों को स्वतंत्र जीवन यापन करने के लिए सारभूत और मूलभूत अधिकारों

का सृजन किया गया है। मानव को प्रत्येक प्रकार की स्वतंत्रता के अन्तर्गत जीवन यापन करने का अधिकार दिया गया है। इसमें स्पष्टतः उल्लेख किया गया है कि "किसी व्यक्ति की एकान्तता, परिवार, घर या पत्र व्यवहार के प्रति कोई मनमाना हस्तक्षेप न ही किया जायेगा और नहीं किसी के सम्मान और ख्याति पर कोई आक्षेप हो सकेगा, ऐसे हस्तक्षेप या आक्षेपों के विरूद्ध प्रत्येक को कानूनी रक्षा का अधिकार प्राप्त है।[4] मानव अधिकारों के इस उपबंध से यह अभिप्राय सुस्पष्ट होता है कि किसी भी व्यक्ति को परिवार, घर आदि में स्वतंत्रता प्राप्त है और सम्बन्धित अधिकार में मनमाने रूप से हस्तक्षेप तथा व्यवधान उत्पन्न नहीं किया जायेगा। परिवार को प्रारम्भ करने के लिए विवाह की आवश्यकता होती है। इस आवश्यकता को सुदृढ़ करने के लिए मानव अधिकार के रूप में मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा ने अविछन्न स्वतंत्रता प्रदत्त कर रखी है। इसलिए परिवार की अनिवार्यता के लिए विवाह के अधिकार की पूर्ति किये जाने के लिए सम्बन्धित व्यक्ति स्वतंत्र है तथा इस अधिकार में कोई भी व्यक्ति मनमाने रूप से हस्तक्षेप नहीं कर सकता है।[5]

मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा 1948 के अनुच्छेद 16 में सुस्पष्ट तथा विस्तृत उल्लेख किया गया है कि बालिका, स्त्री–पुरुषों को बिना किसी जाति, राष्ट्रीयता या धर्म की रूकावटों के आपस में विवाह करने और परिवार की स्थापना करने का अधिकार है, उन्हें विवाह के विषय में, वैवाहिक जीवन में तथा विवाह–विच्छेद के बारे में समान अधिकार है।[6] विवाह का इरादा रखने वाले स्त्री–पुरुषों की पूर्ण और स्वतंत्र सहमति पर ही विवाह हो सकेगा।[7] परिवार समाज की स्वाभाविक और बुनियादी सामूहिक इकाई है और उसे समाज तथा राज्य द्वारा संरक्षण पाने का अधिकार है।[8] मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा में विवाह के अधिकार के उपबंध के साथ ही परिवार के अधिकार को भी मान्यता दी गई है। इससे यह स्पष्ट है कि परिवार के अधिकार से पहले विवाह का अधिकार आवश्यक है तथा विवाह के अधिकार और परिवार के अधिकार के मध्य अविच्छेदित सम्बन्ध है। इस प्रकार मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा के अनुच्छेद 12 परिवार का अधिकार तथा अनुच्छेद 16 विवाह का अधिकार एक–दूसरे के पूरक हैं।

(ii) **अन्तरराष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकारों की प्रसंविदा में विवाह के अधिकार का प्रतिबिम्ब:–** सामाजिक संरचना के लिए परिवार प्रथमतः मूलाधिकार रूपी इकाई होती है। सामाजिक नैतिकता पारिवारिक पद्धति को बल प्रदान करती है।[9] सिविल और राजनैतिक अधिकारों की अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा में परिवार को समाज की नैसर्गिक तथा मूल इकाई माना गया है तथा इस इकाई को समाज और राज्य से संरक्षा प्राप्त करने का अधिकार है।[10] विवाह के योग्य पुरुष तथा महिला को विवाह का अधिकार है और परिवार को सुस्थापित

करने की मान्यता विवाह करने वाले पुरुष तथा महिला को होगी।[11] कोई भी विवाह दम्पत्ति की स्वतंत्र और पूर्ण सहमति के बिना सम्पन्न नहीं होगा।[12] प्रसंविदा के राज्य पक्षकार विवाह के लिए, विवाह के समय और इसके विघटन में दम्पत्तियों के समता और उत्तरदायित्व के अधिकार को सुनिश्चित करने के लिए कारगर उपाय करेंगे, किसी भी बच्चे की आवश्यक संरक्षा का विधिक प्रावधान करेंगे।[13]

सिविल और राजनैतिक अधिकारों की अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा में उल्लिखित विवाह के अधिकार की तुलना मानव अधिकारों की सार्वभौम अधिकारों की घोषणा के साथ करने से विदित होता है कि मानव अधिकारों की सार्वभौम अधिकारों की घोषणा में उल्लेख किया गया है कि सम्पूर्ण आयु के पुरुष और महिला को जाति, राष्ट्रीयता या धर्म के भेदभाव के बिना विवाह का अधिकार है, लेकिन सिविल और राजनैतिक अधिकारों की प्रसंविदा में "जाति, राष्ट्रीयता या धर्म के भेदभाव के बिना" शब्दों का लोप है।[14] इसलिए यह कहना समीचीन होगा कि मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा में उल्लिखित विवाह का अधिकार, सिविल और राजनैतिक अधिकारों की अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा से व्यापक है। इसके विपरीत सिविल और राजनैतिक अधिकारों की अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा में "परिवार" को विधि द्वारा मान्यता देने के उपबंध की व्यवस्था की गई है जबकि मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा में ऐसा कोई उपबंध नहीं है।

विवाह के उपरान्त बच्चों के पैदा होने पर सिविल और राजनैतिक अधिकारों की अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा के अनुच्छेद 23 (4) के अतिरिक्त अनुच्छेद 24 में भी विशेष उपबंध किये गये हैं। इसमें कहा गया है कि प्रत्येक बच्चों को जाति, रंग, लिंग, भाषा, धर्म, राष्ट्रीय या सामाजिक या सामाजिक उद्‌भव, सम्पत्ति या जन्म के भेदभाव के बिना अल्पवयस्क प्रास्थिति के आधार पर परिवार, समाज और राज्य से उसको आवश्यक संरक्षण के मापदण्डों का अधिकार होगा।[15] प्रत्येक बच्चे के पैदा होने के पश्चात् पंजीकृत करवाने तथा नाम पाने का अधिकार होगा।[16] प्रत्येक बच्चों को राष्ट्रीयता प्राप्त करने का अधिकार होगा।[17]

सिविल और राजनैतिक अधिकारों की अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा में मानवीय मूल्यों को बनाये रखने तथा मानव के सामूहिक विकास के लिए परिवार के अधिकारों को मान्यता दी गयी है। परिवार का प्रारम्भ पुरुष तथा महिला में विवाह करने की संरक्षा से प्रारम्भ होकर बच्चों के वयस्क होने तक होता है। इसलिए बच्चों की संरक्षा का दायित्व परिवार के साथ ही समाज तथा राज्य को भी दिया गया है। यद्यपि परिवार की परिभाषा में वृद्ध माता–पिता को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए, लेकिन प्रसंविदा में ऐसी व्यवस्था नहीं की गई है। यह व्यवस्था प्रसंविदा की कमी को उजागर करती है। इसके अतिरिक्त इसमें मातृत्व के द्वारा की जाने वाली संरक्षा की भी कोई व्यवस्था का उपबंध नहीं है।

(iii) **विवाह का अधिकार तथा आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदाः–** अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रों के लिए मापदण्ड निर्धारित करने के लिए आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा को संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा ने अंगीकार किया है।[18] इस प्रसंविदा के अनुच्छेद 10 के अनुसार प्रसंविदा के राज्य पक्षकारों को परिवार को समाज की नैसर्गिक और मूलभूत इकाई के रूप में विस्तृत सम्भव संरक्षा और सहायता देनी चाहिए।[19] बच्चे के जन्म की युक्तियुक्त अवधि से पूर्व और बाद में माता को विशेष सुविधा दी जानी चाहिए। इस अवधि के दौरान कामकाजी महिलाओं को वेतन सहित अवकाश या पर्याप्त सामाजिक संरक्षा का लाभ मिलना चाहिए।[20] मातृत्व या अन्य शर्तों के भेदभाव के बिना सभी बच्चों या छोटे व्यक्तियों को विशेष संरक्षा और सहायता दी जानी चाहिए। बच्चे और छोटे व्यक्ति आर्थिक और सामाजिक शोषण से संरक्षित किये जाने चाहिए। उनकी नैतिकता या स्वास्थ्य या जीवन के लिए खतरनाक या उनके सामान्य विकास को अवरूद्ध करने वाले खतरनाक नियोजन को विधि द्वारा दण्डित किया जाना चाहिए। राज्य बाल श्रम नियोजन के लिए आयु निर्धारित करेगा, जिसमें विधि के अनुसार बालश्रम प्रतिबद्ध और दण्डनीय होना चाहिए।[21] विवाह का अधिकार, परिवार की स्थापना करने का अधिकार तथा बच्चों की संरक्षा का अधिकार के व्यापक स्वरूप का उल्लेख आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों की अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा में मिलता है। कमोवेश ये अधिकार अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा तथा मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा के समान ही है।[22]

(iv) **महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार के भेदभाव का समापन सम्बन्धी अभिसमय तथा विवाह का अधिकारः–** विवाह के अधिकार में समता की महत्ता को सर्वोच्च मानव अधिकार के रूप में स्वीकार किया जाता है। समता मूलक समाज में यह आवश्यक है कि महिला और पुरुष दोनों को विवाह करने, परिवार की स्थापना करने तथा पारिवारिक मामलों में स्वतंत्र निर्णय लेने का अधिकार है। इस मूलभूत धारणा को दृष्टिगत रखते हुए महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार के भेदभाव का समापन अभिसमय के अनुच्छेद 16 में स्पष्टतः कहा गया है कि अभिसमय में राज्य पक्षकार महिलाओं के विरूद्ध विवाह और परिवार से सम्बन्धित सभी मामलों में भेदभाव को समाप्त करने के लिए सभी समुचित उपाय करेंगे और पुरुषों तथा महिलाओं में इस उद्देश्य के लिए समता बनाये रखने का कार्य सुनिश्चित करेंगे।[23] महिला और पुरुष दोनों को विवाह का समरूप अधिकार है।[24] दम्पत्ति का चुनाव तथा अपनी स्वतंत्र और पूर्ण सहमति से विवाह करने का अधिकार है।[25] विवाह के दौरान अर्थात् दम्पत्ति की क्षमता में दोनों के समान अधिकार और दायित्व हैं तथा विवाह के विघटन पर भी दोनों के समान अधिकार और दायित्व हैं।[26] विवाह की प्रास्थिति में माता–पिता का बच्चों के

मामले के समान अधिकार और दायित्व हैं और सभी मामलों में बच्चों का हित सर्वोच्च होगा।[27] बच्चों की संख्या तथा अन्तर में दोनों के समान अधिकार और दायित्व है तथा बच्चों को सूचना देने, शिक्षा उपलब्ध कराने तथा संसाधन उपलब्ध कराने के भी समान अधिकार तथा दायित्व हैं।[28] बच्चों की संरक्षणता, अभिरक्षा, न्यासिता तथा दत्तकता में समान अधिकार तथा दायित्व हैं अथवा राष्ट्रीय विधि के प्रवर्तन में होने पर इस प्रकार की संस्थाओं में समान अधिकार तथा दायित्व हैं। सभी मामलों में बच्चों का हित सर्वोच्च होगा।[29] परिवार का नाम, व्यवसाय और जीविका के चयन में पति तथा पत्नी के समान वैयक्तिक अधिकार हैं।[30] दोनों दम्पत्तियों को सम्पत्ति में स्वामित्व अर्जन, प्रबन्धन, प्रशासन, उपभोग और व्ययन में समान अधिकार हैं।[31] बच्चों की सगाई और विवाह का कोई विधिक प्रभाव नहीं है और इसके लिए अनिवार्य कार्रवाई की जानी चाहिए, जिसमें विधि के सृजन द्वारा विवाह की न्यूनतम आयु और विवाह का कार्यालय पंजिका में अनिवार्य पंजीकरण भी सम्मलित होगा।[32]

(v) **विवाह के मापदण्ड के लिए अन्तरराष्ट्रीय अभिसमयः**— विवाह के लिए आयु का निर्धारण, स्वतंत्र सहमति की अनिवार्यता तथा विवाह के पंजीकरण के लिए अन्तरराष्ट्रीय अभिसमय 1957 का भी सृजन किया गया है। इसके अतिरिक्त महिला और पुरुष को विवाह के कारण समान अधिकारों को राष्ट्रीय अधिकार के लिए महिलाओं को राष्ट्रीयता अभिसमय का सृजन संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा 29 जनवरी 1957 को किया गया है। यह अभिसमय 11 अगस्त 1958 से प्रवर्तन में है। इस अभिसमय के राज्य पक्षकार विवाहित महिलाओं की राष्ट्रीयता के संबंध में पुरुषों के समान ही विधिक उपबंध का सृजन किये जाने के लिए बाध्य हैं। किसी भी महिला को पुरुष के समान ही विधिक उपबंधों के अन्तर्गत स्वेच्छा से राष्ट्रीयता को ग्रहण करने का अधिकार है। विवाह के आधार पर महिला का स्वतः राष्ट्रीयता का परिवर्तन नहीं होने का प्रावधान महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार का भेदभाव का समापन सम्बन्धी अभिसमय 1979 के अनुच्छेद 19 में किया गया है। इसमें कहा गया है कि अभिसमय के पक्षकार राज्य, महिलाओं को राष्ट्रीयता प्राप्त करने, परिवर्तित करने अथवा अपनी राष्ट्रीयता में बने रहने के लिए पुरुष के समान ही अधिकार प्रदत्त करेंगे। अभिसमय के पक्षकार यह आश्वासन देंगे कि विदेशी से विवाह करने तथा पति के राष्ट्रीयता के परिवर्तित होने पर पत्नी की राष्ट्रीयता परिवर्तित करने के लिए भी बाध्य नहीं किया जायेगा।[33] राज्य पक्षकार महिलाओं को बच्चों पर राष्ट्रीयता के सम्बन्ध में पुरुष के समान ही अधिकार देंगे[34] महिलाओं की राष्ट्रीयता का अभिसमय 1957 के अनुच्छेद 1, 2 और 3 में भी इसी प्रकार का उपबंध किया गया है।

भारत में विवाह के अधिकार का स्वरूपः— विवाह की स्वतंत्रता का अधिकार व्यक्ति की गरिमा को संरक्षित किये जाने का मूलभूत लक्ष्य का उल्लेख भारत के संविधान

के उद्देशिका में उल्लिखित है। इसमें कहा गया है भारत के समस्त नागरिकों में गरिमा बनाये रखने के लिए तथा सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त करने के लिए हम भारत के लोग संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मर्षित करते है। संविधान की उद्देशिका में उल्लिखित "गरिमा" शब्द से परिलक्षित होता है कि भारत में प्रत्येक नागरिक को प्रत्येक क्षेत्र में गरिमामय जीवन यापन करने का अधिकार है। गरिमामय जीवन के अन्तर्गत व्यक्ति को स्वतंत्र सहमति तथा जाति, राष्ट्रीयता और सामाजिक बंधनों से उन्मुक्त होकर पूर्ण अवस्था प्राप्त करने के पश्चात विवाह करने का अधिकार प्राप्त है। यह अधिकार मानव की दैहिक स्वतंत्रता के लिए आवश्यक है। संविधान में दैहिक स्वतंत्रता को मूल अधिकार के रूप में अनुच्छेद 21 में उल्लिखित किया गया है इसमें उपबंधित है कि "किसी व्यक्ति को, उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं"।

सांविधानिक सभा की बहस में संविधान सभा के सम्मानित सदस्य श्री काजी सैयद करिमुद्दीन, श्री महबूब अली बेग साहिब बहादुर, श्री चिमन लाल चक्कूभाई, श्री कृष्ण चन्द्र शर्मा, श्री एच वी पतासकर और श्री के. एम. मुंशी अनुच्छेद 21 में विधि की सम्यक प्रक्रिया शब्दों को समाहित करना चाहते थे।[35] यदि विधि की सम्यक प्रक्रिया शब्द को अनुच्छेद 21 में प्रतिस्थापित कर दिया गया होता तो, गरिमामय जीवन के लिए मूल अधिकार के रूप में "विवाह के अधिकार" अन्तरराष्ट्रीय उपबंधों में उल्लिखित प्रावधानों के समान ही अनुच्छेद 21 के भाग के रूप में प्रत्यक्षतः समाहित हो गया होता, लेकिन प्रत्यक्षतः यह सम्भव नहीं हो पाया, इसलिए संविधान संशोधन के लिए गठित संविधान पुनरावलोकन समिति ने सन् 2002 में रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए संस्तुति की थी कि संविधान के अनुच्छेद 21 'ख' को संविधान में प्रतिस्थापित किया जाये। अनुच्छेद 21 'ख' (1) को संविधान पुनरावलोकन समिति ने निम्न प्रकार उल्लिखित किया है– "प्रत्येक व्यक्ति को उसके निजी और पारिवारिक जीवन, घर और पत्राचार का सम्मान करने का अधिकार प्राप्त है।"[36] समिति ने अनुच्छेद 21 ख (1) उपबंध पर राज्य की सुरक्षा, लोक संरक्षा अथवा अव्यवथा को रोकने अथवा अपराध अथवा स्वास्थ्य की रक्षा अथवा नैतिकता अथवा दूसरों के अधिकारों और स्वतंत्रता की संरक्षा के लिए युक्तिमुक्त प्रतिबंध भी लगाने की भी अनुशंसा की है।[37]

संविधान पुनरावलोकन समिति की उपरोक्त अनुशंसा यदि संविधान के अनुच्छेद 21 ख (1) के रूप में प्रतिस्थापित कर दिया जाता है तो यह प्रावधान निजी, पारिवारिक जीवन, घर आदि शब्द व्यक्ति के विवाह के अधिकार को भी सम्मिलित कर लेंगे, क्योंकि इस प्रकार का प्रावधान मानव अधिकारों की अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा 1966 के अनुच्छेद 23, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा 1966 के अनुच्छेद 10 और महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार का भेद–भाव का समापन अभिसमय

1979 के अनुच्छेद 16 आदि में हैं और इनमें विस्तृत रूप से विवाह के अधिकार को भी सम्मलित किया गया है।

भारत में मानव अधिकारों की संरक्षा के लिए मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 का सृजन किया गया है। इस अधिनियम की धारा 2 (घ) में मानव अधिकार की परिभाषा दी गई है, इसमें कहा है मानव अधिकार का अर्थ संविधान द्वारा प्रत्याभूत अथवा अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा में सम्मिलित तथा भारत में न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय दैहिक स्वतंत्रता, समानता और व्यक्ति की गरिमा के अधिकार से है।

"मानव अधिकार" की उपरोक्त परिभाषा मानवों की दैहिक स्वतंत्रता, समता और व्यक्ति की गरिमा से सम्बन्धित है। विवाह का सम्बन्ध भी व्यक्ति की दैहिक स्वतंत्रता, समता और गरिमा से ही है, क्योंकि यदि व्यक्ति को स्वतंत्र सहमति से बिना भेदभाव और गरिमामय वातावरण में विवाह का अधिकार होगा तो उसके मानव अधिकार की संरक्षा का अनुपालन सम्भव हो पायेगा। मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 की धारा 2 (घ) की परिभाषा का तुलनात्मक अध्ययन विवाह के साथ करने से विदित होता है कि परिभाषा में प्रयुक्त शब्द दैहिक, स्वतंत्रता, समता और गरिमा के अनुरूप ही मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा 1948 के अनुच्छेद 12 तथा 16, सिविल और राजनैतिक अधिकारों की अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा 1966 के अनुच्छेद 10 में विवाह के मानव अधिकार के उद्देश्य से प्रयुक्त किया हुआ माना जा सकता है।

मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम की धारा 2 (घ) यह भी उल्लेख करती है कि अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदाओं में सम्मिलित अधिकार भी मानव अधिकार हैं, सिविल तथा राजनैतिक अधिकारों की प्रसंविदा के अनुच्छेद 23 तथा आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार की अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा के अनुच्छेद 10 में विवाह के अधिकार का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 की धारा 2 (घ) के उद्देश्य से विवाह के अधिकार का उल्लेख उपरोक्त प्रसंविदाओं में होने के कारण यह अधिकार मानव अधिकार है।

मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 की धारा 2 (घ) की अनिवार्यता यह भी है कि दैहिक स्वतंत्रता, समता और व्यक्ति की गरिमा को भारत में न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय बना दिया है इस प्रकार अब यह भी मानव अधिकार है। न्यायालय द्वारा विवाह के अधिकार को मानव अधिकार के रूप में लागू करने का अनुपम उदाहरण लता सिंह बनाम उ0 प्र0 राज्य और अन्य[38] है। सम्बन्धित वाद में न्यायालय ने मानव अधिकार के रूप में विवाह को स्वीकार करने का सर्वोत्तकृष्ट उदाहरण दिया है। इस वाद में न्यायमूर्ति मारकंडे काटजू ने न्यायमूर्ति अशोक मान तथा अपनी ओर से न्यायालय का विनिर्णय देते हुये कहा था कि "राष्ट्र हमारे इतिहास में जटिल परिवर्तनकारी अवधि से गुजर रहा है और बृहत लोक सम्बन्ध के मामलों में उच्चतम न्यायालय मौन नहीं

रह सकता है, जैसा कि सम्प्रति में हो रहा है। जाति प्रथा राष्ट्र पर अभिशाप है और जल्दी ही यह अच्छाइयों को समाप्त कर देगा। तथ्यतः यह ऐसे समय में राष्ट्र को विभाजित कर रही है, जब हमें राष्ट्र की चुनौतियों का मुकाबला करने के लिए एक होना है। इसलिए, अन्तरजातीय विवाह वास्तव में राष्ट्र के हित में है, इसके परिणाम से जाति प्रथा ध्वस्त हो जायेगी जबकि, देश के अनेक हिस्सों से क्षुब्ध करने वाले समाचार प्राप्त हो रहे हैं कि नवयुवक पुरुष और महिला जो अन्तरजातीय विवाह कर रहे है उन्हें हिंसात्मक धमकियां मिल रही हैं अथवा वास्तव में उनके साथ हिंसा की जा रही है। इस प्रकार की हिंसा अथवा धमकियां अथवा उत्पीड़न सम्पूर्णतः अविधिक हैं और जो ऐसा कर रहे है, उनको कठोरतम दण्ड दिया जाना चाहिए। यह स्वतंत्र और लोकतांत्रिक देश है और इस देश में जो व्यक्ति एक बार वयस्क हो जाता है, वह जिस किसी के साथ चाहे विवाह कर सकता है। यदि विवाह करने वाली लड़की अथवा लड़के के माता–पिता इस प्रकार के अन्तरजातीय और अन्तरधार्मिक विवाह का अनुमोदन नहीं करते हैं, तो ज्यादा से ज्यादा वे अपने पुत्र और पुत्री से सामाजिक सम्बन्ध विच्छेद कर सकते हैं, लेकिन वे अन्तरजातीय अथवा अन्तरधार्मिक विवाह करने वाले दम्पत्ति को धमकी अथवा हिंसा अथवा हिंसा की उत्प्रेरणा अथवा उनका उत्पीड़न नहीं कर सकते हैं। हमें कभी यह सुनाई पड़ता है कि जिन्होंने अन्तरजातीय अथवा अन्तरधार्मिक विवाह किया है, उन्हें "सम्मान" के लिए मार दिया गया है, इस प्रकार से वध करने में किसी प्रकार का सम्मान सम्मिलित नहीं है, और वास्तव में यह कुछ नही है, अपितु यह निर्दयी और सामन्तवादी मस्तिष्क के द्वारा कारित बर्बर और घृणित हत्या का कार्य है। ऐसे व्यक्ति कठोर दण्ड के भागीदार हैं। इसी तरह हम इस घृणित कार्य को रोक सकते हैं।"

न्यायालय ने यह भी कहा है कि प्रशासन/पुलिस प्राधिकारी सम्पूर्ण देश में यह देखे कि यदि कोई वयस्क लड़का अथवा लड़की किसी वयस्क लड़के अथवा लड़की से अन्तरजातीय और अन्तरधार्मिक विवाह करते हैं तो दम्पत्ति को किसी के द्वारा उत्पीड़ित नहीं किया जाना चाहिए अथवा न ही धमकी दी जानी चाहिए अथवा स्वयं अथवा किसी उत्प्रेरणा के फलस्वरूप उनके विरूद्ध किसी भी प्रकार की हिंसात्मक कार्रवाई नहीं की जानी चाहिए, इस प्रकार का कृत्य करने वाले व्यक्तियों के विरूद्ध पुलिस के द्वारा आपराधिक कार्रवाई संस्थित करनी चाहिए और ऐसे व्यक्तियों के विरूद्ध विधि द्वारा विहित सख्त कार्रवाई करनी चाहिए।[39]

उपरोक्त विनिश्चय में यद्यपि उच्चतम न्यायालय ने किसी राष्ट्रीय अधिनियमित विधि अथवा अन्तरराष्ट्रीय विधिक प्रावधानों का उल्लेख नहीं किया है तथापि न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 32 के अन्तर्गत परमादेश तथा उत्प्रेषण याचिका स्वीकार करते हुए याचिकाकर्ता की याचिका को अनुमत किया तथा याचिकाकर्ता को अनुतोश प्रदत्त किया। इस प्रकार न्यायालय ने परमादेश तथा उत्प्रेषण याचिका को स्वीकार करते हुये वयस्क दम्पत्तियों को स्वतंत्र सहमति से विवाह करने से रोकने को मूल–अधिकार का उल्लंघन माना है।[40] परिणाम स्वरूप न्यायालय ने मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम,

1993 की धारा 2 (घ) की अंतिम अनिवार्यता की प्रतिपूर्ति की है। इस प्रकार भारत में विवाह करने का अधिकार सम्पूर्णतः मानव अधिकार है।

उच्चतम न्यायालय ने विवाह के अधिकार के साक्ष्य को प्रबल स्वरूप प्रदत्त करते हुए सीमा बनाम अश्वनीकुमार[41] के मामले में कहा विवाह का पंजीकरण आवश्यक है। न्यायालय का विनिश्चय न्यायमूर्ति अजीत पसायत ने देते हुए अभिनिर्धारित किया कि विवाह के पंजीकरण की विषय वस्तु संविधान के समवर्ती सूची के सूची संख्या 30 के अन्तर्गत आती हैं इसके लिए महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, हिमाचल प्रदेश और आन्ध्र प्रदेश राज्यों में विधि अधिनियमित की गई है, इसके अतिरिक्त अन्य राज्यों में विवाह के पंजीकरण के लिए विधि का सृजन नहीं किया गया है। उच्चतम न्यायालय ने विवाह के पंजीकरण के लिए महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार के भेदभाव के समापन सम्बन्धी अभिसमय 1979 के अनुच्छेद 16 (2) का भी उल्लेख किया।[42] न्यायालय ने कहा संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने इस अभिसमय को 1979 में अंगीकार किया था और भारत सम्बन्धित अभिसमय में 30 जुलाई 1980 में पक्षकार बना तथा उसने इसको 9 जुलाई 1993 में समंजित किया। न्यायालय ने विवाह के पंजीकरण के लाभों का उल्लेख करते हुये कहा यदि विवाह का अभिलेख रखा जायेगा तो दो पक्षकारों के मध्य विवाह सम्पादित करने का विवाद समाप्त हो जायेगा। न्यायालय ने राष्ट्रीय आयोग को उद्धृत करते हुए कहा कि राष्ट्रीय आयोग ने ठीक ही कहा है कि अधिकतर मामलों में विवाह के पंजीकरण नहीं होने के कारण महिलाओं को कठिनाई आती है, यदि विवाह का पंजीकरण हो जायेगा तो इससे यह सिद्ध हो जायेगा कि विवाह हुआ था और विवाह सम्पन्न होने की उपधारणा मान ली जायेगी। यद्यपि विवाह का पंजीकरण ही अपने आप में वैध विवाह का प्रमाण नहीं है, और विवाह की वैधता का निश्चयात्मक तथ्य नहीं है, तथापि यह बच्चों की अभिरक्षा, पंजीकृत दम्पत्तियों से बच्चों को जन्म लेने का अधिकार और विवाह के पक्षकारों की उम्र का महानतम साक्ष्य है। यदि विवाह को अनिवार्य रूप से पंजीकृत कर दिया जाता है, तो यह समाज के हित में होगा। विवाह के पंजीकरण नहीं किये जाने का परिणाम यह है कि विवाहित व्यक्ति द्वारा विवाह से इन्कार कर दिया जाता है, यदि विवाह पंजीकृत होता है, तो उसका नैसर्गिक परिणाम यह होता है कि विवाह होने की उपधारणा मान ली जाती है। इसलिए भारत में विभिन्न धर्मों को मानने वाले नागरिकों के विवाह को अनिवार्य रूप से उनके राज्यों द्वारा जहां उनका विवाह सम्पन्न हुआ है, पंजीकृत कर दिया जाना चाहिए। न्यायालय ने कहा इस निर्णय अर्थात् 14 फरवरी 2006 से तीन महिने के अन्तर्गत विवाह के पंजीकरण की प्रक्रिया का विज्ञापन सम्बन्धित राज्यों द्वारा जारी कर देना चाहिए। न्यायालय ने यह भी कहा कि राज्य विवाह के पंजीकरण की कार्रवाई प्रभावी नियमों में संशोधन करके अथवा नवीन नियमों का सृजन करके कर सकता है। इसकी व्यापक लोक सूचना दी जायेगी तथा आपत्तियों के लिए खुले रूप से एक माह का समय दिया जायेगा। इस अवधि की समाप्ति के पश्चात् राज्य विवाह के पंजीकरण की कार्रवाई प्रारम्भ करेंगे। न्यायालय ने पंजीकरण

में उल्लिखित किये जाने वाली आवश्यकताओं की ओर निदेश देते हुए कहा–इसके लिए एक अधिकारी की नियुक्ति का प्रावधान संबंधित नियमों में किया जाना चाहिए और उसको विवाह के पंजीकरण के लिए समुचित रूप से प्राधिकृत किया जाना चाहिए। पंजीकरण में विवाह के पक्षकारों की आयु, वैवाहिक स्थिति (अविवाहित, तलाकशुदा) का स्पष्ट उल्लेख होगा। विवाह को पंजीकृत नहीं करना अथवा असत्य घोषणा करने के परिणामों का भी उल्लेख नियमों में किया जाना चाहिए। न्यायालय की स्पष्टतः यह अवधारणा थी कि इन परिस्थितयों में सम्बन्धित नियमों में दण्ड का प्रावधान होना चाहिए।[43]

निष्कर्ष और सुझावः– विवाह के अधिकार को विकसित सामाजिक विकास का सुस्थापित और अनिवार्य स्वरूप का मापदंड अन्तरराष्ट्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार कर लिया गया है। सम्प्रति के परिवर्तनशील समाज में नित–नवीन परिवर्तन हो रहे हैं, मानवों की मनोकांक्षा, धारणा, सामंजस्य तथा कार्य–कलापों में परिवर्तन हो रहा है। विवाह के पवित्र बंधन को आज संविदा के रूप में आकलित किया जाने लगा है। संरक्षक अथवा माता–पिता के द्वारा पाल्य अथवा पुत्र–पुत्री के हित में किये गये विवाहों में विच्छेदन की स्थिति उत्पन्न हो रही है। जाति, धर्म, क्षेत्र और भाषा में बन्धन के द्वारा मानव विभेद को प्रोत्साहन मिल रहा है, तथा सामाजिक सौहार्दता में विभाजन हो रहा है। ऐसी परिस्थितियों में राष्ट्रीय एकता और अखंडता को प्रबलता प्रदत्त करने की आवश्कयता का अनुभव किया जा रहा है। इस प्रकार के अनुभवता के पावन लक्ष्य की प्रतिपूर्ति के लिए नवीन प्रयास, खोज और साधनों की खोज की जा रही है। इस प्रकार की खोज के अनुक्रम में विवाह के अधिकार को सांविधानिक तथा सांविधिक प्रास्थिति दिया जाना सभ्य राष्ट्रों की पहचान तथा अनिवार्य आवश्यकता है। अतः विवाह के अधिकार की व्यावहारिक स्वरूप में सुदृढ़ता के लिए निम्नलिखित सुझाव कारगर अथवा सहायक रूप में विचारणीय हो सकते हैं–

1. विवाह के अधिकार को भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 'ख' में प्रतिस्थापित कर दिया जाना चाहिए, इस उद्देश्य के लिए संविधान पुनरीक्षित समिति की अनुशंसा सन् 2002 के अनुरूप संविधान संशोधन किया जाना चाहिए।

2. मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा 1948 के अनुच्छेद 16, सिविल और राजनैतिक अधिकारों की अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा 1966 अनुच्छेद 23, आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा 1966 के अनुच्छेद 10 तथा महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार के भेद–भाव का समापन अभिसमय 1979 के अनुच्छेद 16 के प्रावधानों के अनुरूप ही विवाह के अधिकार को सर्वव्यापी और शाश्वत मानव अधिकार के रूप में व्यापक रूप से अंगीकार किया जाना चाहिए।

3. विवाह के अधिकार के व्यावहारिक पक्ष को उजागर करने के लिए अन्तरजातीय तथा अन्तरधार्मिक विवाहों को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

4. अन्तरजातीय विवाह वयस्क पुरुष तथा महिला द्वारा स्वतंत्र सहमति से सम्पादित किया जाने पर सम्बन्धित दम्पत्ति को सामाजिक तथा विधिक संरक्षण दिया जाना चाहिए उनको असत्य आपराधिक मामलों में फंसाये जाने पर गैर सरकारी संस्थाओं तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा उनकी सहायता करनी चाहिए।

5. विवाह के अनिवार्य पंजीकरण के लिए राज्यों के द्वारा संविधान के अनुसूची के समवर्ती सूची में संख्या 30 में उल्लिखित विषय के अनुरूप विधि का सृजन किया जाना चाहिए। इस उद्देश्य के लिए भारत संघ को भी विधि को संहिताकृत स्वरूप में परिवर्तित करना चाहिए।

6. विवाह के पंजीकरण की सूचना में पक्षकारों द्वारा घोषित सूचना के असत्य होने अथवा छुपाये जाने और कपटपूर्ण सूचना देने पर विधिक रूप से दण्ड का प्रावधान होना चाहिए।

7. विवाह के पंजीकरण के लिए प्रत्येक ग्राम सभा, ब्लॉक और जिला स्तरों पर कार्यालयों की स्थापना की जानी चाहिए अथवा इस कार्य का दायित्व क्षेत्रीय पंचायत के पदाधिकारियों को दिया जाना चाहिए।

8. विवाह के पंजीकरण के लिए किसी भी प्रकार के शुल्क की व्यवस्था नहीं की जानी चाहिए। तलाक, न्यायिक पृथक्करण अथवा मृत्यु की अवस्था में भी विवाह पंजीकरण पंजिका में इनके विवरण को उल्लिखित किये जाने की व्यवस्था होनी चाहिए।

9. बाल विवाह प्रथा को समाप्त करने तथा दहेज प्रथा की कुरीति को दूर करने के लिए स्वैच्छिक स्वतंत्र सहमति से सामूहिक अवसर अथवा सार्वजनिक रूप से पति अथवा पत्नी के चयन की व्यवस्था को बल दिया जाना चाहिए तथा चयनित किये जाने के उपरान्त विशेष विवाह अधिनियम में संशोधित करके इस प्रकार के विवाह के लिए विधिक मान्यता का प्रावधान किया जाना चाहिए।

संदर्भः–

1. संयुक्त राष्ट्र संघ चार्टर की उद्देशिका का द्वितीय पैरा संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर अनुच्छेद 56 के उपबंध के अनुरूप सदस्य राष्ट्रों ने अलग–अलग और मिलकर चार्टर के लक्ष्य के प्राप्ति के लिए कार्य करने की शपथ ली।

2. विनोद कुमार मिश्र, विकलांगों के अधिकार 2006 पृष्ठ 14.

3. मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा 1948 की उद्देशिका का सारांश

4. मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा 1948, अनुच्छेद 12।

5. सिविल और राजनैतिक अधिकारों की अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा 1966 के अनुच्छेद

17 में भी उल्लेख किया गया है कि किसी भी व्यक्ति के एकान्तता, परिवार, घर अथवा पत्राचार में किसी भी प्रकार का अविधिक हस्तक्षेप न ही किया जायेगा, नहीं किसी के सम्मान तथा प्रतिष्ठा पर हमला किया जायेगा।

6. मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा 1948, अनुच्छेद 16 (1)

7. तत्रैव अनुच्छेद 16 (2)

8. तत्रैव अनुच्छेद 16 (3)

9. डॉ0 शिवदत्त शर्मा, मानव अधिकार 2006 अध्याय 3 का उपशीर्षक विवाह करने तथा परिवार रखने का अधिकार।

10. सिविल और राजनैतिक अधिकारों की अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा 1966ए अनुच्छेद 23 (1)

11. तत्रैव अनुच्छेद 23 (2)

12. तत्रैव अनुच्छेद 23 (3)

13. तत्रैव अनुच्छेद 23 (4)

14. सिविल और राजनैतिक अधिकारों की अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा का अनुच्छेद 23 (2) तथा मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा के अनुच्छेद 16 (1) का तुलनात्मक अध्ययन।

15. तत्रैव अनुच्छेद 24 (1), बच्चे की संरक्षा के लिए मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा के अनुच्छेद 25 (2) में आंशिक उपबंध की व्यवस्था है, लेकिन सिविल और राजनैतिक अधिकारों की सार्वभौम घोषणा के अनुच्छेद 25 (2) में अजन्मे बच्चे की संरक्षा का भी उपबंध है, जबकि अजन्मे बच्चे की संरक्षा की व्यवस्था प्रसंविदा में नहीं की गयी है।

16. सिविल और राजनैतिक अधिकारों की अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा अनुच्छेद 24 (2)

17. तत्रैव अनुच्छेद 24 (3)

18. संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने प्रस्ताव संख्या 2200 ए (इक्कीस) 16 दिसम्बर 1966 को आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की प्रसंविदा को अंगीकार किया यह प्रसंविदा 3 जनवरी 1976 से प्रवर्तन में आई है।

19. तत्रैव अनुच्छेद 10 (1)

20. तत्रैव अनुच्छेद 10 (2)

21. तत्रैव अनुच्छेद 10 (3)

22. मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा 1948 का अनुच्छेद 12, 16 सिविल और राजनैतिक अधिकारों की अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा 1966 का अनुच्छेद 23 तथा आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा 1966 का अनुच्छेद 10 का तुलनात्मक अध्ययन।

23. महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार का भेद–भाव का समापन सम्बन्धी अभिसमय 1979 अनुच्छेद 16 (1)

24. तत्रैव अनुच्छेद 16 (1) (क)

25. तत्रैव अनुच्छेद 16 (1) (ख)

26. तत्रैव अनुच्छेद 16 (1) (ग)

27. तत्रैव अनुच्छेद 16 (1) (घ)

28. तत्रैव अनुच्छेद 16 (1) (ङ)

29. तत्रैव अनुच्छेद 16 (1) (च)

30. तत्रैव अनुच्छेद 16 (1) (छ)

31. तत्रैव अनुच्छेद 16 (1) (ज)

32. तत्रैव अनुच्छेद 16 (2)

33. तत्रैव अनुच्छेद 9 (1)

34. तत्रैव अनुच्छेद 9 (2)

35. सी ए डी, खण्ड सप्तम पृष्ठ 846

36. ए. आई. आर. 2002 जर्नल 353

37. तत्रैव...............

38. (2006) 5 एस सी सी 475

39. तत्रैव सम्बन्धित मामले में याचिकाकर्ता महिला ने वयस्क आयु प्राप्त करने पर अपनी स्वतंत्र सहमति से वयस्क पुरुष से अन्तरजातीय विवाह कर लिया था और विवाह के पश्चात् याचिकाकर्ता के भाई ने याचिकाकर्ता के पति के रिश्तेदारों के विरूद्ध अपनी बहिन के खोने तथा सम्बन्धित व्यक्तियों के द्वारा गायब करने का आपराधिक मामला संस्थित किया, परिणाम स्वरूप याचिकाकर्ता के पति के रिश्तेदारों को बन्दी बना लिया गया तथा इसके अतिरिक्त याचिकाकर्ता के भाईयों ने याचिकाकर्ता के पति के माता–पिता को पीटा, उन्हें बन्द कमरे में तीन और चार दिन तक बिना भोजन तथा पानी के बन्द कर दिया तथा उनकी खेतों की

फसल नष्ट कर दी तथा उनका व्यवसाय समाप्त कर दिया और याचिकाकर्ता तथा उसके रिश्तेदारों के विरूद्ध अपनी बहिन के अपहरण की झूठी प्रथम इत्तला सूचना दायर कर दी। उच्चतम न्यायालय ने इस मामले में निर्णय देते हुए अभिनिर्धारित किया कि याचिकाकर्ता विवाह के समय वयस्क थी, इसलिए वह विवाह करने के लिए स्वतंत्र थी अथवा जिसके साथ चाहती रहने के लिए स्वतंत्र थी। न्यायालय ने यह भी कहा कि हिन्दू विवाह अधिनियम और अन्य विधि में अन्तरजातीय विवाह करने में कोई प्रतिबंध नहीं है, इसलिए हमें नहीं लगता कि याचिकाकर्ता, उसके पति और रिश्तेदारों ने कोई अपराध किया है। न्यायालय ने आगे कहा किसी ने भी कोई अपराध नहीं किया है। इसलिए याचिकाकर्ता के पति तथा रिश्तेदारों के विरूद्ध दायर आपराधिक मामले को निरस्त किया जाता है और याचिकाकर्ता के भाईयों तथा अन्य रिश्तेदारों के विरुद्ध विधि के अनुसार आपराधिक प्रक्रिया प्रारम्भ की जाए।

40. उत्प्रेषण याचिका क्षेत्राधिकार के बिना कार्य करने, अधिकारातीत कार्य करने, क्षेत्राधिकार का दुरूपयोग करने, नैसर्गिक न्याय का उल्लंघन होने, अभिलेख में स्पष्टतः प्रकट होने वाली गलती और छल के मामलों में जारी की जाती है। परमादेश याचिका लोक प्राधिकारी के विरूद्ध लोक कर्तव्य की पूर्ति किए जाने के लिए की जाती है, इसको जारी करने के आधार वही हैं, जो उत्प्रेषण तथा प्रतिषेध याचिका जारी करने के हैं।

41. (2006) 2 एस सी सी 578 उच्चतम न्यायालय का सम्बन्धित वाद न्यायमूर्ति अजीत पसायत तथा न्यायमूर्ति एस एस कपाड़िया ने विनिश्चित किया।

42. महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार के भेदभाव का समापन संबंधी अभिसमय 1979 के अनुच्छेद 16 (2) में उपबंध किया गया है कि बच्चे की सगाई तथा विवाह का कोई विधिक प्रभाव नहीं होगा और विधि में समस्त आवश्यक कार्यवाही, विवाह की न्यूनतम उम्र और विवाह का अनिवार्य पंजीकरण का उल्लेख होगा। भारत में विवाह के लिए लड़का तथा लड़की की उम्र के लिए शारदा अधिनियम बना हुआ है। सम्प्रति लड़के की विवाह की उम्र 21 वर्ष तथा लड़की की उम्र 18 वर्ष निर्धारित की गई है।

43. न्यायालय द्वारा सीमा बनाम अश्वनी कुमार (2006) 2 एस सी सी 578 के मामले को विनिश्चित किये हुए (अप्रैल 2007 सम्बन्धित शोध पत्र लिखे जाने की तिथि तक) लगभग 1 वर्ष 2 माह का समय व्यतीत हो चुका है। राज्य सरकारों ने इस विनिश्चय के अनुसार विवाह के पंजीकरण करवाये जाने के लिए कोई प्रक्रिया प्रारम्भ नहीं की है।

स्वतंत्रता, समता एवं मानवाधिकार

* के. एस. द्विवेदी

मानवाधिकारों की वर्तमान अवधारणा अंतरराष्ट्रीय विधि में उत्पन्न हुई और इसका उद्देश्य यह रहा कि जैसे अपने देश में नागरिक को कुछ अधिकार प्राप्त हैं वैसे ही कुछ मूलभूत अधिकार मात्र मानव जाति में जन्म लेने से प्रत्येक व्यक्ति को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी प्राप्त होने चाहिए। मनुष्य के अस्तित्व के साथ ही स्वतंत्रता की धारणा का जन्म होता है। स्वतंत्रता मानवाधिकार का अत्यंत महत्वूपर्ण पहलू है। इसके बिना मानव अधिकार ही नहीं बल्कि मनुष्य की भी कल्पना नहीं की जा सकती। सार्वभौम घोषणा एवं राष्ट्रीय संविधानों में स्वतंत्रता के अधिकार निहित हैं। स्वतंत्रता की रक्षा करना राज्य का उद्देश्य है। समता की भूमिका भी यही है कि वह न्याय का कार्यकारी सिद्धान्त बन जाए। अतः न्याय के सिद्धान्त के रूप में स्वतंत्रता एवं समता को राजनैतिक, सामाजिक, वैज्ञानिक तथा आर्थिक आदि सभी क्षेत्रों में स्थापित करने की आवश्यकता है। स्वतंत्रता तथा समता का आधार व्यक्ति का अपना व्यक्तिगत है। प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों के समान होने के कारण राज्य की व्यवस्था में समान स्थिति से युक्त है तथा कानूनी तौर पर भी समान है। समता महत्वपूर्ण है किंतु स्वतंत्रता से संयुक्त होने पर ही इसका प्रयोग क्रियाशील हो पाता है। अधिकारों के विषय निर्धारण करते समय स्वतंत्रता एवं समता एक ही स्तर पर आते हैं। ये इतने मौलिक हैं कि समाज में वर्ग–विभेद का कोई स्थान नहीं रह जाता। इनके आधार पर ही विश्व में मानवाधिकारों की मांग और स्थापना हुई है।

"मानवाधिकार" प्रत्यय की यह अन्तर्निहित धारणा है कि सम्पूर्ण मानव जाति एक परिवार है और मानव–परिवार राष्ट्र, राज्य, जाति, धर्म, रंग या ऐसे अन्य किसी भेद के कारण विभाजित नहीं हो सकता तथापि वर्तमान समय में मानवाधिकार एक ऐसी वस्तु बन गया है जिसकी समाज में सबसे अधिक कमी प्रतीत होती है। मानवाधिकार जो केवल इसलिए प्रदत्त होने चाहिएं कि मनुष्य "मनुष्य" है, के लिए आंदोलन चलाने

* भारतीय पुलिस सेवा के वरिष्ठ अधिकारी, संप्रति, महानिरीक्षक, केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल, दिल्ली

और संस्थाएं बनाने की आवश्यकता आ पड़ी है। मानवाधिकारों की वर्तमान अवधारणा अन्तरराष्ट्रीय विधि में उत्पन्न हुई और इसका यह लक्ष्य रहा कि जैसे अपने देश या राष्ट्र में प्रत्येक नागरिक को कुछ अधिकार प्राप्त हैं वैसे ही कुछ मूलभूत अधिकार मात्र मानव जाति में जन्म लेने के कारण प्रत्येक व्यक्ति को भी प्राप्त होने चाहिएं। नागरिक को उसके देश में या राष्ट्र में मौलिक और अपृथक्करणीय अधिकारों की बात बहुत पुरानी है, जिसे हम नैसर्गिक विधि और नैसर्गिक अधिकारों के रूप में जानते हैं। यहां ध्यान देने की बात है कि नागरिक अधिकारों और मानवाधिकारों में समानता हो सकती है किन्तु दोनों का दार्शनिक आधार बिल्कुल भिन्न है। नागरिक अधिकार किसी राष्ट्र या राज्य में उसके नागरिक को तत्वतः इस कारण कि वे नागरिक हैं, प्रदत्त हों, हैं; किन्तु मानवाधिकार का तात्विक कारण किसी देश या राष्ट्र का नागरिक होना नहीं, बल्कि मानवजाति में जन्म लेना है। मानव पूर्ववर्ती है राज्य या राष्ट्र परवर्ती। तब भी यह विरोधाभास है कि मानव को मानवाधिकारों की अपेक्षा राष्ट्र या राज्य से करनी पड़ रही है।

मानवाधिकार कौन सा अधिकार है, इस प्रश्न का उत्तर मानव के स्वरूप, स्वभाव एवं भवितव्यता में निहित है। अधिकार एक मूल्यवान नैतिक प्रत्यय है। अधिकार की विषयवस्तु कोई महत्वपूर्ण मूल्य या वस्तु होती है। मानवाधिकार की अपेक्षा समान रूप से सब के लिए है, अतः मानवाधिकार की विषयवस्तु ऐसे मूल्य का बोधक है जिसका आंतरिक मूल्य (INTRINSIC VALUE) सबके लिए समान हो। मानवाधिकार की विषयवस्तु निर्मित करने वाले ऐसे मूल्य मनुष्य के व्यक्तित्व में विद्यमान हैं। मनुष्य का मनुष्यत्व उसकी रचनात्मकता एवं सृजनशीलता में निहित है। रचनात्मकता के अभाव में मनुष्य का मौलिक स्वरूप विकृत हो जाता है। वास्तवकिता तो यह है कि रचनात्मकता ही मनुष्य की विशिष्टता या मनुष्यत्व का निर्माण करती है। सृजनशीलता के विकास एवं पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए स्वतंत्रता, समानता और गौरव की रक्षा के लिए शोषण से मुक्ति एवं धर्मनिरपेक्षता अनिवार्य तत्व हैं। ये मानव व्यक्तित्व के विविध आयाम हैं तथा इसके उन्नयन में ही समस्त मानवाधिकार अस्तित्ववान होते हैं। इस प्रकार मानवाधिकार व्यक्तित्व के दार्शनिक विमर्श पर आधारित होते हैं तथा इनका लक्ष्य व्यक्तित्व की सुरक्षा एवं व्यक्ति में निहित क्षमताओं का पूर्ण विकास निश्चित होता है।

मनुष्य के अस्तित्व के साथ ही स्वतंत्रता की धारणा बनती है तथा स्वतंत्रता के विचार के साथ ही मानव अस्त्वित्व मुखर हो पाता है। इसी अर्थ में सार्त्र ने कहा भी है कि मनुष्य स्वतंत्र है तथा स्वतंत्रता ही मानव अस्तित्व का प्राथमिक पक्ष है। स्वतंत्रता के बिना मनुष्य के वास्तविक स्वरूप को नहीं समझा जा सकता है। ऐसी स्थिति में मानवाधिकार को समझने की अनिवार्यता है।

स्वतंत्रता मानवाधिकार का इतना महत्वपूर्ण पहलू है कि इसके बिना मानव अधिकार तो दूर रहा मनुष्य की ही कल्पना नहीं की जा सकती। मानवता का समस्त

इतिहास मानों इस एक शब्द में समाया हुआ है। मानव जाति के उज्जवल भविष्य का अभिव्यंजक यह शब्द है। किस प्रकार के कार्य–कलापों से कार्य–कारण भाव के नियम के अनुसार तथा साध्य साधन के तत्व का अवलम्बन कर जगत की वस्तुओं का मानव कल्याण के निमित्त उपयोग कर, जनता को सम्पूर्ण स्वतंत्रता का मार्ग बताया जा सकता है, इस प्रश्न की मीमांसा ही अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र तथा समाजशास्त्र का मूल उद्‍देश्य है। स्वतंत्रता का सम्बन्ध मानव स्वभाव से है। मध्यकालीन सभ्यता से लेकर आजतक समाज, राज्य तथा धार्मिक संस्थाओं के विरोध में मानव, स्वतंत्रता के लिए संग्राम कर रहा है और सत्तावाद तथा संप्रभुतावाद के बदले अधिकारवाद और स्वातंत्र्य को स्थापित करने का प्रयास अनवरत रूप से विद्यमान है। मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा एवं राष्ट्रीय संविधानों में स्वतंत्रता के अधिकार निहित हैं। वे स्वतंत्रता के कानूनी पक्ष का निर्माण करते हैं। इन अभिलेखों में प्रतिभूत स्वतंत्रता के मार्ग में व्यवधान अथवा स्वतंत्रता के अभाव का निषेध मात्र है। स्वतंत्रता के विधिक अधिकार का केवल यह तात्पर्य है कि व्यक्ति की स्वतंत्रता में व्यवधान उपस्थित नहीं किया जाये, विशेष रूप से राज्य द्वारा। इससे यह भी आभास मिलता है कि व्यक्ति को किसी संविधान या कानून द्वारा स्वतंत्रता दी नहीं जाती है, बल्कि स्वतंत्रता के मार्ग में व्यवधान का निषेध मात्र किया जाता है। स्वतंत्रता तो व्यक्ति का स्वाभाविक लक्षण है। मानव व्यक्तित्व का यह अभिन्न अंग है। संविधान एवं कानूनी संलेखों में प्रतिभूत स्वतंत्रता के तार्किक विश्लेषण से जो तथ्य स्पष्ट होते हैं, उन्हें निम्नांकित बिंदुओं में अभिव्यक्त किया जा सकता है:–

1. स्वतंत्रता मनुष्य का स्वाभाविक लक्षण है। यही स्वतंत्रता का सकारात्मक पक्ष है।

2. स्वतंत्रता का कानूनी अधिकार स्वतंत्रता के मार्ग में व्यवधान का निषेध मात्र है। अतः यह स्वतंत्रता का निषेधात्मक पहलू है।

3. राष्ट्रीय संविधानों में प्रदत्त स्वतंत्रता का अधिकार विशेष रूप से राज्य द्वारा व्यक्ति की स्वतंत्रता के निषेध का निषेध है, अर्थात् यह व्यक्ति एवं राज्य के संबंधों को रेखांकित करता है।

प्रश्न यह उठता है कि मनुष्य के लिए स्वतंत्रता को इतना अधिक महत्व क्यों दिया गया है? दूसरे प्राणियों के लिए वैसी स्वतंत्रता की अवधारणा क्यों नहीं की गयी है जैसी कि मनुष्य के लिए की जाती है? इन प्रश्नों के उत्तर के लिए हमें पुनः मानव के व्यक्तित्व के मूलभूत तत्वों का अनुशीलन एवं स्वतंत्रता के वास्तविक स्वरूप का विश्लेषण करना होगा।

टैगोर के अनुसार मनुष्य की श्रेष्ठता उसकी शक्ति या बुद्‍धि में नहीं अपितु स्वतंत्रता का उपभोग करने में निहित है। स्वतंत्रता के इस लक्षण के आधार पर मनुष्य

रचनात्मकता प्राप्त करता है और प्रगति के लिए नित्य नयी कामना उसके अन्दर बनी रहती है। टैगोर स्वतंत्रता और संयम को एक–दूसरे का पूरक मानते हैं। टैगोर के अनुसार स्वतंत्रता का अर्थ नैतिक नियमों का निषेध नहीं है। वे नैतिक नियमों का उद्देश्य आत्मनियंत्रण का विकास मानते है। टैगोर अनिवार्यता स्वीकार करते हैं, किन्तु उनकी अनिवार्यता आत्मप्रदत्त अनिवार्यता है। स्वतंत्रता की अवधारणा को टैगोर ने निम्नांकित शब्दों में व्यक्त किया है:–

'सत्य के एक ओर स्वतंत्रता है, दूसरी ओर संयम।' उसका एक पक्ष कहता है, 'उसके भय से अग्नि जलती है' तो दूसरा पक्ष कहता है, 'आनन्द से ही सब वस्तुएं उत्पन्न होती है।' नियम को अस्वीकार करना दूसरी ओर स्वतंत्रता के उपभोग की संभावना को निरस्त करना है। स्वयं चरम सत्ता भी स्वतंत्र एवं अस्वतंत्र दोनों है। ब्रह्म अपने सत्य से बद्ध एवं अपने आनन्द से मुक्त है। हम भी स्वतंत्रता का उपभोग तभी कर सकते हैं जब हम सत्य के बन्धनों को स्वीकार करें।'

अतः टैगोर के मत में स्वतंत्रता में आत्मनियंत्रण तो सन्निहित है, किन्तु अराजकता के लिए कोई स्थान नहीं है। नैतिक प्राणी के रूप में मनुष्य की स्वतंत्रता में उसके आनन्दपूर्वक समर्पण की क्षमता भी निहित है।

प्रो. के. सी. भट्टाचार्या स्वतंत्रता को मनुष्य के अनिवार्य अवयव के रूप में मानने वालों में टैगोर से भी आगे हैं। प्रो. भट्टाचार्या का पूरा दर्शन ही स्वतंत्रता के महत्व और स्वतंत्रता के स्तर के सिद्धान्त पर अवलंबित है। उन्होंने सीमित इच्छा की स्वतंत्रता और असीमित स्वतंत्रता का उल्लेख करते हुए मानव का वास्तविक स्वरूप दूसरे प्रकार की स्वतंत्रता में निहित होने का उल्लेख किया है। स्वतंत्रता में उनका इतना गहरा विश्वास है कि उन्होंने मनुष्य का वास्तविक लक्षण स्वतंत्र आत्मा (सब्जेक्ट बीइंग फ्री) न मानकर स्वतंत्रता के रूप में आत्मा (सब्जेक्ट ऐज फ्रीडम) माना है। वे स्वतंत्रता से मानव के संबंध मात्र से संतुष्ट नहीं हैं, बल्कि आत्मा के स्वातंत्र्य में परिवर्तित हो जाने को आदर्श अवस्था मानते हैं। मनुष्य के विशुद्ध आत्मीय स्वरूप और सामान्य स्वरूप में वे केवल स्वतंत्रता के परिमाण का भेद मानते है। मनुष्य के विशुद्ध स्वरूप को ही वे स्वातंत्र्य कहते है। इस प्रकार प्रो. के. सी. भट्टाचार्या के अनुसार स्वतंत्रता मानव के व्यक्तित्व का आवश्यक अवयव ही नहीं बल्कि उसका वास्तविक स्वरूप है। स्वतंत्रता के बिना मनुष्य की कल्पना ही नहीं की जा सकती है और स्वतंत्रता के बिना मानव का विकास भी संभव नहीं हो सकता है। इसे हम दूसरे शब्दों में इस प्रकार कह सकते है कि प्रो. भट्टाचार्या के अनुसार मनुष्य के सभी प्रयास किसी वस्तु के लिए नहीं बल्कि स्वयं स्वतंत्रता के लिए होते हैं।

डॉ0 राधाकृष्णन ने अपने मनुष्य की अवधारणा में स्वतंत्रता के अवयव पर गहरा प्रकाश डाला है। मनुष्य का सीमित से निकलकर अतिव्याप्त चेतना से तादात्म्य स्थापित

करने की क्षमता को वे स्वतंत्रता कहते हैं स्वतंत्रता के आधार पर ईश्वर, ब्रह्म और मनुष्य को विश्वव्यापी आत्मा के विभिन्न पक्षों के रूप में उसे जीवात्मा कहा जाता है। जगत में अभिव्यक्त होने पर इसे ईश्वर कहते हैं और अपने असीम स्वरूप में यह ब्रह्म हो जाती है। इस प्रकार सीमित अर्थात शरीर, मन बुद्धि में रहने के बावजूद मनुष्य का एक असीमित पक्ष भी है। डॉ0 राधाकृष्णन के अनुसार असीमित पक्ष ही मनुष्य का मौलिक स्वरूप है। मानव सीमित के माध्यम से इच्छा की स्वतंत्रता के आधार पर अपने असीमित स्वरूप की प्राप्ति का प्रयास करता है। इस प्रकार स्वतंत्रता मनुष्य का सबसे महत्वपूर्ण लक्षण है और वह कई रूपों में अभिव्यक्त होती है। इसी आधार पर मनुष्य आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आदि कई प्रकार की स्वतंत्रताओं की मांग करता है। डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार इन स्वतंत्रताओं में आत्मीय स्वतंत्रता सर्वोच्च स्थान रखती है।'

कार्ल यास्पर्स की मान्यता है कि अस्तित्व ही स्वतंत्र है। स्वतंत्रता के आधार पर कार्ल यास्पर्स ने मनुष्य का अन्य वस्तुओं और दूसरे प्राणियों से विभेद किया है। मनुष्य की स्वतंत्रता के आधार पर वे अस्तित्व की अनंत सम्भावनाओं का साक्षात्कार करने की बात कहते हैं। उनका तात्पर्य है कि मनुष्य में अनंत सम्भावनायें निहित रहती है और स्वतंत्रता के आधार पर मानव उनकी अभिव्यक्ति करता है। स्वतंत्रता मनुष्य के अस्तित्व का सार है। बिना स्वतंत्रता के उसका अस्तित्व ही नहीं रहता है।

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि मनुष्य का मौलिक स्वरूप स्वतंत्रता युक्त है। चूंकि मनुष्य को सृष्टि का केन्द्र बिन्दु माना जाता है और सारे ज्ञान–विज्ञान उसके कल्याणार्थक समझे जाते हैं इसलिए स्वतंत्रता को उसका अनिवार्य लक्षण मानना होगा। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि इस स्थिति में मनुष्य को परम स्वतंत्र स्थिति प्रदान करना अनिवार्य होगा।

उपर्युक्त दार्शनिक विचारधाराओं में व्यक्त की गयी स्वतंत्रता की अवधारणा के तुलनात्मक अध्ययन से उसका स्वरूप भिन्न–भिन्न परिलक्षित होता है, किन्तु सभी विचारधाराओं में मनुष्य के संकल्प या इच्छा की स्वतंत्रता की अनिवार्यता की समानता है।

किसी विधि या संविधान से मनुष्य को स्वतंत्रता दी नहीं जाती है, बल्कि वह मनुष्य मात्र में स्वभावतः अन्तर्निहित रहती है। विधियों और संविधानों में उल्लिखित स्वतंत्रता के अधिकार का अर्थ केवल यह होता है कि मनुष्य का उसकी स्वभावगत स्वतंत्रता के उपभोग में कोई व्यवधान नहीं हो। अतः मनुष्य की स्वाभाविक एवं स्वरूपगत स्वतंत्रता को अप्रभावित एवं अबाधित रखना ही विभिन्न विधियों तथा संवैधानिक प्रावधानों का उद्देश्य है। मूलतः मनुष्य की स्वतंत्रता की गति स्वाभाविक और स्वजनित है।

मानवाधिकार के रूप में स्वतंत्रता नैतिक मूल्य है जिसे नैतिक व्यवस्था के अधीन

राज्य के कानून के माध्यम से अपनी पूर्णता में प्राप्त नहीं किया जा सकता किन्तु मनुष्य के नैतिक विकास के लिए आवश्यक न्यूनतम स्वतंत्रता को अनिवार्य कर पूर्ण स्वतंत्रता के विकास का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है। इस प्रकार अधिकार के रूप में स्वतंत्रता नैतिक स्वतंत्रता की अनिवार्य परिस्थिति है।

स्वतंत्रता की रक्षा करना ही राज्य का उद्देश्य है। अतः राजनैतिक अधिकारों का वितरण भी स्वतंत्रता के रक्षार्थ होना चाहिए। यह तभी संभव है जब अधिकारों के वितरण में व्यक्तिगत या वर्गस्वार्थ की प्रवृत्ति न हो। यही समानता की भूमिका है तथा समानता न्याय का कार्यकारी सिद्धान्त बन जाती है। न्याय यद्यपि नैतिक बल है जो मानव की अंतरात्मा से निस्सृत होता है किन्तु आधुनिक समाज का यह सबसे महत्वपूर्ण कार्यकारी नियम है। अतः न्याय के सिद्धान्त के रूप में स्वतंत्रता एवं समानता को राजनैतिक, सामाजिक, वैज्ञानिक, शैक्षिक तथा आर्थिक आदि सभी क्षेत्रों में स्थापित करने की आवश्यकता है।

न्याय के सिद्धांत से यह स्थापित है कि उसका उद्देश्य समाज के सारे सदस्यों के व्यक्तित्व की सारी क्षमताओं के अधिकतम सम्भव विकास को प्रोत्साहित एवं उन्नत करना है। इस उद्देश्य से कानून अपने सदस्यों को अधिकार आबंटित करता है। इन अधिकारों के वितरण का एक क्रम है जिसमें सर्वप्रथम न्याय का स्थान है, जिसके संबंध व्यक्तित्व के परम नैतिक मूल्य तथा क्षमता से है, किन्तु सामाजिक एवं राजनैतिक क्षेत्र में यह एक नियामक मूल्य बन जाता है। न्याय से क्रमशः स्वतंत्रता, समानता तथा बंधुत्व के सिद्धान्त निगमित होते हैं। 'न्याय' एक मूल्य भी है और नियम भी। स्वतंत्रता के सिद्धान्त के अनुसार राज्य प्रत्येक नैतिक व्यक्ति को एक स्वतंत्र अभिकर्ता के रूप में अपनी क्षमताओं को अपनी इच्छा के अनुसार विकसित करने के लिए आवश्यक परिस्थितियों का स्वतंत्रतापूर्वक उपयोग का अधिकार प्रदान कराता है। इस दृष्टिकोण से कानून की दृष्टि में सभी व्यक्ति समान होते हैं। कानून इनको उच्चतर एवं निम्नतर में वर्गीकृत नहीं करता है। प्रत्येक व्यक्ति का नैतिक मूल्य समान है। यही समानता के सिद्धान्त का आधार है।

स्वतंत्रता के आधार की तरह समानता का आधार भी प्रत्येक व्यक्ति का अपना व्यक्तिगत है। प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्तित्व के समान होने के कारण राज्य की व्यवस्था के अधीन समान स्थिति से युक्त है तथा कानूनीकरण के रूप में समान मूल्यवान है इसका तात्पर्य यह नहीं है कि प्रत्येक नैतिक व्यक्तित्व की पूर्ण क्षमता तथा उस क्षमता को विकसित करने की योग्यता सबमें समान है। क्षमताएं निश्चित रूप से भिन्न हो सकती हैं परन्तु राज्य कानूनी तौर पर समान व्यक्तित्व प्रदान करता है या स्वीकार करता है। इसका एक कारण यह है कि राज्य चाहकर भी व्यक्तिगत क्षमताओं एवं योग्यताओं का पता नहीं लगा सकता। किन्तु, दूसरा कारण एवं गहन कारण यह है कि सभी मनुष्य समानरूपा हैं, और सबकी भविष्य की संभावनाएं समान हैं, अतः राज्य कानून की दृष्टि

से सबका मूल्य समान रखता है। विकास की यात्रा के प्रारंभ में राज्य सबके लिए समान परिस्थितियाँ अर्थात् अधिकार सुनिश्चित करता है। यह अलग बात है कि प्रयास के अंत में परिणाम अलग–अलग हों। फलस्वरूप समानता के सिद्धांत का आशय यह है कि अधिकारों के रूप में जो परिस्थितियाँ मेरे लिए प्रत्याभूत की गयी हैं, वहीं, उसी मात्रा में दूसरों के लिए प्रत्याभूत की जायें तथा जो दूसरों को प्रत्याभूत हैं वे मुझे भी उतनी ही प्रत्याभूत हों। उदाहरण के लिए, सम्पति का अधिकार लीजिए। राज्य सम्पति के स्वामित्व का समान अधिकार प्रदान करता है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि कानून समान राशि के समान स्वामित्व का अधिकार प्रदान करें। इसका अभिप्राय केवल यह है कि कानून स्वामित्व के समान सामर्थ्य को मान्यता देता है। कानून केवल कानूनी सामर्थ्य प्रदान करता है, और ऐसा करने में वह निष्पक्षता बरतता है तो पूर्णतः समानता के सिद्धांत का पालन करता है। स्वामित्व की समानता का मतलब पदार्थ या राशि की समानता नहीं, वरन सामर्थ्य की समानता है।

समानता का सिद्धांत व्यक्तित्व के विकास के समान अवसर या अधिकार की संकल्पना से उदभूत है, अतः व्यक्तित्व की क्षमताओं का विकास परम मूल्य है। इस परम मूल्य के सापेक्ष यदि हम आर्थिक समानता के सिद्धांत का विश्लेषण करते हैं तो पाते है कि आर्थिक समानता एक सीमा तक ही इस परम मूल्य के लिए आवश्यक है। समानता के वे ही सिद्धांत या प्रकार उचित माने जा सकते हैं जो व्यक्तित्व की क्षमताओं के विकास में सहायक हों। क्षमता का अबाध विकास एकरूपता में संभव नहीं है। अतः अधिक आर्थिक समानता या सीमित आर्थिक समानता तो उचित हो सकती है, किंतु आत्यंतिक आर्थिक समानता को उचित नहीं ठहराया जा सकता, क्योंकि वह मौलिक व्यक्तित्व विकास के सिद्धांत के विपरीत है और विकास में बाधक भी।

समानता बहुत महत्वपूर्ण है, किंतु यह अकेले क्रियाशील नहीं हो सकती है। इसका स्वतंत्रता से संयुक्त होना इसके प्रयोग के लिए अनिवार्य है। वस्तुतः, यह स्वतंत्रता की अनुगामिनी है। स्वतंत्रता का व्यक्त्त्वि के परम मूल्य तथा उसकी क्षमताओं के विकास के साथ अत्यंत घनिष्ठ संबंध है। स्वतंत्रता के आधार पर ही मानवी समानता का प्रतिपादन किया जाता है। स्वतंत्रता का उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति को उसके व्यक्तित्व की क्षमताओं के विकास का अवसर प्रदान करना है। दूसरी ओर समानता का उद्देश्य विकास तो है किंतु यह अवसर तक ही सीमित हो जाता है अन्यथा यह स्वतंत्रता का व्याघाती हो जाता है। अनिवार्य समानता जैसा कि हमने आर्थिक समानता के मामले में देखा स्वतंत्रता तथा व्यक्तिगत विकास के प्रयासों के विपरीत परिणामकारी होती है।

समानता मानवाधिकार का एक आयाम ही नहीं बल्कि मूल है जिससे मानवाधिकार निष्क्रमित होते हैं, क्योंकि समानता का तात्पर्य है निरपेक्ष समानता जिसमें वंश, धर्म, जाति, रंग एवं लिंग आदि के विभेद का कोई स्थान नहीं है। समानता की पूर्व धारणा है मानव मात्र का समान अधिकार। इस अर्थ में समानता 'निषेध' या प्रतिबंध का विरोधी

प्रत्यय है, तथा यह ऐसे सभी विषयों पर लागू होता है जहां किसी प्रतिबंध की व्यवस्था है। निरपेक्ष होने से समानता विशिष्ट की विरोधी है। अतः यह विशेषाधिकार की भी विरोधी है। समान में वर्ग व्यवस्था है, प्रतिबंध और विशेषाधिकार है, अतएव जब समानता का प्रयोग समाज में होता है तो एक द्वन्द्वात्मक स्थिति उत्पन्न होती है। जिनके विशेषाधिकार या विशिष्ट स्थिति प्रभावित होती है वे इसका विरोध करते हैं। दूसरी ओर सामाजिक समानता का सिद्धान्त व्यक्तित्व विकास के मूल्य पर अवलंबित है जिसमें मनुष्य होने के कारण मानव मात्र को अपने ढंग से व्यक्तित्व विकास के लिये स्वतंत्रता अर्थात् समान अवसर प्राप्त होना चाहिए। मनुष्य–मनुष्य के बीच बल तथा बुद्धि का प्राकृतिक अंतर है तथापि चूंकि वे 'सब मुनष्य है यह उनके बीच समानता का सबसे बडा आधार है। इसी आधार पर मानव मात्र के बीच अधिकार एवं मर्यादा की समानता की परिकल्पना की गयी है। सभी मनुष्यों की स्वतंत्रता में भी समानता है। यह समानता प्राकृतिक है, क्योंकि सभी जन्म से स्वतंत्र हैं।

इस विवेचन से निष्कर्ष निकलता है कि समानता स्वतंत्रता की सहगामी तथा निरपेक्ष है। स्वतंत्रता का क्षेत्र व्यक्ति, समुदाय, राज्य या संविधान द्वारा निश्चित किया जा सकता है, किंतु इसके निर्धारित हो जाने पर सबको उसका समान अधिकार स्वतः प्राप्त हो जाता है। समानता इतनी मौलिक एवं अहम है कि समाज में वर्ग–विभेद का कोई स्थान नहीं रह जाता। यहां तक कि शासित और शासक जो अधिकार एवं स्वतंत्रता के विषय निर्धारित करते हैं, दोनों एक ही स्तर पर आ जाते हैं। उनकी परिस्थिति में कोई अंतर नहीं रह जाता। समानता का सार मानव व्यक्तित्व में अन्तर्वलित, अंतर्निहित, उससे अपृथक्करणीय और जन्मजात है। मानव मात्र की विशिष्टिता या मानव व्यक्तित्व की अद्वितीय प्रकृति से समानता अवतरित होती है। इसी आधार पर सम्पूर्ण विश्व में मानवाधिकारों की मांग और स्थापना हुई है।

मानव अधिकार संकल्पना, उद्भव, विकास और प्रसार

* विजय नारायण मणि त्रिपाठी

मानव अधिकार विश्व भर में मान्य व्यक्तियों के वे अधिकार हैं जो उनके पूर्ण शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास के लिए अत्यावश्यक हैं इन अधिकारों का उद्भव मानव की अन्तर्निहित गरिमा से हुआ है। विश्व निकाय ने 1948 में मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा **(Universal Declaration of Human Rights)** को अंगीकार और उद्घोषित किया। इस उद्घोषणा के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति और समाज का प्रत्येक अंग इन अधिकारों और स्वतंत्रताओं के प्रति सम्मान जागृत करेगा और अधिकारों की विश्वव्यापी एवं प्रभावी मान्यता और उनके पालन को सुनिश्चित करने का प्रयास करेगा।

मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा के पश्चात् मानव अधिकारों की अभिवृद्धि और पालन के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ ने अंतरराष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक प्रसंविदा, अंतरराष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार प्रसंविदा 1966 और अंतरराष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकार पर प्रसंविदा के वैकल्पिक प्रोटोकॉल को अंगीकार किया।

मानव अधिकारों के अतिक्रमण के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उपचारों के भी प्रावधान हैं। मानव अधिकार आयोग, मानव अधिकारों के मानकों को लागू करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है। अतः शांति बनाए रखने, अंतरराष्ट्रीय स्थिरता को बढ़ाने, आर्थिक व सामाजिक विकास में सहायता करने के लिए इन अधिकारों को महत्वपूर्ण बनाने पर दृढ़तापूर्वक कार्य करना आवश्यक है।

मानव अधिकारों का शब्दकोशीय अर्थ है' ''दृढ़तापूर्वक रखे गए दावे, अथवा वे

* बी–181, सूर्यनगर गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश) दूरभाष : 95120–2624042

जो होने चाहिए, अथवा कभी–कभी उनको भी कहा जाता है जिनकी विधिक रूप से मान्यता है और उन्हें संरक्षित किया गया है जिनका प्रयोजन प्रत्येक व्यक्ति के लिए व्यक्तित्व, आध्यात्मिक, नैतिक और अन्य स्वतंत्रता का अधिक से अधिक पूर्ण और स्वतंत्र विकास सुनिश्चित करने को है"।[1] मानव अधिकार का संरक्षण अधिनियम, 1993 मानव अधिकार को निम्न प्रकार से परिभाषित करता है–

"मानव अधिकार से प्राण, स्वतंत्रता, समानता और व्यक्ति की गरिमा से संबंधित ऐसे अधिकार अभिप्रेत हैं जो संविधान द्वारा प्रत्याभूत किए गए हों या अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदाओं में सन्निविष्ट और भारत में न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय हैं"।[2]

संक्षेप में, "मानव अधिकार विश्व भर में मान्य व्यक्तियों के वे अधिकार हैं जो उनके पूर्ण शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास के लिए बहुत बुनियादी माने गए हैं। ये अधिकार मानव शरीर में अन्तर्निहित गरिमा और महत्व से निकाले गए हैं।[3]

इन अधिकारों की मान्यता मानव मूल्यों को चरितार्थ करने के लिए मनुष्य के लंबे संघर्ष के बाद हुई है। मानव अधिकार का विचार अनेक विधिक प्रणालियों में पाया जा सकता है। प्राचीन भारतीय विधिक प्रणाली, जो विश्व की सबसे प्राचीन विधिक प्रणाली है, में अधिकारों की संकल्पना नहीं थी, केवल कर्तव्यों को ही अधिकथित किया गया था। यहां के विधिशास्त्रियों की मान्यता थी कि यदि सभी व्यक्ति अपने कर्तव्यों का पालन करें तो सभी के अधिकार संरक्षित रहेंगे। प्राचीन भारत के धर्मसूत्रों एवं धर्मशास्त्रों की विशाल संख्या में लोगों के कर्तव्यों का ही उल्लेख है। 'धर्म' एक ऐसा शब्द है जिसका अर्थ बहुत विस्तृत है किन्तु उसका एक अर्थ कर्तव्य भी है। इस प्रकार सारे धर्मशास्त्र धर्मसंहिताएं हैं, अर्थात् कर्तव्य संहिताएं हैं। इसीलिए मनुस्मृति को मनु की संहिता भी कहा गया है। मनुस्मृति के अध्यायों के शीर्षकों को देखने से ही ज्ञात हो जाएगा कि वे राजा को सम्मिलित करते हुए समाज के विभिन्न वर्गों एवं व्यक्तियों के कर्त्तव्यों का उल्लेख करते हैं।

इस प्रकार प्राचीन भारतीय विधिनिर्माताओं ने केवल कर्तव्यों की ही बात सोची और अधिकार के बारे में उन्होंने कदाचित ही कुछ कहा। उनहोंने 'कर्तव्य पालन' को स्वयं के विकास के लिए अनिवार्य बना कर, कर्तव्य की कठोरता को समाप्त कर दिया।

अधिकार के दावे का, अंतिम विश्लेषण में यह अर्थ होगा कि ऐसा कार्य जो किसी अन्य के हित के अनुरूप न होगा।

इस बात पर प्राचीन भारतीय विधिशास्त्रियों और कतिपय आधुनिक विधिशास्त्रियों

---

1. डेविड एम. बाकर, दि आक्सफोर्ड कम्पेनियन टू ला (1980)
2. मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 धारा 2 (घ)
3. वलसम्मा पाल ब. कोचीन यूनिवर्सिटी, ए. आई.आर. 1996 एस.सी. 1011

के विचारों में बड़ी समानता पायी जाती है। विधि की समाजशास्त्रीय विचारधारा के एक बड़े पाश्चात्य चिंतक ड्यूगिट महोदय प्राइवेट अधिकारों के अस्तित्व को अस्वीकार करते हैं। कॉमटे की तरह उनका भी यह कथन है–

"एकमात्र अधिकार जो किसी मनुष्य का हो सकता है, वह सदैव अपना कर्तव्य करने का अधिकार है। किसी भी हैसियत में कार्य करने वाले व्यक्ति एक ही सामाजिक संगठन के भाग हैं और प्रत्येक को उसी लक्ष्य अर्थात् सामाजिक समेकता की पूर्ति के लिए अपनी भूमिका निभानी होती है।"

उसी प्रकार विधि के विशुद्ध सिद्धांत के प्रवर्तक एक महान विधिशास्त्री केल्सन ने भी यही मत व्यक्त किया है, यद्यपि वे एक भिन्न आधार–भूमि से इस निष्कर्ष पर पहुंचते है। केल्स के अनुसार भी विधि में व्यक्तिगत अधिकार जैसी कोई वस्तु नहीं है। विधिक कर्तव्य ही "विधि का सार" है। "विधि सर्वदा" होना चाहिए की एक प्रणाली है। अधिकार की संकल्पना किसी विधिक प्रणाली के लिए मूलतः अनिवार्य नहीं है।" विधिक अधिकार उसकी पूर्ति की अपेक्षा करने के हकदार व्यक्ति की दृष्टि में केवल कर्तव्य के रूप में है।"

पश्चिम में मनुष्यों के अधिकार का विचार प्राकृतिक विधि की संकल्पना से उद्भूत हुआ। यूनान के लघु नगर राज्यों में राजनीतिक संस्थाओं की अस्थिरता और सरकारों का जल्दी–जल्दी परिवर्तन और विधि में मनमानापन तथा निरंकुशता से दार्शनिकों को कुछ अपरिवर्तनीय और सार्वदेशिक सिद्धांतों के बारे में सोचने और उसकी बात कहने को प्रेरित किया। उन्होंने "सामाजिक यथास्थिति को व्यवस्थित रूप से चलाने और सामाजिक संस्थाओं की सुरक्षा की आवश्यकता की बात कही और राजनीतिक रूप से संगठित एक आदर्श समाज में किसी प्रामाणिक सिद्धांत को निकालने का प्रयत्न किया। उन्होंने एक आदर्श प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जो संबंधों के तालमेल का और नियमों एवं सिद्धांतों द्वारा आचरण को व्यवस्थित करने का प्रयोजन पूरा करने और उनके ऊपर जो नियमों को लागू करेंगे और उनके ऊपर जो उनके अधीन थे, युक्ति का एक बंधन लगाए।"[4] उनके द्वारा कल्पित अपरिवर्तनीय और सार्वदेशिक सिद्धांत जिसे उन्होंने राज्य की विधि से ऊपर माना 'प्राकृतिक विधि' कहलाए। बाद में रोम के और अन्यत्र दार्शनिकों ने प्राकृतिक विधि का भिन्न प्रकार से अर्थ निकाला। तथापि, राज्य की विधि के ऊपर एक विधि मान्य की गई। परवर्ती काल के राजनीतिक दार्शनिकों के हाथों में प्राकृतिक विधि मनुष्यों के अधिकारों का मुख्य आधार बनी। धर्म ने भी मनुष्यों के अधिकारों के विकास में योगदान किया। यहूदी दर्शन ने व्यक्ति के महत्व के विचार को विकसित किया। इसने मनुष्य को एक ऐसे व्यक्ति के रूप में माना जिसे पूरा करने के लिए जीवन में उसका अपना एक लक्ष्य है। धर्म ग्रंथों ने एक नैतिक संहिता निर्धारित की।[5] इसने

4. रास्को पाउण्ड, डि डेवलपमेंट ऑफ कान्स्टिटयूशनल गारंटी आफ लिवर्टी (1956) पृ0 5–6
5. एक्सोडस 20–23

मनुष्यों के भ्रातृत्व के सिद्धांत को रखा और इसमें व्यक्तिगत संस्थाओं के प्रति निर्देश हैं। ईसाई धर्म ने इस दर्शन को और आगे बढ़ाया। इसने यह सीख दी कि सभी मनुष्य बराबर हैं और प्रत्येक व्यक्ति महत्वपूर्ण हैं। प्रत्येक मनुष्य का एक अनन्त भविष्य है और उसके लिए असीमित उपलब्धियां हैं। ईश्वर ने प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रता का एक बड़ा उपहार दिया है और उसकी पूर्ण उन्नति और विकास की उसकी इच्छा है। ये सिद्धांत दस समादेशों (Ten Commandments) एवं अन्य धर्मग्रंथों में अंतर्विष्ट हैं। कुछ सिद्धांत जो मानव प्राणियों की एकता की सीख देते हैं इस प्रकार हैं–"तुम अपने पड़ोसी को वैसा ही प्यार करोगे जैसा अपने को करते हो।"[6] "वह अजनबी जो तुम्हारे साथ रहता है वह तुम्हारे बीच उत्पन्न हुआ कोई एक हो सकता है और तुम उसे वैसा प्यार करोगे जैसा अपने से करते हो।"[7]

ईसाई धर्म के प्रसार के साथ मनुष्यों की समता और व्यक्ति के महत्व के विचार का बोध सारे यूरोप में हुआ। यहूदी–ईसाई धर्म के धर्म ग्रंथों के नए विचारों से रोमन साम्राज्य का पतन हुआ। मध्यकाल के कैथोलिक दार्शनिकों और धर्माचार्यों ने प्राकृतिक विधि के अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। थॉमस एक्विनस ने, जिनके विचारों को प्रतिनिधि रूप में माना जा सकता है, कहा कि राज्य की केवल सीमित शक्तियां होती हैं। मानव विधि अथवा मनुष्य द्वारा बनायी गयी विधि केवल वहां तक विधिमान्य है जहां तक एक 'प्राकृतिक विधि' या 'शाश्वत विधि' की अनुरूपता में है। तथापि, उसने कहा कि इसके अनुचित होने पर भी मनुष्य को इसका पालन करना चाहिए। इस प्रकार मध्य काल में शासक की शक्ति पर सीमाओं की जोरदार हिमायत की गयी। एक ओर इस विचार की बढ़ती हुई लोकप्रियता और दूसरी ओर मध्य काल में राष्ट्र राज्यों का अभ्युदय और तानाशाही शासनों की स्थापना से राष्ट्र की सीमाओं के भीतर यूरोप में मनुष्यों के अधिकार के लिए संघर्ष प्रारंभ हुआ और आगे चलकर मनुष्य के कतिपय अधिकारों को मान्यता मिली।

मैग्ना कार्टा (1215) वह पहला दस्तावेज है जो व्यक्तियों को कतिपय बुनियादी स्वतंत्रताएं और संरक्षाएं प्रदान करता है। यद्यपि वह बैरनों के दबाव के कारण प्रदान किया गया था किन्तु समाज के सारे वर्गों के लोग इसके पीछे थे। यद्यपि इसमें प्रधान रूप से बैरनों के लिए अधिकारों की घोषणा की गयी थी जो अनेक तरह के लोगों के अधिकारों के अल्पीकरण के रूप में था किन्तु समाज के सभी वर्गों की शिकायतों को दूर करने का प्रयत्न किया गया था। यह अपराध और अपराधी के अनुपात में युक्तियुक्त जुर्माने के लिए कहता है। यह न्याय के अधिकार के रूप में होने, इसके बेचे न जाने, इसके स्वच्छ साफ–सुथरे होने और विलम्ब न किए जाने की घोषणा करता है। यह सम्पत्ति की सुरक्षा, इसके राजा के प्रयोजनों के लिए प्राचीन रूढ़िगत अदायगी के बिना

6. लेविटिकस 19:18
7. लेविटिकस 19:34

न लिए जाने की घोषणा करता है और यह शरीर की संरक्षा की घोषणा करता है। किसी स्वतंत्र व्यक्ति को कारावास, निर्वासन, गैर कानूनी करार देना (outlaw) या दंडित नहीं किया जा सकता या उसके स्थापित विशेषाधिकारों से बिना एक विधिपूर्ण निर्णय या विधि के अनुसार कार्रवाई के अलावा उसे वंचित नहीं किया जा सकता है। पश्चिम में मैग्‌ना कार्टा ने पहली बार राजा की शक्तियों को सीमित किया एवं एक संवैधानिक सरकार स्थापित करने का प्रयत्न किया।

मैग्‌ना कार्टा द्वारा प्रदान किए गए अधिकार और अधिक अधिकारों का दावा करने के आधार बने। बाद के शासन कालों में लोगों ने अपना संघर्ष जारी रखा और कालक्रम से राजा की शक्ति पर और सीमाएं लगायी गयीं। मैग्‌ना कार्टा द्वारा गारंटीकृत अधिकारों का अतिक्रमण और व्यक्तियों के अधिकारों के बारे में लोगों में सामान्य जागृति और उनके द्वारा उन पर दृढ़ता से अड़ने के कारण 1688 में गौरवशाली क्रांति हुई। नए राजा को उसके द्वारा बिल ऑफ राइट्स पर हस्ताक्षर करने के पश्चात् ही गद्दी पर बैठाया गया। बिल ऑफ राइट्स में मैग्‌ना कार्टा के गारंटीकृत अधिकारों को पुनर्कथित किया गया और राजा द्वारा मैग्‌ना कार्टा के पूर्व के किए गए अनेक अतिक्रमणों को उल्लिखित किया गया।

जब ब्रिटिश उपनिवेशी (colonist) अमेरिका में बसने के लिए गए तो ऊपर कथित अधिकार उनके साथ वहां गए। उनके चार्टरों में यह अधिकार घनिष्ठता से जुड़े थे। बहुत से राज्य जो अमेरिका के स्वतंत्रता के युद्ध के पूर्व अस्तित्व में आ गए थे उन्होंने मनुष्यों के अधिकारों की गारंटी को अंगीकार किया। वर्जीनिया ने सबसे पहले इन अधिकारों को अंगीकार किया जिसका अन्य अनेक राज्यों द्वारा अनुसरण किया गया। वर्जीनिया द्वारा अंगीकार किए गए मनुष्यों के अधिकारों की कुछ विशेष बातें थीं। ऐसी एक विशेष बात यह थी कि इन अधिकारों से संबंधित प्रावधानों को 'अधिकारों की घोषणा' का नाम देकर पृथक रखा गया। इनका अन्य महत्वपूर्ण वैशिष्ट्य यह था कि वे विधानमंडल पर भी आबद्धकर थे।

मध्य काल में राष्ट्र राज्यों के उद्भव और तानाशाही शासनों की स्थापना के साथ यूरोप में स्वतंत्रता के लिए संघर्ष राष्ट्रीय सीमाओं के भीतर प्रारंभ हुआ।

रिफार्मेशियो और रेनेसा ने व्यक्ति के अधिकारों की मांग, उसके आधार और सरकार की शक्तियों को सीमित करने में नए आयामों को जोड़ा। ज्ञान की नयी शाखाओं और विज्ञान की खोजों ने स्थापित मूल्यों के आधार को ध्वस्त कर दिया। तर्कनावाद (rationalism) नए युग का एक पंथ बन गया।

'सामाजिक संविदा सिद्धांत' जिसका बहुत पहले प्रतिपादन हुआ था, इसे नया तत्व और अर्थ दिया गया। लाक और रूसो ने इस सिद्धांत को व्यक्ति की स्वतंत्रता और सीमित सरकार का अर्थ देने वाला कहा। लाक ने सिविल गवर्नमेंट पर दो कृतियां

रची जिनका ध्येय 1988 की गौरवशाली क्रांति को उचित ठहराना था और अधिकारों की घोषणा और बिल ऑफ राइट्स के भाव को स्पष्ट करना था। रूसो ने अपने 'प्राकृतिक विधि' और 'सामाजिक संविदा' सिद्धांतों के अर्थान्वयन में लोगों की सम्प्रभुता पर जोर दिया। इसका अर्थ मनुष्यों की स्वतंत्रता और समता है। लाक और रूसो ने समकालीन चिंतन पर भारी प्रभाव डाला और फ्रांसीसी और अमरीकी राज्य क्रांतियों को प्रेरित किया।

अमरीकी स्वतंत्रता की घोषणा स्वतंत्रता के अधिकार की दृढ़ोक्ति थी। फ्रांस की मनुष्य और नागरिक के अधिकारों की घोषणा ने मनुष्यों के प्राकृतिक और अहरणीय (inalienable) अधिकारों की घोषणा की। राज्यों द्वारा अमेरिका के संविधान के अनुसमर्थन (ratification) के पूर्व मनुष्यों के अधिकार को दस संशोधनों के रूप में संविधान में सम्मिलित किया गया था जिन्हें बिल ऑफ राइट्स कहा जाता है। बाद में बुनियादी स्वतंत्रताओं से संबंधित और अधिक संशोधन अंगीकार किए गए। अब उनकी संख्या उन्नीस है।

यह उल्लेखनीय है कि अमरीकी बिल ऑफ राइट्स फ्रांसीसी संविधान में यथा सम्मिलित की गयी सिविल स्वतंत्रताओं से महत्वपूर्ण रूप से भिन्न है। कुछ उल्लेखनीय अंतर हैं: फ्रांसीसी घोषणा सरकार के बारे में एक कृति (treatise) है। यह बताता है कि ये अधिकार क्यों रखे गए हैं।

अमरीकी संविधान विनिर्दिष्ट अधिकारों को उल्लिखित करता है। फ्रांसीसी घोषणा पत्र में अधिकारों को लागू करने के लिए किसी तंत्र का प्रावधान नहीं किया गया है। अमरीकी बिल ऑफ राइट्स न्यायालयों द्वारा लागू किए जाने योग्य हैं।

मनुष्यों की स्वतंत्रताएं बाद के अनेक संविधाओं में अपनाई गयी विशेष रूप से लातीनी अमरीकी देशों में यद्यपि वहां वे उतनी प्रभावी नहीं हैं न ही उस रूप में संरक्षित हैं जैसा अमरीकी संविधान में।

संयुक्त राष्ट्र और मानव अधिकार

अपने वर्तमान रूप में मानव अधिकार की संकल्पना गत शताब्दी में विकसित हुई है और अब समकालीन अंतरराष्ट्रीय संबंधों का एक बहुत महत्वपूर्ण पहलू बन गयी है। सम्प्रति मानव अधिकार भारी अंतरराष्ट्रीय दिलचस्पी के विषय हो गए हैं। मानव अधिकारों के निरूपण और संरक्षण की वर्तमान चिंता दो विश्व युद्धों में उनके घोर अतिक्रमण का परिणाम है। विश्व समुदाय द्वारा यह अनुभव किया गया कि मात्र राष्ट्रीय सरकारों से मानव अधिकारों के संरक्षण की आशा करना अयथार्थ है। यह अनुभव किया गया कि मानव अधिकारों के प्रभावी संरक्षण के लिए अंतरराष्ट्रीय समुदाय को भी कदम

उठाना चाहिए। अंतरराष्ट्रीय शांति के लिए इसे एक आवश्यक शर्त माना गया।

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात बनाया गया, संयुक्त राष्ट्र प्राथमिक रूप से अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को कायम रखने के लिए एक तंत्र कल्पित किया गया था। यह बुनियादी मानव अधिकारों की सुरक्षा पर बहुत जोर देता है क्योंकि यह महसूस किया गया कि मानव अधिकारों का संरक्षण अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा से घनिष्ठ रूप से संबंधित है। संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के 'प्रयोजन और सिद्धांत' के पैरा 3 में कहा गया है–

"आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक या मानव कल्याण संबंधी अंतरराष्ट्रीय समस्याओं को हल करने के लिए और मूल, वंश, लिंग, भाषा या धर्म के आधार पर विभेद किए बिना सभी के लिए मानव अधिकारों और मूल स्वतंत्रताओं के प्रति सम्मान की अभिवृद्धि करने और उसे प्रोत्साहित करने के लिए अंतरराष्ट्रीय सहयोग उत्पन्न करना है।"

इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में मूल मानव अधिकारों और मानव की गरिमा और महत्व की पुष्टि की गयी और मानव अधिकारों एवं मूल स्वतंत्रताओं का उन्नयन करना या उनके प्रति सम्मान को प्रोत्साहित करने को विश्व निकाय का उत्तरदायित्व बनाया गया। चार्टर मानव अधिकारों के पालन किए जाने के बारे में सदस्य राज्यों पर एक बाध्यता डालता है। इस प्रकार यह मानव अधिकारों एवं मूल स्वतंत्रताओं को अंतरराष्ट्रीय विधि का एक महत्वपूर्ण मानक (norm) बनाता है। चार्टर के प्रभावी होने के पश्चात विश्व निकाय का एक पहला काम मानव अधिकारों के बारे में अपनी प्रतिबद्धता को पूरा करना था। अन्ततः विश्व निकाय ने 1948 में मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा (Universal Declaration of Human Rights) को अंगीकार किया और उद्घोषित किया।

मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा

मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा की उद्देशिका में कहा गया है–

मानव परिवार के सभी सदस्यों की अंतर्निहित गरिमा और समान तथा अभेद्य अधिकार विश्व में स्वतंत्रता, न्याय और शांति के आधार हैं,

मानव अधिकारों की अपेक्षा और अवमान के परिणामस्वरूप ऐसे बर्बर कार्य हुए हैं जिन्होंने मानव की अंतरात्मा पर आघात किया है, और ऐसे विश्व के निर्माण को, जिसमें सभी मानव वाक्–स्वातंत्र्य और विश्वास की स्वतंत्रता का तथा भय और अभाव से मुक्ति का उपभोग करेंगे जनसामान्य की उच्चतम आकांक्षा घोषित किया गया है।

यदि मनुष्य को अत्याचार और उत्पीड़न के विरुद्ध अंतिम अस्त्र के रूप में विद्रोह का अवलंब लेने के लिए विवश नहीं किया जाना है तो यह आवश्यक है कि मानव अधिकारों का संरक्षण विधिसम्मत शासन द्वारा किया जाना चाहिए।

यह कि राष्ट्रों के बीच मैत्रीपूर्ण संबंधों के विकास की वृद्धि करना आवश्यक है,

संयुक्त राष्ट्र ने लोगों के चार्टर में मूल मानव अधिकारों में मानवदेह की गरिमा और महत्व तथा पुरुषों और स्त्रियों के समान अधिकारों में अपने विश्वास की पुनः पुष्टि की है और सामाजिक प्रगति करने तथा अधिकाधिक स्वतंत्रता के साथ उत्कृष्ट जीवन स्तर की प्राप्ति कराने का निर्णय किया है,

सदस्य राज्यों ने यह प्रतिज्ञा की है कि वे संयुक्त राष्ट्र के सहयोग से मानव अधिकारों और मूल स्वतंत्रताओं के प्रति सार्वभौम सम्मान जागृत करेंगे और उनका पालन कराएंगे,

इन अधिकारों और स्वतंत्रताओं के प्रति एक ही दृष्टि इस प्रतिज्ञा को पूरी तरह सफल बनाने के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है, इसलिए,

महासभा मानव अधिकारों की इस सार्वभौम घोषणा को सभी लोगों और सभी राष्ट्रों के लिए इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एक सामान्य मानक के रूप में उद्घोषित करती है कि प्रत्येक व्यक्ति और समाज का प्रत्येक अंग, इस घोषणा को निरंतर ध्यान में रखते हुए, शिक्षा और संस्कार द्वारा इन अधिकारों और स्वतंत्रताओं के प्रति सम्मान जागृत करेगा और राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय प्रगामी उपायों के द्वारा, सदस्य राज्यों के लोगों के बीच और उनकी अधिकारिता के अधीन राज्य क्षेत्रों के लोगों के बीच इन अधिकारों की विश्वव्यापी और प्रभावी मान्यता और उनके पालन को सुनिश्चित करने के लिए प्रयास करेगा।

सभी मनुष्य जन्म से ही गरिमा और अधिकारों की दृष्टि से स्वतंत्र और समान हैं उन्हें बुद्धि और अंतश्चतेना प्रदान की गयी है। उन्हें परस्पर भ्रातृत्व की भावना से कार्य करना चाहिए।

प्रत्येक व्यक्ति इस घोषणा में उपवर्णित सभी अधिकारों और स्वतंत्रताओं का हकदार है, इसमें मूल, वंश, वर्ण, लिंग, भाषा, धर्म, राजनीतिक या अन्य विचार, राष्ट्रीय या सामाजिक मूल सम्पत्ति, जन्म या अन्य प्रास्थिति के आधार पर कोई विभेद नहीं किया जाएगा।

इसके अतिरिक्त, किसी देश या राज्यक्षेत्र की चाहे वह स्वाधीन हो, न्यास के अधीन हो, अस्वशासी हो या सम्प्रभुता पर किसी सीमा के अधीन हो राजनीतिक, अधिकारिता–विषयक या अंतरराष्ट्रीय प्रास्थिति के आधार पर उस देश या राज्यक्षेत्र के किसी व्यक्ति से कोई विभेद नहीं किया जाएगा।

घोषणा में उल्लिखित मानव अधिकार संक्षेप में निम्नलिखित हैं–

दासता या गुलामी में न रखे जाने का अधिकार

यंत्रणा, क्रूरता, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार या ऐसे दंड के विरुद्ध अधिकार।

सर्वत्र विधि के समक्ष व्यक्ति के रूप में मान्यता का अधिकार।

विधि के समक्ष समानता और किसी विभेद के बिना विधि के समान संरक्षण का अधिकार।

संविधान या विधि द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों का अतिक्रमण करने वाले कार्यों के विरुद्ध सक्षम राष्ट्रीय अधिकरणों द्वारा प्रभावी उपचार का अधिकार।

मनमाने ढंग से गिरफ्तार, निरुद्ध या निर्वासन के विरुद्ध अधिकार।

आपराधिक आरोप की अवधारणा में पूर्णतया समान रूप से स्वतंत्र और निष्पक्ष अधिकरण द्वारा ऋजु और सार्वजनिक सुनवाई का अधिकार।

दांडिक अपराध का आरोप होने पर तब तक निरपराध माने जाने का अधिकार जब तक कि उसे लोक विचारण, जिसमें उसे अपने प्रतिरक्षा के लिए आवश्यक सभी गारंटियां प्राप्त हों, विधि के अनुसार दोषी साबित नहीं कर दिया जाता।

किसी ऐसे कार्य या लोप के कारण, जो किए जाने के समय राष्ट्रीय या अंतरराष्ट्रीय विधि के अधीन दांडिक अपराध नहीं था, किसी दांडिक अपराध का दोषी अभिनिर्धारित नहीं किए जाने का अधिकार तथा उस शास्ति से अधिक शास्ति अधिरोपित नहीं किए जाने का अधिकार जो उस समय लागू थी जब अपराध किया गया था।

एकांतता, कुटुम्ब घर या पत्र–व्यवहार में मनमाना हस्तक्षेप के विरुद्ध अधिकार।

राज्य की सीमाओं के भीतर संचरण और निवास की स्वतंत्रता का अधिकार, और अपने देश को या किसी भी देश को छोड़ने और अपने देश में वापस आने का अधिकार।

उत्पीड़न के कारण अन्य देशों में शरण मांगने और लेने का अधिकार।

राष्ट्रिकता का अधिकार

वयस्क पुरुषों और स्त्रियों को मूल, वंश, राष्ट्रीयता या धर्म के कारण किसी भी सीमा के बिना,विवाह करने और कुटुम्ब स्थापित करने का अधिकार और विवाह के विषय में, विवाहित जीवन काल में और उसके विघटन पर समान अधिकार।

अकेले या अन्य व्यक्तियों के साथ मिलकर सम्पत्ति का स्वामी बनने का अधिकार और सम्पत्ति से मनमाने ढंग से वंचित न किए जाने का अधिकार।

विचार, अंतःकरण और धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार। इस अधिकार के अंतर्गत अपने धर्म या विश्वास को परिवर्तित करने की स्वतंत्रता और अकेले या अन्य व्यक्तियों के साथ मिलकर तथा सार्वजनिक रूप से या अकेले शिक्षा, व्यवहार, पूजा और पालन में अपने धर्म या विश्वास को प्रकट करने की स्वतंत्रता।

अभिमत और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता। इस अधिकार के अंतर्गत हस्तक्षेप के बिना अभिमत रखने और किसी भी संचार माध्यम से और सीमाओं का विचार किए बिना जानकारी मांगने, प्राप्त करने और देने की स्वतंत्रता।

शांतिपूर्वक सम्मेलन और संगम की स्वतंत्रता का अधिकार।

अपने देश की सरकार में, सीधे या स्वतंत्रतापूर्वक चुने गए प्रतिनिधियों के माध्यम से, भाग लेने का अधिकार।

अपने देश की लोक सेवा में समान पहुंच का अधिकार।

समाज के सदस्य के रूप में सामाजिक सुरक्षा का अधिकार।

कार्य करने का, नियोजन के स्वंतत्र चयन का, कार्य की न्यायोचित और अनुकूल दशाओं का और बेरोजगारी के विरुद्ध संरक्षण का अधिकार।

किसी विभेद के बिना, समान कार्य के लिए समान वेतन का अधिकार,

अपने हितों के संरक्षण के लिए व्यवसाय संघ बनाने और उनमें सम्मिलित होने का अधिकार।

विश्राम और अवकाश का अधिकार जिसके अंतर्गत कार्य के घंटों की युक्तियुक्त सीमा और वेतन सहित आवधिक छुट्टियों का अधिकार है।

ऐसे जीवन स्तर का अधिकार जो स्वयं उसके और उसके कुटुम्ब के स्वास्थ और कल्याण के लिए पर्याप्त है। इसके अंतर्गत भोजन, वस्त्र, मकान और चिकित्सा तथा आवश्यक सामाजिक सेवाएं भी हैं और बेरोजगारी, रूग्णता, अशक्तता, वैधव्य, वृद्धावस्था या उसके नियंत्रण के बाहर परिस्थितियों में जीवनयापन के अभाव की दशा में सुरक्षा का अधिकार है।

समुदाय के सांस्कृतिक जीवन में मुक्त रूप से भाग लेने, कलाओं का आनन्द लेने और वैज्ञानिक प्रगति और उसके फायदों में हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार, और

स्वनिर्मित वैज्ञानिक, साहित्यिक या कलात्मक कृति के परिणामस्वरूप होने वाले नैतिक और भौतिक हितों के संरक्षण का अधिकार।

घोषणा को "भारी महत्व की एक ऐतिहासिक घटना और संयुक्त राष्ट्र की एक बहुत बड़ी उपलब्धि के रूप में"[8] प्रशंसित किया गया है। इसे एक ऐसी खान के रूप में माना गया है जिसमें से इन अधिकारों की संरक्षा करने वाले अन्य अभिसमय (convention) और साथ ही राष्ट्रीय संविधान निकाले हुए हैं और निकल रहे हैं।[9]

मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा ने राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय मामलों पर भारी प्रभाव डाला। यह मानव अधिकारों पर अनेक अंतरराष्ट्रीय अभिसमयों और प्रसंविदाओं की आधार बनी है और अनेक राज्यों का आधार बनी है और अनेक राज्यों के संविधानों की जो घोषणा के अंगीकार किए जाने के पश्चात् बने हैं।

मानव अधिकारों पर अभिसमय और प्रसंविदाएं

मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा के पश्चात् अंतरराष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकार प्रसंविदा (International Covenant on Civil and Political Rights), अंतरराष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार प्रसंविदा (International Covenant on Economics, Social and Cultural Rights) 1966 और अंतरराष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकारों पर प्रसंविदा का वैकल्पिक प्रोटोकॉल (Optional Protocol to the International Convenant on Civil and Political Rights) अंगीकार किए गए हैं। ये दस्तावेज मानव अधिकारों के मूल अधिकार हैं। वे मानव अधिकारों की अभिवृद्धि और पालन के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ के बढ़े हुए कदम हैं।

मानव अधिकारों को मोटे तौर पर समझने के लिए इन दस्तावेजों में दिए गए मानव अधिकारों का संक्षिप्त उल्लेख आवश्यक है।

अंतरराष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकार प्रसंविदा

अंतरराष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकार प्रसंविदा की उद्देशिका में निम्नलिखित कथन किया गया है, जो प्रसंविदा के उद्देश्य को बताता है–

इस प्रसंविदा के पक्षकार राज्य,

यह विचार करके कि संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में उद्घोषित सिद्धांतों के अनुसार मानव परिवार के सभी सदस्यों की अंतर्निहित गरिमा और समान तथा अन्य अभेद्य अधिकारों की मान्यता विश्व में स्वतंत्रता, न्याय और शांति का आधार है,

---

8. सर एच. लाटरपाट, 'इंटरनेशनल लॉ एण्ड ह्यूमन राइट्स' पृ0 394
9. जे. ई. एस. फावेट 'अद लॉ ऑफ नेशन्स' (1968) पृ0 156

यह मानकर कि ये अधिकार मानव देह की अंतर्निहित गरिमा से व्युत्पन्न है,

यह मानकर कि मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा के अनुसार, निर्भीक और स्वतंत्र मानव का आदर्श केवल तभी प्राप्त किया जा सकता है जब ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न की जाएं जिनमें प्रत्येक व्यक्ति अपने सिविल और राजनैतिक अधिकारों तथा अपने आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों का उपभोग कर सकें,

संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अधीन मानव अधिकारों और स्वतंत्रताओं के प्रति सार्वभौम सम्मान और उनके पालन कराने की राज्यों की बाध्यता का विचार करके,

यह अनुभव करके कि प्रत्येक व्यक्ति के अन्य व्यक्तियों के प्रति और अपने समुदाय के प्रति कर्तव्य हैं और इस प्रसंविदा में मान्यता दिए गए अधिकारों की अनुवृद्धि और पालन के लिए प्रयास करना उसका उत्तरदायित्व है,

सिविल और राजनैतिक अधिकार प्रसंविदा संक्षेप में राज्यों पर निम्नलिखित बाध्यता डालती है–

इस प्रसंविदा के पक्षकार राज्य इस प्रसंविदा में उपवर्णित सभी सिविल और राजनैतिक अधिकारों का उपभोग करने के पुरुषों और स्त्रियों के समान अधिकार को सुनिश्चित करने का वचन देते हैं।

लोक आपात में जिसमें राष्ट्र के जीवन को खतरा है और जिसकी विद्यमानता की शासकीय रूप से उद्घोषणा की गयी है, इस प्रसंविदा के पक्षकार राज्य स्थिति की अत्यावश्यकता द्वारा पूर्णतः अपेक्षित सीमा तक इस प्रसंविदा के अधीन अपनी बाध्यताओं के अल्पीकरण में उपाय कर सकेंगे, परंतु ऐसे उपाय अंतरराष्ट्रीय विधि के अधीन उनकी अन्य बाध्यताओं से असंगत नहीं होगें और उनमें केवल मूल, वंश, वर्ण, लिंग, भाषा, धर्म या सामाजिक उद्गम के आधार पर विभेद नहीं किया जाएगा।

इस प्रसंविदा के पक्षकार किसी राज्य में विधि, परंपरा विनियम या रूढ़ि के अनुसरण में मान्यता दिए गए या विद्यमान मूल मानव अधिकारों को, इस आधार पर कि यह प्रसंविदा ऐसे अधिकारों को मान्यता नहीं देती है या यह उन्हें कम सीमा तक मान्यता देती है, निर्बंधित या अल्पीकृत नहीं किया जाएगा।

प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रता और शरीर की सुरक्षा का अधिकार है। किसी को भी मनमाने रूप से गिरफ्तार नहीं किया जायेगा या मनमाने रूप से निरुद्ध नहीं रखा जाएगा। किसी व्यक्ति को उसकी स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित आधारों पर और प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं।

ऐसे व्यक्ति को जिसे गिरफ्तार किया गया है, गिरफ्तारी के समय गिरफ्तारी

के कारणों से अवगत कराया जाएगा और उसे उसके विरुद्ध आरोपों की तत्परता से सूचना दी जाएगी।

ऐसे व्यक्ति को जिसे दांडिक आरोप पर गिरफ्तार किया गया है या निरुद्ध रखा गया है तत्परता से किसी न्यायाधीश के समक्ष या विधि द्वारा न्यायिक शक्ति का प्रयोग करने के लिए प्राधिकृत किसी अधिकारी के समक्ष लाया जाएगा और वह युक्तियुक्त समय के भीतर विचारण किए जाने या उन्मोचित किए जाने का हकदार होगा। ऐसा साधारण नियम नहीं होगा कि विचारण की प्रतीक्षा करते हुए व्यक्तियों को अभिरक्षा में निरुद्ध रखा जाए, किंतु उनकी उन्मुक्ति विचारण के लिए न्यायिक कार्यवाहियों के किसी अन्य प्रक्रम पर और यदि अवसर आए तो निर्णय के निष्पादन के लिए उपस्थित होने की गारंटी के अधीन की जा सकेगी।

ऐसे व्यक्ति जिसे गिरफ्तार या निरुद्ध करके उसकी स्वतंत्रता से वंचित किया गया है किसी न्यायालय के समक्ष कार्यवाही करने का हकदार होगा जिससे कि वह न्यायालय अविलंब उसके निरोध की वैधता का, विनिश्चय कर सके और यदि निरोध विधिपूर्ण न हो तो उसकी उन्मुक्ति का आदेश दे सके।

ऐसे व्यक्ति को जो विधि विरुद्ध निरुद्ध या गिरफ्तार किया गया है, प्रतिकार का प्रवर्तनीय अधिकार होगा।

सभी व्यक्तियों के साथ मानवीय और मानव देह की अंतर्निहित गरिमा के लिए ससम्मानजनक व्यवहार किया जाएगा।

ऐसे प्रत्येक व्यक्ति को जो किसी राज्य के राज्यक्षेत्र में विधिपूर्ण रूप से हैं उस राज्य क्षेत्र के भीतर संचरण की और अपने आवास का चयन करने की स्वतंत्रता का अधिकार होगा।

प्रत्येक व्यक्ति किसी भी देश को, जिसके अंतर्गत स्वदेश भी है, छोड़ने के लिए स्वतंत्र है। किसी व्यक्ति को अपने देश में प्रवेश करने के अधिकार से मनमाने ढंग से वंचित नहीं किया जायेगा। सभी व्यक्ति न्यायालयों और अधिकरणों के समक्ष समान होंगे, प्रत्येक व्यक्ति, अपने विरुद्ध किसी दांडिक आरोप के अवधारण में या विधि में किसी वाद में अपने अधिकारों और बाध्यताओं के अवधारणा में, विधि द्वारा स्थापित किसी सक्षम, स्वतंत्र और निष्पक्ष अधिकरण द्वारा ऋजु और सार्वजनिक सुनवाई का हकदार होगा।

ऐसे प्रत्येक व्यक्ति को जिस पर दांडिक अपराध का आरोप है, यह अधिकार होगा कि उसे तब तक निरपराध माना जाएगा जब तक कि उसे विधि के अनुसार दोषी साबित नहीं कर दिया जाता।

किसी व्यक्ति को किसी ऐसे कार्य या लोप के कारण जो किए जाने के समय

राष्ट्रीय या अंतरराष्ट्रीय विधि के अधीन दांडिक अपराध नहीं था, किसी दांडिक अपराध का दोषी अभिनिर्धारित नहीं किया जाएगा। न ही उस शास्ति से अधिक शास्ति उस पर अधिरोपित की जायेगी जो उस समय अधिरोपित की जाती जब दांडिक अपराध किया गया था।

प्रत्येक व्यक्ति को सर्वत्र विधि के समक्ष व्यक्ति के रूप में मान्यता पाने का अधिकार होगा।

किसी व्यक्ति की एकांतता, कुटुंब, घर या पत्र–व्यवहार के साथ मनमाना या विधि–विरुद्ध हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा और उसके सम्मान और ख्याति पर विधि विरुद्ध आघात नहीं किया जाएगा।

प्रत्येक व्यक्ति को ऐसे हस्तक्षेप या आघात के विरुद्ध विधि के संरक्षण का अधिकार है।

प्रत्येक व्यक्ति को, अंतःकरण और धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार होगा। इस अधिकार के अंतर्गत अपनी रूचि या धर्म या विश्वास मानने या अपनाने की स्वतंत्रता और अकेले या अन्य व्यक्तियों के साथ मिलकर तथा सार्वजनिक रूप से या एकांत में उपासना, परिपालन, व्यवहार और उपदेश से अपने धर्म या विश्वास को प्रकट करने की स्वतंत्रता भी है।

प्रत्येक व्यक्ति को किसी हस्तक्षेप के बिना अभिमत रखने का अधिकार होगा।

प्रत्येक व्यक्ति को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार होगा, इस अधिकार के अंतर्गत, सीमाओं का ध्यान किए बिना, मौखिक, लिखित या मुद्रित रूप में, कला के रूप में या अपनी रूचि के किसी अन्य संचार माध्यम से सभी प्रकार की सूचना और विचारों की खोज करने, प्राप्त करने और प्रदान करने की स्वतंत्रता भी है।

शांतिपूर्ण सम्मेलन के अधिकार को मान्यता दी जाएगी।

प्रत्येक व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों के साथ संगम की स्वतंत्रता का अधिकार होगा, जिसके अंतर्गत उसके हितों के संरक्षण के लिए व्यवसाय संघ बनाने और उनमें सम्मिलित होने का अधिकार भी है।

विवाह योग्य आयु के पुरुषों और स्त्रियों के विवाह करने और कुटुम्ब बनाने के अधिकार को मान्यता दी जाएगी।

सभी व्यक्ति विधि के समक्ष समान हैं और, किसी विभेद के बिना विधि के समान संरक्षण के हकदार हो। इस संबंध में, विधि द्वारा प्रत्येक विभेद का प्रतिषेध किया जाएगा और मूल, वंश, वर्ण, लिंग, भाषा, धर्म, राजनैतिक या अन्य विचार राष्ट्रीय या सामाजिक

मूल, सम्पत्ति, जन्म या अन्य प्रास्थिति जैसे किसी आधार पर विभेद के विरुद्ध सभी व्यक्तियों को समान और प्रभावी संरक्षण की गारंटी दी जाएगी।

प्रसंविदा द्वारा मानव अधिकार समिति गठित करने का प्रावधान किया गया। प्रसंविदा में दिए गए मानव अधिकारों के उल्लंघन की शिकायत पर यह समिति जांच कराती है और अपनी रिपोर्ट देती है।

अंतरराष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार प्रसंविदा

अंतरराष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार प्रसंविदा की उद्देशिका में उसका उद्देश्य निम्नलिखित कहा गया है–

इस प्रसंविदा के पक्षकार राज्य,

यह विचार करके कि संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में उद्घोषित सिद्धांतों के अनुसार, मानव परिवार के सभी सदस्यों की अंतर्निहित गरिमा और समान तथा अभेद्य अधिकारों की मान्यता विश्व में स्वतंत्रता, न्याय और शांति का आधार है,

यह मानकर कि ये अधिकार मानव देह की अंतर्निहित गरिमा से व्युत्पन्न हैं,

यह मानकर कि मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा के अनुसार, निर्भीक तथा अभाव रहित स्वतंत्र मानव का आदर्श तभी प्राप्त किया जा सकता है जब ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न की जाएं जिनमें प्रत्येक व्यक्ति अपने आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों तथा अपने सिविल और राजनैतिक अधिकारों का उपभोग कर सकें।

संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अधीन मानव अधिकारों और स्वतंत्रताओं के प्रति सार्वभौम सम्मान जागृत करने और उनका पालन कराने की राज्य की बाध्यता का विचार करके,

यह अनुभव करके कि प्रत्येक व्यक्ति के अन्य व्यक्तियों के प्रति और अपने समुदाय के प्रति कर्त्तव्य हैं और वह इस प्रसंविदा में मान्यता दिए गए अधिकारों की अनुवृद्धि और पालन के लिए प्रयास करने के दायित्वाधीन है,

प्रसंविदा में राज्यों पर निम्नलिखित बाध्यताएं डाली गयी हैं :–

काम करने के अधिकार को मान्यता।

प्रत्येक व्यक्ति को काम की न्यायोचित और अनुकूल दशाओं के अधिकार की मान्यता।

प्रत्येक व्यक्ति का, अपने आर्थिक और सामाजिक हितों की प्रोन्नति और संरक्षण के लिए व्यवसाय संघ बनाने और अपनी इच्छानुसार व्यवसाय संघ में सम्मिलित होने

का अधिकार, जो केवल संबंधित संगठन के नियमों के अधीन होगा। इस अधिकार के प्रयोग पर विधि द्वारा विहित निर्बंधनों और उन निर्बंधनों से भिन्न कोई निर्बंधन नहीं लगाए जा सकेंगे जो प्रजातंत्र, राष्ट्रीय सुरक्षा या लोक व्यवस्था के हित में या अन्य व्यक्तियों के अधिकारों और स्वतंत्रता के संरक्षण के लिए आवश्यक हैं।

प्रत्येक व्यक्ति के सामाजिक सुरक्षा के अधिकार को जिसके अंतर्गत सामाजिक बीमा भी है, मान्यता देते हैं।

कुटुम्ब को, जो समाज की नैसर्गिक और प्राथमिक इकाई है, यथासंभव व्यापक संरक्षण और सहायता, विवाह के इच्छुक पक्षकारों की स्वतंत्र सम्मति से ही विवाह।

प्रत्येक व्यक्ति के स्वयं अपने लिए, अपने कुटुंब के लिए, पर्याप्त जीवन स्तर के, जिसके अंतर्गत पर्याप्त भोजन, वस्त्र और आवास है और जीवन की दशाओं के निरंतर सुधार के अधिकार को मान्यता।

प्रत्येक व्यक्ति के भूख से मुक्त होने के मूल अधिकार को मान्यता देते हुए, अकेले और अंतरराष्ट्रीय सहयोग के माध्यम से उपाय करना।

प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह उच्चतम प्राप्त स्तर के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का आनंद ले।

प्रत्येक व्यक्ति का शिक्षा के अधिकार को मान्यता।

प्रत्येक व्यक्ति के,

सांस्कृतिक जीवन में भाग लेने,

वैज्ञानिक प्रगति और उसके उपयोजन के फायदों का उपभोग करने,

किसी ऐसे वैज्ञानिक, साहित्यिक या कलाकृति के, जिसका वह रचयिता है, परिणामस्वरूप होने वाले नैतिक और मौलिक हितों के संरक्षण से फायदा उठाने के अधिकार को मान्यता देने,

प्रसंविदा में राज्यों पर भी यह बाध्यता डाली गयी है कि वे प्रसंविदा के अनुसरण के लिए किए गए कार्यों की रिपोर्ट दें। प्रसंविदा में कहा गया है--

इस प्रसंविदा के पक्षकार राज्य पक्षकार के इस भाग के अनुरूप उन उपायों पर जो उन्होंने किए हैं और इसमें मान्यता दिए गए अधिकारों के पालन कराने के विषय में की गयी प्रगति पर प्रतिवेदन प्रस्तुत करने का वचन देते है।

सभी प्रतिवेदन संयुक्त राष्ट्र के महासचिव को प्रस्तुत किए जाएंगे और वह उनकी

प्रतियां उस प्रसंविदा के उपबंधों के अनुसार विचार के लिए आर्थिक और सामाजिक परिषद को भेजेगा।

अंतरराष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकारों पर प्रसंविदा का वैकल्पिक प्रोटोकॉल

अंतरराष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकारों पर प्रसंविदा में दिए गए अधिकारों के अतिक्रमण के संबंध में अंतरराष्ट्रीय सार पर संसूचना देने का प्रावधान कराता है। इसका आमुख कहता है--

इस प्रोटोकॉल के पक्षकार राज्य--

यह विचार करके कि सिविल और राजनैतिक अधिकार प्रसंविदा के प्रयोजनों की सिद्धि और उसके उपबंधों के कार्यान्वयन को अग्रसर करने के लिए यह समुचित होगा कि प्रसंविदा के भाग 4 में स्थापित मानव अधिकार समिति को प्रसंविदा में उपवर्णित अधिकारों में से किसी अधिकार के अतिक्रमण से व्यथित व्यक्तियों से, इस प्रोटोकॉल में यथा उपबंधित संसूचनाएं ग्रहण करने के लिए समर्थ बनाया जाए।

निम्नलिखित करार करते हैं--

करार की आधारभूत बातें प्रथम दो अनुच्छेदों में कही गयी हैं जो निम्नलिखित हैं--

प्रसंविदा का पक्षकार ऐसा राज्य जो इस प्रोटोकॉल का पक्षकार बन जाता है प्रसंविदा में उपवर्णित अधिकारों में से किसी अधिकार का उस पक्षकार राज्य द्वारा अतिक्रमण किए जाने के कारण व्यथित होने का दावा करने वाले ऐसे व्यक्तियों से जो उसकी अधिकारिता के अधीन, संसूचनाएं प्राप्त करने और उन पर विचार करने की समिति की सक्षमता को मान्यता देता है। समिति ऐसी कोई संसूचना प्राप्त नहीं करेगी जो प्रसंविदा के ऐसे पक्षकार के बारे में है जो वर्तमान प्रोटोकॉल का सदस्य नहीं है।

उक्त उपबंध के अधीन रहते हुए, ऐसे व्यक्ति जो यह दावा करते हैं कि प्रसंविदा के परिगणित उनके अधिकारों में से किसी अधिकार का अतिक्रमण हुआ है और जिन्होंने सभी उपलब्ध देशीय उपचारों को निःशेष कर लिया है, समिति को विचार के लिए एक लिखित संसूचना प्रस्तुत कर सकेंगे।

अंतरराष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकारों पर प्रसंविदा का द्वितीय वैकल्पिक प्रोटोकॉल, जिसका उद्देश्य मृत्युदण्ड का उत्सादन है।

इस प्रोटोकॉल के आमुख में कहा गया है--

वर्तमान में प्रोटोकॉल के पक्षकार राज्य,

यह विश्वास करके कि मृत्युदण्ड के उत्सादन से मानव गरिमा, और मानव अधिकारों के प्रगामी विकास की अभिवृद्धि होगी,

विश्व मानव अधिकार सार्वभौम घोषणा के अनुच्छेद 3, जो 10 दिसम्बर, 1948 को अंगीकार किया गया है, और अंतरराष्ट्रीय सिविल और राजनीतिक अधिकार प्रसंविदा, जो 16 दिसम्बर, 1966 को अंगीकार की गयी है, के अनुच्छेद 6 का स्मरण करके,

यह नोट करके कि अंतरराष्ट्रीय सिविल और राजनीतिक अधिकार प्रसंविदा के अनुच्छेद 6 में मृत्युदंड के उत्सादन के लिए निर्देश ऐसे दृढ़ शब्दों में किया गया है कि मृत्युदण्ड का उत्सादन निश्चय ही अतिवांछनीय है,

इस बात से आश्वस्त होकर कि मृत्युदंड के उत्सादन के लिए सभी उपायों से, जीवन के अधिकार के उपभोग में प्रगति हुई है,

मृत्युदंड के उत्सादन की बाबत अंतरराष्ट्रीय प्रतिबद्धता को कार्यान्वित करने की इच्छा रखकर, निम्नलिखित करार करते हैं–

करार में अन्य बातों के साथ मुख्य बात निम्न हैं:

वर्तमान प्रोटोकॉल के पक्षकार को किसी भी राज्य की अधिकारिता के भीतर मृत्युदंड नहीं दिया जाएगा।

प्रत्येक पक्षकार राज्य, अपनी अधिकारिता के भीतर मृत्युदंड के उत्सादन के लिए सभी आवश्यक उपाय करेगा।

मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा और प्रसंविदाओं में अंतर हैं। घोषणा विधिक रूप से प्रवर्तनीय प्रपत्र या लिखत (Instrument) नहीं है। तथापि, प्रसंविदाएं इन अधिकारों के बारे में एक विधिक बाध्यता डालती हैं और अपने अतिक्रमण की शिकायतों को निपटाने के लिए मशीनरी का प्रावधान करती हैं।

ऊपर कथित मानव अधिकारों के दस्तावेजों के अतिरिक्त अन्य बहुत से अभिसमय तथा प्रस्ताव आदि हैं जो क्रमशः बढ़ते हुए मानव अधिकार के क्षेत्र के बारे में हैं। उनकी संख्या संप्रति सात दर्जन के आसपास है। (स्थानाभाव से उन सभी का उल्लेख करना यहां संभव नहीं है।)

मानव अधिकारों के अतिक्रमण के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कतिपय उपचारों के भी प्रावधान किए गए हैं। अब मानवाधिकार आयोग (Human Rights Commission) मानव अधिकारों के मानकों को लागू करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने लगा

है। इसने सदस्य राज्यों द्वारा मानव अधिकारों के अतिक्रमण के मामलों को देखने के लिए एक प्रक्रिया स्थापित की है। इसे मानव अधिकारों के संरक्षण की समस्या के पर्यवेक्षण के लिए स्थायी मशीनरी के निकटतम पहुंच माना जाता है।

आयोग स्वप्रेरणा से अथवा महासभा (General Assembly) अथवा आर्थिक और सामाजिक परिषद् (Economic and Socil Council) के निवेदन पर मानव अधिकारों की स्थिति का अध्ययन करता है और सिफारिशें करता है। आयोग आर्थिक और सामाजिक परिषद् के प्रत्येक सत्र पर एक रिपोर्ट देता है। मानव अधिकारों के अतिक्रमण की जांच में इसने एक सक्रिय भूमिका अदा की है। यह मानव अधिकारों पर ईयर बुक (वार्षिकी) भी प्रकाशित करता है।

महिलाओं की हैसियत पर एक आयोग है। इसमें महिलाओं के अधिकारों के लिए मानक तैयार करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। यह अपने संकल्प (resolution) अंगीकार करता है और ई. सी. ओ. एस. सी. (Economic and Social Council) द्वारा अंगीकार किए जाने के लिए प्रस्ताव के मसविदा की सिफारिश करता है। यह कौंसिल के प्रत्येक सत्र पर, एक रिपोर्ट भेजता है। एक उप आयोग है जो विभेद निवारण और अल्पसंख्यक संरक्षण आयोग (Commission on Prevention of Discrimination and Protection of Miniorities) कहलाता है। इसे विभेद के निवारण और सामाजिक, राष्ट्रीय और भाषाई (linguistic) अल्पसंख्यकों के संरक्षण का काम सौंपा गया है। यह मानव अधिकार आयोग के प्रत्येक सत्र पर एक रिपोर्ट प्रस्तुत करता है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के अन्य अनेक निकाय भी हैं जो मानव अधिकारों को लागू करने की भूमिका अदा कर रहे हैं। सिविल और राजनीतिक अधिकार पर अभिसमय (सी.सी.पी.आर) (Convention on Civil and Political Rights) को मॉनीटर और लागू करने के लिए मानव अधिकार समिति है। राज्य पक्षकारों से यह अपेक्षा की गयी है कि वे अभिसमय में मान्य अधिकारों को प्रभावी करने के लिए अपने द्वारा किए गए अध्युपाय (measures) पर मानव अधिकार समिति को एक आवधिक रिपोर्ट प्रस्तुत करे। राष्ट्रीय रिपोर्टों पर विचार करने के पश्चात् समिति अपनी टिप्पणी भेजती है।

आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर एक विशेषज्ञ समिति है जो सी.ई.एस.सी.आर. (Convention on Economic, Social and Cultural Rights) के अधीन अधिकारों के लागू किए जाने का पर्यवेक्षण करती है। संयुक्त राष्ट्र के अन्य अभिसमय हैं जिसमें मानव अधिकारों के प्रवर्तन के लिए मशीनरी का प्रावधान है। अंतरराष्ट्रीय मजदूर संगठन (आई.एल.ओ.) का संविधान यह अपेक्षा करता है कि सदस्य राज्य आई. एल.ओ के अभिसमय को प्रभावी करने के लिए अपने द्वारा अपनाए गए अध्युपायों पर प्रतिवर्ष वार्षिक रिपोर्ट दे।

कुछ क्षेत्रीय अभिसमय भी हैं, नामतः (1) मानव अधिकारों के संरक्षण के लिए यूरोपीय अभिसमय (The European Convention for the Protection of Human Rights) 1950, (2) मानवाधिकारों पर अमरीकी अभिसमय (American Convention of the Protection of Human Rights) 1969, (3) मानव अधिकारों एवं लोगों के अधिकारों पर अफ्रीकी चार्टर (African Charter on Human Rights and People Rights) 1981। ये अभिसमय अपने–अपने क्षेत्रों में मानव अधिकारों के संरक्षण को सुनिश्चित करने के लिए कार्य करते हैं।

अंतरराष्ट्रीय और क्षेत्रीय स्तर पर अनेक गैर–सरकारी संस्थाएं (एन.जी.ओ.) भी हैं जो मानव अधिकारों के उल्लंघन पर रिपोर्ट जारी किया करती हैं। कुछ ऐसे एन. जी.ओ. हैं–रेडक्रास की अंतरराष्ट्रीय समिति (International Committee of Red Cross), विधिशास्त्रियों का अंतरराष्ट्रीय आयोग (International Commission of Jurists), एमनेस्टी इंटरनेशनल (Amnesty International) ये आवधिक रूप से अपनी रिपोर्ट जारी किया करते हैं जो अन्य बातों के साथ यह दिखाती हैं कि किन क्षेत्रों या देशों में मानव अधिकार के अतिक्रमण हो रहे हैं उनकी रिपोर्ट ऐसे अतिक्रमण की ओर विश्व का ध्यान आकृष्ट करती है और राष्ट्रीय सरकारों पर उसका भारी असर होता है।

हाल के वर्षों में विश्व निकाय ने मानव अधिकारों और उनके संरक्षण और उन्नयन के लिए राय तैयार करने और उसके बारे में अधिक जागरूकता उत्पन्न करने के लिए बहुत से कदम उठाए हैं।

संयुक्त राष्ट्र ने एक नवीन अंतरराष्ट्रीय मानव व्यवस्था (International Human Orders) की स्थापना के लिए कदम उठाए हैं जिसका उद्देश्य निर्धनता, निरक्षरता, आतंकवाद, शरणार्थी समस्याओं एवं अन्य मुद्दों के समाधान का आधार प्रस्तुत करना है।

1991 में महासभा ने अन्य के साथ उन व्यक्तियों को जो दासता के शिकार हैं और इस चलन से जिनके अधिकारों का अतिक्रमण हुआ है आर्थिक सहायता प्रदान करने के लिए एक स्वैच्छिक कोष की स्थापना के लिए संकल्प अंगीकार किया है।

मानव अधिकारों पर एक विश्व सम्मेलन वियना में 1993 में हुआ था। इसमें दो भागों वाली वियना घोषणा में छः भागों की कार्यवाही का एक कार्यक्रम अंगीकार किया गया। सम्मेलन में अन्य बातों के साथ अंतरराष्ट्रीय मानव अधिकारों, प्रपत्रों और उनके मॉनीटर करने के तंत्र को सशक्त बनाने के लिए कल्पित विनिर्दिष्ट अध्युपायों को अपनाने के लिए कहा गया ।

यह उल्लेखनीय है कि विश्व संस्था मानव अधिकारों के अतिक्रमण के निवारण में अब तक बहुत प्रभावी साबित नहीं हुई है। मानव अधिकारों के उन्नयन और पालन

के लिए संयुक्त राष्ट्र द्वारा उठाए गए बहुविध कदमों के बावजूद भी उसका अतिक्रमण और उसे नकारना अब भी कायम है। राजनैतिक हत्याएं, धार्मिक पीड़न, जाति संहार (Genocide) सिविल युद्ध क्रमशः बढ़ता हुआ आतंकवाद इत्यादि विश्व के बहुत भागों में बहुलता से चल रहे हैं।

ऐसी बहुत सी बातें हैं जो मानव अधिकार के प्रवर्तन को रोकने के लिए उत्तरदायी हैं। मानव अधिकार के विश्वजनीन आधार पर एक रूप मानक नहीं हो, न ही कदाचित् इस रूप में वे विरचित किए जा सके हैं। मानव अधिकारों के पालन में संप्रभुता (Sovereignty) की संकल्पना एक बड़ी बाधा है। विश्व के बहुत से भागों में विद्यमान राजनीतिक स्थिति मानव अधिकारों के संरक्षण पर गंभीर रूप से प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली हैं।

यह उल्लेखनीय है कि संयुक्त राष्ट्र के प्रयोजन के रूप में मानव अधिकारों का संरक्षण एवं उन्नयन उसके अन्य प्रयोजनों पर आश्रित है। मानव अधिकार के उन्नयन के विषय में प्रगति को संयुक्त राष्ट्र के इन प्रयोजनों की सिद्धि पर ही बढ़ाया जा सकता है। 'यदि शांति को कायम रखा जा सकता है, अंतरराष्ट्रीय स्थिरता को बढ़ाया जा सकता है, राष्ट्रों को अपने भाग्य का आप निर्माण करने दिया जाता है, राष्ट्रों के आर्थिक और सामाजिक विकास में वे सहायता करते हैं, जिनके पास अधिक हैं तब प्रत्येक मानव प्राणी के अधिकार को फलने–फूलने का अवसर होगा, और संयुक्त राष्ट्र इन अधिकारों को बढ़ाने की प्रक्रिया को गति देने में, इन अधिकारों को महत्वपूर्ण बनाने में एक भूमिका अदा कर सकता है।'[10]

10. लुईस हेन्किन दि यूनाइटेड नेशन्स एण्ड ह्यूमन राइट्स इंटरनेशपल आर्गेनाइजेशन वा0 XXI नं0 3 1965, पृ0 504 पृ0 512 पर

मानव दुर्व्यापार एवं मानवाधिकार – एक त्रासदी

* डॉ0 सरोज व्यास

मानव दुर्व्यापार समाज का सबसे घृणित रूप है। यह एक ऐसी आपराधिक प्रथा है जिसमें मानव का एक वस्तु की तरह शोषण करके लाभ कमाया जाता है। इस कुप्रथा में फंसे पीड़ितों पर पूरी तरह से नियंत्रण किया जाता है जिससे वे रोटी, कपड़ा, पैसा तथा अन्य सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इनके व्यापारियों पर पूर्णतया निर्भर हो जाते हैं। इस शोषण में इन शोषितों से देह व्यापार करवाना, इनके अंगों का व्यापार करना, इत्यादि शामिल हैं। आधुनिक दासता का सबसे भयावह रूप मानव दुर्व्यापार है। इस ओर समाज का ध्यान आकर्षित तो होता है परन्तु कुछ सफलता हाथ नहीं लगती। इस प्रकार मानव की गरिमा खंडित होती है। इस व्यापार के मूल कारण गरीबी, अशिक्षा तथा समाज में व्याप्त कई कुरीतियां हैं। इस व्यापार में महिलाओं का ही नहीं बल्कि बच्चों के मूलभूत अधिकारों का भी हनन होता है। इस व्यापार में शामिल अधिकांश महिलाएं पिछड़े और विकासशील देशों की होती हैं। आज भारत में मानव दुर्व्यापार हेतु कई मैरिज ब्यूरो, नौकरी दिलाने वाले संस्थान एवं कोचिंग सेंटर, मसाज पार्लर, डांस बार, आदि संलग्न हैं। भारत के उच्चतम न्यायालय ने राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग को बंधुआ मजदूरी उन्मूलन के लिए अधिकृत किया है। आयोग ने प्रभावी भूमिका का निर्वहन किया है तथा विशेषतः गोंडा सर्कस केस में यौन शोषण के प्रकरण में पीडितों को मुक्त कर दोषियों को कानून के हवाले किया। मानव दुर्व्यापार एक ऐसी त्रासदी है जिसके उन्मूलन हेतु समाज व सरकार को मिलकर कार्य करना होगा।

मानव दुर्व्यापार आधुनिक दासता का वह स्वरूप है जिसमें नशीले पदार्थों एवं हथियारों की तस्करी के उपरान्त सर्वाधिक लाभ प्राप्त होता है। यह मानवीय पीड़ाओं

* प्रधानाचार्या, बी0एल0एस0 इंस्टीट्यूट ऑफ टैक्नोलॉजी मैनजमेंट (संबद्ध गु0 0गो0 सिंह, इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय, दिल्ली), बहादुरगढ़ (हरियाणा)

से जुड़ा वह व्यापार है, जिससे मानव अधिकारों का सीधा हनन होता है। कदाचित अन्य अपराध इतने जघन्य नहीं होते जितना कि मानवीय पीड़ाओं से एवं कष्टों से युक्त यह व्यापार होता है।

मानव दुर्व्यापार को कई प्रकार से परिभाषित किया गया है। यह एक ऐसा व्यापार है, जिसे सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक कारणों से वर्जनीय माना गया है। मानव दुर्व्यापार उस आपराधिक प्रथा को इंगित करता है जिसमें मानव का एक वस्तु की तरह शोषण करके लाभ कमाया जाता है। यह शोषण इस तथाकथित व्यापार के बाद भी जारी रहता है। मानव दुर्व्यापार में पीड़ित पर नियंत्रण रखने हेतु पीड़ित को व्यक्तिगत अभिरक्षा में बंदी स्वरूप रखा जाता है, आर्थिक नियंत्रण में रखा जाता है तथा धमकियों एवं हिंसा का भी सहारा लिया जाता है।

इन हथकंडों के द्वारा पीड़ित पर पूरी तरह से नियंत्रण सुनिश्चित किया जाता है। पीड़ितों को भूखा रखना, अंधेरे कमरे में कैद कर देना, पीटना, यातना देना, सिगरेट से उनके अंगों को जलाना, गला घोंटना, चाकू मारना, परिजनों की हत्या की धमकी देना या उनका कत्ल कर देना, नशीले पदार्थों का जबरन सेवन करवा कर उन्हें इनका आदी बना देना, उनके रूपये–पैसे जब्त कर उनको असहाय बना देना, आदि सामान्य हथकंडे इस व्यापार में अपनाये जाते हैं। इस प्रकार रोटी, कपड़ा, पैसा व अन्य समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु पीड़ित इन व्यापारियों पर पूर्णतया निर्भर हो जाते हैं।

संयुक्त राष्ट्र का प्रोटोकॉल जो मानव दुर्व्यापार, विशेषतः महिलाओं एवं बच्चों के संदर्भ में, इसको रोकने, उन्मूलन करने तथा दण्डित करने के सम्बन्ध में है, उसके अनुसार इसकी परिभाषा निम्न प्रकार से दी गई है :–

किसी भी व्यक्ति को भय के द्वारा, बलात् प्रयोग द्वारा, अपहरण द्वारा, धोखे से, लालच द्वारा, बहला–फुसलाकर, पद के दुरूपयोग द्वारा व अन्य साधनों से भर्ती करना, ले जाना, स्थानान्तरित करना, अभिरक्षा में रखना एवं लाभ प्राप्ति तथा शोषण द्वारा उस पर नियंत्रण रखना। इस प्रकार के शोषण में इन शोषितों से देहव्यापार करवाना, शारीरिक शोषण करना, जबरन बेगार करवाना अथवा बलात् सेवायें लेना, दासता में रखना अथवा दासवत् व्यवहार करना एवम् इन शोषितों के अंगों का व्यापार करना, इत्यादि सम्मिलित हैं।

मानव दुर्व्यापार आधुनिक समय की दासता का एक भयावह प्रतिरूप है। इस दासता में साम, दाम, दंड, भेद सभी का प्रभावी समावेश होता है। यह शतरंज का एक ऐसा खेल है, जिसमें विभिन्न प्यादे अपनी–अपनी चाल से खेल खेलते हैं, जिनका संचालन बड़े–बड़े प्रभावशाली लोगों द्वारा किया जाता है। देहशोषण का कार्य परम्परागत कोठों से अब अभिजात्य वर्ग के रिहायशी इलाकों की ओर पलायन कर रहा है। आधुनिक तकनीकी का इसे बढ़ाने हेतु भरपूर प्रयोग किया जा रहा है। मनुष्य दुर्व्यापार एक ऐसी

त्रासदी है, जिसकी ओर जागरूक समाज का ध्यान तो आकर्षित होता है, तदुपरान्त चिन्तन एवं मनन भी होता है, परन्तु सफलता की कुंजी हाथ नहीं आती। यह व्यापार का वह विकृत स्वरूप है, जिसके बारे में समग्र एवं प्रमाणिक तथ्य आज भी उपलब्ध नहीं हैं। इसके बारे में जो ज्ञात है, वह है मानवीय समूहों का व्यापक पैमाने पर परिवारों से दूर विस्थापन, उनकी अकल्पनीय शारीरिक व मानसिक उत्पीड़न भरी कष्टमय जिंदगी तथा मरणोपरान्त इन सबसे छुटकारा। इस प्रकार न केवल मानव की गरिमा ही खंडित होती है, अपितु परिवार के परिवार तबाह हो रहे हैं।

यह एक ऐसा व्यापार है, जिसमें लाभ, लालच, धोखे, बल इत्यादि के प्रयोग से पीड़ित को सुनहरे जीवन के स्वप्न दिखाये जाते हैं, जिसके फलस्वरूप व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता का सौदा करने को बाध्य हो जाता है। इस व्यापार की जड़ में गरीबी, अशिक्षा तथा अनेकों सामाजिक कारण होते हैं, तथा इसकी धुरी अर्थशास्त्र के इर्द–गिर्द घूमती है। कुछ से जबरन बेगार करायी जाती है, तो अन्य से देह–व्यापार या उनके मानव अंगों का व्यापार भी कराया जाता है। इन पीड़ितों के लिए जिनमें बड़ी संख्या स्त्रियों व बच्चों की होती है, आज भी हमारे देश में प्रभावी सुरक्षा कवच का अभाव है। यह व्यापार तेजी से फैलता जा रहा है। पीड़ित महिलाओं व बच्चों का शोषण बदस्तूर जारी है। इस अपराध के सूत्रधार व बिचौलिये अपने दुष्कर्मों की सजा से बहुधा बच जाते हैं। अनेकों बार ऐसी भी परिस्थितियां सामने आ जाती हैं, कि पीड़ित ही सलाखों के पीछे होते हैं, जो कानूनी एवं आर्थिक मदद की पुकार लगाते सुनायी पड़ते हैं। इस प्रकार मानवधिकारों की दृष्टि से यह विषय अति महत्वपूर्ण बन जाता है।

भारत में मानव दुर्व्यापार को जबरन वेश्यावृत्ति अथवा देहव्यापार के रूप में प्रायः देखा व समझा जाता है। वास्तविकता में देहव्यापार इसका एक पहलू मात्र है। इसकी विभीषिका में जबरन बेगार, बलात् विवाह, भीख मंगवाना, मानव अंग व्यापार भी सम्मिलित हैं। यह एक ऐसी दासता का विश्वव्यापी प्रतिरूप है, जिससे स्त्री एवं बच्चों के मूलभूत मानव अधिकारों का हनन होता है। भारत में पड़ोसी देशों से इन पीड़ितों का आना बदस्तूर जारी है, तथा इन्हें यहां से अन्य देशों में भी भेजा जाता है।

मानव दुर्व्यापार को बढ़ावा देने वाले कारकों में गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी, परम्परागत सामाजिक एवं आर्थिक ढांचों का विलुप्तीकरण, कानून लागू करने वाली संस्थाओं में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा इनका संगठित अपराध करने वालों से गठजोड़ एवं भूमंडलीकरण के दौर में आधुनिक तकनीकी संचार माध्यमों एवं आवागमन के साधनों में अबाध वृद्धि इत्यादि शामिल हैं। देह व्यापार में शामिल अधिकांश महिलायें पिछड़े अथवा विकासशील देशों की ही होती है। वहीं अधिकांशतः इनका उपभोग करने वाले सम्पन्न, धनाढ्य, अपराधी, सफेदपोश, एवं प्रभावशाली व्यक्ति होते हैं। इस व्यापार के कर्णधार सबल व्यक्ति, दुर्बल एवं असहाय तथा मजबूर व्यक्ति के शोषण से फलते–फूलते हैं।

जहां तक हमारे पड़ोसी देशों का संबंध है, सबसे अधिक मात्रा में लड़कियों (अधिकांशतः नाबालिग) की आवक नेपाल एवं बंग्लादेश से होती है। इस दिशा में हुए अध्ययनों के अनुसार अनुमानतः 2 लाख से भी ज्यादा नेपाली मूल की महिलायें भारत में देह व्यापार के क्षेत्र में संलिप्त पायी गयी हैं। भारत से लगती नेपाल एवं बंग्लादेश की सीमाएं भौगोलिक दृष्टि से इस आवागमन को बाधित नहीं करती तथा इन सीमाओं पर तैनात हमारे सुरक्षाबल इस व्यापार के आवागमन के रोकने में सफल नहीं रहे हैं।

जबरन बेगार करवाने के संदर्भ में आधिकारिक पुष्ट आंकड़ों का आज भी अभाव है। बेगार के द्वारा शोषण भारत में अबाध रूप से जारी है। भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने बंधुआमुक्ति मोर्चा बनाम् यूनियन ऑफ इंडिया प्रकरण में विभिन्न कानूनी प्रावधानों का उल्लेख करते हुए, यह निर्णय दिया था, कि जहां देनदार व लेनदार (क्रेडिटर एवं डेटर) का संबंध हो एवं न्यूनतम मजदूरी से कम का भी यदि भुगतान होता हो, तो वह बंधुआ मजदूरी मानी जायेगी। अध्ययनों के अनुसार आज भी हमारे देश में लगभग 350 मिलियन लोग जो असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत हैं, उनको न्यूनतम मजदूरी का भुगतान नहीं होता। लगभग 120 मिलियन बच्चे जो कि छः वर्ष से 14 वर्ष की उम्र के बीच के हैं, शिक्षा प्राप्त करने हेतु स्कूलों में जाने को असमर्थ हैं। बाल मजदूरों की संख्या भारत में अनुपातः 60 मिलियन से 115 मिलियन है।

भारत में अनुमानतः 2,66,847 बच्चे लापता हैं, जिनके बारे में जानकारी ही नहीं है, तथा पुलिस द्वारा उठाये गये कदमों के उपरान्त भी इनको खोजा नहीं जा सका है। उक्त बच्चे भी इस व्यापार की मार के पीड़ित बन चुके हों, ऐसी संभावनाओं से नकारा नहीं जा सकता। यह दुखद पहलू है कि भारत में प्रतिवर्ष लगभग 45,000 बच्चे लापता हो जाते हैं, परन्तु ठोस कदमों का इस दिशा में आज भी अभाव है। निठारी कांड को गंभीरता से लेते हुए, इस त्रासदी से निपटने का जिम्मा राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने उठाया है, तथा अब कम से कम सकारात्मक परिणामों की आशा की जा सकती है। बच्चों के मूलभूत मानव अधिकारों को सुनिश्चित करने हेतु कन्वेंशन ऑन राइट्स ऑफ चाइल्ड को सकारात्मक रूप में लेकर इसके वास्तविक क्रियान्वयन की आज आवश्यकता है। इस हेतु यदि हमें हमारे कानूनों में भी यदि बदलाव करना पड़े, तो भी उससे झिझकना नहीं चाहिए, अपितु अग्रगामी पहल करनी चाहिए।

भारत में मानव दुर्व्यापार हेतु आजकल मैरिज ब्यूरो, नौकरी दिलाने वाले संस्थान एवं कोचिंग सेंटर, मसाज पार्लर, डांस बार इत्यादि की संलिप्तता भी सामने आयी है। इस व्यापार में नेटवर्क भी अति महत्वपूर्ण होता है, जिसमें आपराधिक तत्वों से गठजोड़ वाले पुलिस, पासपोर्ट एवं आव्रजन कर्मचारी, रेल एवं बस कर्मी, टैक्सी, आटो चालक या रिक्शा चालक भी शामिल होते हैं। इस व्यापार के फलने–फूलने में मुखबिरों की भी एक खास भूमिका होती है। यह व्यापार बहुत ही सुनियोजित रूप से संचालित होता है, जिसमें कुछ खिलाड़ी पर्दे के सामने व कुछ पर्दे के पीछे अपनी हरकतों को अंजाम

देते हैं। आये दिन समाचार पत्रों के द्वारा झारखंड एवं छत्तीसगढ़ राज्यों से लायी गयी घरेलू नौकरानियों की व्यथा पढ़ने को मिलती है। अरब देशों में बच्चों को ऊँट दौड़ के लिए ले जाना भी समाचार पत्रों द्वारा पढ़ने को मिलता है। इन सभी प्रकरणों में कितनी छोटी व बड़ी मछलियों को कानून द्वारा सजा मिली, आज भी ज्ञात नहीं है।

मानव दुर्व्यापार में जबरन बेगार अथवा शोषण संबंधी विषयों पर अभी भी ठोस अध्ययनों का अभाव है, तथा बहुत कम मात्रा में शोधकार्य हुए हैं। मानव दुर्व्यापार में तीन महत्वपूर्ण बिन्दु यथा रोकथाम, सुरक्षा तथा अभियोजन हैं, जिनमें परस्पर समन्वय का अभाव है। वस्तु स्थिति यह है कि आज भी कानून को लागू करने, संगठित आपराधिक तत्वों एवं समूहों की संलिप्तता तथा पीड़ितों के कष्टों के बीच परस्पर दूरी बहुत ज्यादा है, जो कि अति चिंतनीय है। यह एक कटु सत्य है, कि भारत इस व्यापार का एक प्रमुख स्रोत, आपूर्ति का मार्ग एव गंतव्य स्थान तीनों हैं, जहां हजारों की संख्या में स्त्रियों एवं बच्चों का प्रतिदिन भीषण शोषण हो रहा है।

इस व्यापार में पीड़ितों की आपूर्ति ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों में तथा गरीबी वाले इलाकों से अपेक्षाकृत सम्पन्न इलाकों में होती है। भारत से दूसरे देशों में पीड़ितों को मुख्यतया दिल्ली एवं मुम्बई के रास्ते भेजा जाता है। अध्ययनों के अनुसार उत्तर प्रदेश, राजस्थान, आन्ध्र प्रदेश, बिहार, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र आदि राज्यों से इन पीड़ितों को बड़े शहरों में लाया जाता है। अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर यह व्यापार बंगलादेश, नेपाल तथा सोवियत संघ से अलग होकर बने गणराज्यों से होता है।

मानव दुर्व्यापार भारतीय संविधान के अनुच्छेद 23 के अन्तर्गत प्रतिबंधित है। जहां तक कानून विशेष का प्रश्न है, तो इस संबंध में पूर्व में सप्रेशन ऑफ दी इम्मोरल ट्रेफिक एक्ट, 1956 लागू हुआ, तदुपरान्त इसमें संशोधन हुए, एवं इसका नया रूप इम्मोरल ट्रेफिक (प्रिवेंशन) एक्ट, 1986 हमारे देश में लागू किया गया। मानव दुर्व्यापार पर नियंत्रण हेतु भारत सरकार का गृह मंत्रालय, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, राष्ट्रीय महिला आयोग एवं राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण संगठन (नाको) प्रयत्नशील हैं, वहीं गैर सरकारी संगठन भी अपने–अपने स्तर पर इस विभीषिका से लड़ रहे हैं एवं जूझ रहे हैं।

मानव दुर्व्यापार जैसी त्रासदी के समाधान हेतु कानून को और प्रभावी व मजबूत बनाना होगा। इस हेतु प्रयास यह होने चाहिए कि पीड़ित को न्याय, वह भी त्वरित न्याय मिले, उसका प्रभावी ढ़ंग से पुनर्वास हो, जो कि महज कागजी दिखावा मात्र नहीं होना चाहिए, अपितु पीड़ित को स्वावलंबी बनाकर उसके स्थायी पुनर्वास को सुनिश्चित करना चाहिए। मानव दुर्व्यापार में मात्र गुमशुदगी की रिर्पोट दर्ज करने या इटपा की कानूनी खानापूर्ति से काम नहीं चलेगा। इस त्रासदी से निपटने हेतु व्यापक एवं प्रभावी कार्य योजना को लागू करना अति आवश्यक है। यथासंभव भारतीय दंड संहिता (आई0पी0सी0)

की संबंधित धाराओं एवं जुवेनाईल (केयर एवं प्रोटेक्सन) एक्ट को भी प्रभावी ढंग से प्रयोग में लाने की आवश्यकता आज के समय की मांग है।

जबरन बेगार से लड़ने हेतु बंधुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) एक्ट के बारे में व्यापक जागरूकता उत्पन्न करने तथा सरकारी तंत्र को इस बारे में सक्रिय करने की आवश्यकता है। इसके साथ ही पड़ोसी राष्ट्रों की सरकारों के मध्य मानव दुर्व्यापार के उन्मूलन हेतु संयुक्त कार्य योजना तैयार करने की भी आवश्यकता है, जिससे कि इस त्रासदी से डटकर मुकाबला किया जा सके। इस दिशा में दक्षिण एशिया में विभिन्न राष्ट्रों के राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग आपसी समन्वय एवं पर्यवेक्षण के द्वारा पहल कर सकते हैं।

भारत के राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग को बंधुआ मजदूरी प्रथा के उन्मूलन हेतु भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने अधिकृत किया है। आयोग ने इस दिशा में सराहनीय कार्य करते हुए बंधुआ मजदूरी से त्रस्त विभिन्न पीड़ितों को अपनी स्वयं की जांच के आधार पर विगत वर्षों में मुक्ति प्रमाणपत्र जारी करवा कर उनका पुनर्वास भी सुनिश्चित करवाया है। इसी प्रकार यौन शोषण के विभिन्न प्रकरणों में विशेषतः गोंडा के सर्कस केस में आयोग ने प्रभावी भूमिका का निर्वहन करते हुए दोषियों को कानून के हवाले करवाकर तथा पीड़ितों को मुक्ति व न्याय दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। आयोग के द्वारा मानव दुर्व्यापार के विभिन्न प्रकरणों में सकारात्मक कदम उठाने से देश में इस विषय के प्रति जागरूकता एवं संवेदना का विकास हुआ है। आयोग द्वारा प्रायोजित विभिन्न कार्यशालायें एवं प्रशिक्षण कार्यक्रम इस दिशा में मील का पत्थर साबित हुए हैं। मानव दुर्व्यापार एक ऐसी त्रासदी है, जिसके उन्मूलन हेतु सरकार एवं समाज के विभिन्न अंगों को मिलकर लड़ना होगा, एकजुटता के साथ मुकाबला करना होगा। यह समस्त मानव समाज के सामने मूलभूत मानव अधिकारों को स्थापित करने की चुनौती है, जिसे हम सभी को स्वीकार करके, एक सार्थक पहल करनी होगी।

मानवाधिकार संरक्षण : भारतीय संस्कृति की वैचारिक परम्परा

* शिवराज सिंह रावत 'निःसंग'

भारतीय संस्कृति की वैचारिक परम्परा में मानव अधिकार एक मुख्य विषय रहा है। ऋग्वेद से लेकर वैदिक तथा पुराण काल में भारतीय सांस्कृतिक परंपरा पर रचित ग्रंथों में सामाजिक नियमों पर विस्तार से चर्चा मिलती है। इसका कारण है कि ये नियम प्राथमिक रूप से धार्मिक प्रकृति में थे और मानव अपने बदलते स्वभाव के कारण एवं अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए उन्हें अपनी इच्छानुसार उनमें बदलाव करता रहा। यही कारण है कि मानव अधिकार हनन की घटना हर युग में होती रही है। रामायण काल और महाभारत काल में भी मानव अधिकारों के हनन की और विशेष रूप से स्त्री अधिकारों के हनन के उदाहरण मिलते हैं। वेदों में स्वतंत्रता के लिए युद्ध को भी उचित ठहराया गया है क्योंकि परतंत्रता व्यक्ति के अधिकारों का सबसे बड़ा हनन है। इस प्रकार मानव अधिकार हनन की इस प्रवृत्ति को रोकने के लिए वैदिक काल से ही प्रयास होते रहे हैं और आधुनिक युग में भी इस दिशा में प्रयास मानव अधिकार उद्घोषणाओं के रूप में हुआ है।

ऋग्वेदीय संदेश की ऋचा 3/8/5 का संवाद है कि, 'जिस व्यक्ति ने जन्म लिया है वह जीवन को सुन्दर बनाने के लिए उत्पन्न हुआ है। वह जीवन–संग्राम में लक्ष्य साधन के लिए अध्यवसाय करता है।'

जातो जायते सुदिनत्वे अह्नां समर्य अ विदथे वर्धमानः।
पुनन्ति धीरा अपसो मनीषा देवया विप्र उदयर्चि वाचम।।
(ऋक् 3/8/5)

यह भी सत्य है कि एक सामाजिक प्राणी होने से मनुष्य ज्यों–ज्यों समाज से जुड़ता जाता है, उसके जीवन की महत्वाकाक्षाएँ भी उसी अनुपात में बढ़ती जाती हैं।

* जनपदीय अध्यक्ष, मानवाधिकार संगठन, चमोली, गोपेश्वर (उत्तराखंड)

सामाजिक व्यवस्था उसे बन्धनों में कसने के लिए विवश हो जाती है। प्राचीन राजनीतिक विचारों के ज्ञाता प्रोफेसर हॉब्स ने भी यह विचार व्यक्त किया कि, 'मनुष्य जन्म से स्वतंत्र होता है किन्तु वह हर जगह बन्धनों में बँधा हुआ है।' समाज के प्रत्येक व्यक्ति पर यह चरितार्थ होने वाला है। यह बात इसलिए भी सत्य है कि समाज में बलिष्ठ व्यक्ति का शारीरिक व मानसिक विकास जिस स्तर पर होने लगता है, निर्बल व्यक्ति का जीवन–मूल्य उसी स्तर पर गिरने लगता है। बस यहीं से समाज बलिष्ठ और निर्बल वर्ग में बँट जाता है। बलिष्ठ की महत्वाकांक्षा बढ़ती जाती है और निर्बल का जीवन स्तर घटकर दलित वर्ग में गिर जाता है। यहीं से उसका उत्पीड़न आरम्भ हो जाता है। ऋग्वेद के दानस्तुति सूक्त की आठवीं ऋचा भी एक प्रहेलिका की तरह ऐसे वाक्य विन्यास के साथ मानव–मन की महत्वाकांक्षा की ओर संकेत करती है कि, 'जिसके पास एक अंश सम्पत्ति है, वह दो अंश सम्पत्ति की कामना करता है। दो अंश सम्पति वाला तीन अंश धनवाले के पास जाता है और चार अंश वाला उससे अधिक धन वाले के पास जाता है।' तात्पर्य यह है कि अल्प धनी, अधिक धनी बनने की कामना करता है। कामना की इस दौड़ में जो पीछे छूट गया, वह पीछे ही छूटता जाता है और शोषण का शिकार बन जाता है। इसी सूक्त की अन्तिम ऋचा में मानव एवं मानव स्वभाव की असमानता की ओर संकेत दिया गया है। वहाँ कहा गया है कि हमारे दोनों हाथ देखने में समान है किन्तु उनका कार्य भिन्न है। एक ही माता से उत्पन्न दो गायें समान दूध नहीं देती। दो यमज भ्राता होने पर भी उनका पराक्रम समान नहीं होता। एक ही कुल में दो व्यक्ति उत्पन्न होने पर भी वे समान उदार या दयालु नहीं होते :–

एक पाद्भूयो द्विपदो वि चक्रमे द्विपात् त्रिपादयभ्येति पश्चात्।
चतुष्पादेति द्विपदामभिस्वरे संपश्यत् पङ्.तीरुपतिष्ठमानः।।
समौ चिद्धस्तौ न समंविविष्टः संयातरा चिन्न समंदुहाते।
यमयोश्चिवन्न समा वीर्याणि ज्ञाती चित् सन्तौ न समं पृणीतः।।
(ऋक्0 10/117/8–9)

समाज की इन विकृताओं में सन्तुलन बनाए रखने के लिए वैदिक कालीन भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में शास्त्रों की रचना की गई। 'शास्ति अनेनेति' व्युत्पत्ति के अनुसार जिन नियमों से राज शासन चलता है, उन नियमों के ग्रंथों को भी 'शास्त्र' कहते हैं। शास्त्र और शासक ये दोनों शब्द एक हैं जो शास् धातु से बने हैं। वैदिक तथा पुराण काल में इन्हीं शास्त्रों के नियमों के अनुसार मानव समाज शासित होता रहा है जिनके द्वारा मानवाधिकारों की रक्षा प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों रूपों में होती थी। कहना पड़ेगा कि वैदिक काल से ही मनुष्य सामाजिक बन्धनों में बंध गया था। उन बन्धनों का स्वरूप धार्मिक रहा है जिनका पालन करना मानव स्वभाव बन गया था। धार्मिक तथा सामाजिक नियमों का स्वाभाविक रूप से आत्मसात् होने पर भी मानव प्रवृत्ति में कई बदलाव आ जाते हैं। कारण कि संपूर्ण संसार काल की गति से चल रहा है। यही प्रकृत्ति का नियम भी है, जिसे कोई बदल नहीं सकता। आश्चर्य की बात है कि बुद्धि, विवेक और तर्क

की विवेकिनी शक्ति होने पर भी मानव जैसा श्रेष्ठ प्राणी, अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए मन की सोच तक बदल देता है और मानव से दानव बनने में देर नहीं करता। यही कारण है कि मानव अधिकार हनन की घटना हर युग में होती रही है। 'फिर भी मानवतावादी विचारधारा का, अतिवादी विचारधारा से हर युग में संघर्ष होता रहा है।'

रामायणकाल में रावण द्वारा जनक नन्दिनी जानकी का हरण उस काल की अद्वितीय घटना रही है। इस निन्दनीय घटना को रोकने में गिद्धराज जटायु को अपने प्राण देने पड़े थे। महाभारत काल में कौरवों और पाण्डवों की भरी सभा में दुःशासन का द्रोपदी के केशों को पकड़ कर घसीसटे हुए सभा में लाना और वस्त्र उतारने का दुःसाहस करना उस काल के इतिहास में नारी अपमान की सबसे बड़ी निन्दनीय घटना थी – **'अग्रे कुरूवामथ पाण्डवानां, दुःशासनेवाहृत वस्त्रकेशा'** जैसी हृदय–विदारक घटना को रोकने के लिए श्रीकृष्ण चन्द्र जैसे अवतारी पुरुष ने परोक्ष रूप में नारी की लाज बचाई थी।

मानवाधिकार हनन की इस प्रवृति को रोकने के लिए वैदिक काल से ही प्रयास होते रहे हैं। सबकी भलाई एवं कल्याण के लिए प्रार्थनाएँ होने लगी थीं और कहा गया कि उच्चता को पहुँचाने वाले शुभ कर्म, चारों ओर से हमारे पास आएं और सुरक्षा का आश्वासन तथा देवों की उदारता हमें प्राप्त हो –

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो
अपरीतास उम्दिदः।
देवा नो यथा सद्रमिद् वृधे असन्नप्रायुवो
रक्षितारो दिवेदिवे।।
(ऋक्0 1/89/1)

देवों से प्रार्थना की गयी कि सभी प्राणी मित्रभाव से रहें। दैवीय शक्ति ने भी प्राणिमात्र के लिए उपदेश किया और कहा कि, 'मैं सभी प्राणियों को मित्रभाव से देखता हूँ –**'मित्रस्याहँ चक्षुसा सर्वाणिभूतानि समीक्षे।'** (शुक्ल यजुर्वेद 36/18)। किन्तु मानव कहाँ समझने वाला था, वह तो निर्बलों को पीड़ित करने में ही अपने ऐश्वर्य का भोक्ता बनता जा रहा था। उसका आत्मज्ञान इतना समृद्ध नहीं हो पाया था कि वह समझ सके कि संसार रूपी बाग में हर फूल की अपनी महक है किन्तु बाग को सींचने वाला माली एक ही है। ऐसा ज्ञान जाग्रत होने पर मानव इस संसार में स्वतंत्रतापूर्वक अपने अस्तित्व की रक्षा कर सकता है। समूचे अथर्ववेद में सामूहिक जीवन जीने की सलाह दी गयी है। जीवन का विकास और उसका क्रियान्वयन मनुष्य जीवन में ही हो सकता है। एक दूसरे से मिल जुलकर आपसी सौहार्द एवं सहयोग से कार्य करने की सलाह देते हुए तत्वद्रष्टा ऋषियों ने कहा कि –

अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि....।
मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि....।।
(अथर्व0 6/94/2)

इसी प्रकार संवेश्य राष्ट्र की अवधारणा को सुस्पष्ट करते हुए मंत्रद्रष्टा ऋषि ने कहा कि – **'अस्मभ्यं....वृहद्राष्ट्रं संवेश्य दधातु।'** **(अर्थव0 3/8/1)**। वेदों ने कुछ ऐसे शब्द–समुच्चय का उपयोग किया है, ताकि सभी मिलजुलकर रहते हुए एक दूसरे के अधिकार पृच्छा को समझने और उसकी मूल भावना की रक्षा करने में एक दूसरे के सहयोगी बन सकें। वेदों की यह अवधारणा रही है कि –**ज्यायस्वंतः** (वृद्धों का सम्मान), या **वियोष्ट** (परस्पर लड़ना नहीं); **सधुराचरंतः** (एक धुरा अर्थात् एक नेता के नेतृत्व में कार्य करना) इत्यादि। वेद में यह भी कहा गया है कि स्वतंत्रता के बिना परतंत्र बुद्धि कुछ नहीं कर सकती। अतः स्वतंत्रता के लिए यदि युद्ध भी करना पड़े, एतदर्थ शस्त्र–निर्माण भी करना पड़े तो कोई हर्ज नहीं। वेदों में देवताओं से प्रार्थना की गयी है कि वे मानव को अच्छे पुण्यमय सच्चरित मार्ग में जाने के लिए सावधान तथा प्रेरित करें; अपराध करते हुए मानव को ऐसा करने से बचाएँ तथा उनकी रक्षा करें –

उत देवां अवहितं देवां उन्नयथा पुनः।
उतागश्र क्रुषं देवा देवा जीवयथां पुनः।।
(ऋक् 10/137/1)

यजुर्वेद की सुक्तियाँ भी बड़ी स्पष्ट हैं। इनमें कहा गया है कि – **'वयं स्याम सुमतों' (11/21)**। अर्थात् हमें सद्बुद्धि प्रदान करो। **'विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्नातुरम्' (16/48)**। अर्थात् ग्राम के सभी प्राणी रोग–रहित और हृष्ट–पुष्ट हों। वेदों में मनुष्य मात्र को ही नहीं अपितु स्थावर–जंगम, जड़–चेतन रूप सारे संसार को अधिकार संरक्षण का उपदेश हुआ है –

औषधयो भूतमव्यमहोरात्रे वनस्पतिः।
संवत्सरः सहर्तुमिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः।
पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या ग्राम्याश्चये।
अपक्षाः पक्षिणश्र्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः।।
(अथर्व 11/5/20–21)

इन मंत्रों के अनुसार पशु–पक्षी आदि सभी अब तक वेदाज्ञा के अनुसार चलते हैं। मनुष्य उनसे बुद्धि में वैशिष्ट्य प्राप्त करने पर भी आवश्यक कर्तव्यों की अवहेलना करता है। इसी अवहेलना के कारण संसार दुःखी हुआ है। यही एक ऐसा कारण रहा है जिसकी वजह से मानव अधिकारों की सुरक्षा के लिए नियमों व कानूनों का बन्धन तैयार करने की आवश्यकता हुई। युगों के अनुभव की वाणी है कि संसार को मित्र दृष्टि से देखो किन्तु हरे राम, राम! मनुष्य कानून की लगाम के बिना, बिगड़ैल घोड़े की तरह, इस बात को समझ नहीं पाया।

मानवतावादी विचारों के सम्पोषक काउण्ट लियो टालस्टॉय ने मानव–प्रेम से

सम्बन्धित वेद की अनेक ऋचाओं का विशेष रूचि से अध्ययन किया और वेद की अनेक बातों को स्वीकार भी किया था।

मानववादी विचारधारा ने विश्व में लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली को जन्म देकर मानवाधिकार हनन के मामलों को रोकने की प्रतिबद्धता को स्वीकारा। मानवाधिकारों को कानूनी संरक्षण देने के लिए समस्त लोकतंत्रात्मक देशों में संविधान निर्माण की व्यवस्था की गयी। ब्रिटिश शासन काल की गुलामी से मुक्ति मिलने के बाद देश के कर्णधारों ने सबसे पहले देश के संविधान–निर्माण की व्यवस्था सोची। 26 जनवरी 1950 को लोकतंत्रात्मक गणराज्य की घोषणा होने पर संविधान लागू हुआ।

भारत का संविधान देश का मूल कानून है। इसके भाग–3 में मूल अधिकारों की व्याख्या है। हर व्यक्ति को पुलिस तथा अन्य शासकीय अभिकरणों द्वारा दुर्व्यवहार और यातना से सुरक्षा दी गयी है। उचित शिक्षा के अभाव में गरीब वर्ग, पिछड़ा तथा नारी वर्ग आज भी इन प्रदत अधिकारों को समझने में सक्षम नहीं हो पाया है। कानून ने इन्हें क्या–क्या अधिकार दिए हैं, इसकी जानकारी आज भी सामान्य वर्ग के लोगों को नहीं है। बालश्रम पर आज भी पूर्णतः प्रतिबन्ध नहीं लग सका है।

यद्यपि व्यक्ति के रहन–सहन, खान–पान, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक व धार्मिक स्तर में सुधार लाने के लिए संसद तथा विधान सभाएँ विपुल संख्या में कानून बनाती है किन्तु कानूनों का सही ढंग से पालन हो रहा है अथवा नहीं, इसकी जानकारी आम आदमी को नहीं होती। सबसे महत्वपूर्ण यह है कि समाज के जिन लोगों को कानूनी संरक्षण मिलना चाहिए, वे इन अधिकारों से अनभिज्ञ होते हैं। कानून ने उन्हें क्या–क्या अधिकार दिए हैं, उनका लाभ कैसे उठाया जाए, इसकी जानकारी पिछड़े वर्ग के लोगों को नहीं रहती। ऐसी स्थिति में यह वर्ग अधिकारों की सुरक्षा की बात सोच भी नहीं सकता। अस्तु जन सामान्य को कानून के प्रति जानकारी हो, इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए शिक्षा ही सबसे उत्तम माध्यम बन सकता है। इसी माध्यम से पिछड़े वर्ग के लोगों को अधिकार एवं दायित्वों का बोध हो सकता है।

मानव जाति के इतिहास में 10 दिसम्बर 1948 एक ऐतिहासिक दिन माना जाता है। इस दिन संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा द्वारा मानवाधिकार को अंगीकृत किया गया। सम्पूर्ण विश्व में यह दिवस 'मानवाधिकार दिवस' के रूप में मनाया जाता है। भारतीय संविधान के लागू होने के चालीसवें वर्ष में संसद द्वारा 'मानव अधिकार संरक्षण विधेयक' संसद के पटल पर लाया गया। यह विधेयक "राष्ट्रीय मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम (Protection of Human Rights Act)" 1993 के नाम से इसी वर्ष 28 सितम्बर को अस्तित्व में आया और "राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग (विधि) अधिनियम 1994" के रूप में 08 जनवरी 1994 से प्रक्रिया में आया।

मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 के अध्याय – I की धारा 2 उपधारा

(डी) में परिभाषित 'मानव अधिकार' से अभिप्राय संविधान द्वारा प्रत्याभूत (Graranteed) तथा अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदाओं (convenants) में सम्मिलित एवं भारत में न्यायालयों द्वारा प्रवृत व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता, समानता तथा वैयक्तिक जीवन से है। मानवाधिकारों की यह परिभाषा अत्यन्त व्यापक एवं विस्तृत है। इसका मूल लक्ष्य मानव जीवन और उसकी गरिमा को सुरक्षा प्रदान करना है। वस्तुतः ये वे अधिकार हैं जो हमारे संविधान द्वारा प्रदत्त हैं। संविधान के भाग–3 में ही मूल अधिकारों की व्याख्या है। भारतीय संविधान हर व्यक्ति को पुलिस व अन्य शासकीय अभिकरणों द्वारा किए जाने वाले दुर्व्यवहार तथा यातना से सुरक्षा की गारण्टी देता है। संविधान के भाग–3 अनुच्छेद 12 एवं 13 में समता का, अनुच्छेद 14 से 18 में स्वतंत्रता का, अनुच्छेद 19 से 22 में अपराधों के लिए दोषसिद्ध के विरुद्ध अपनी बात रखने, अनुच्छेद 20 में अपराधों के लिए दोषसिद्ध के विरुद्ध संरक्षण व बचाव का अनुच्छेद 21 में प्राण रक्षा और शारीरिक स्वतंत्रता का, अनुच्छेद 22 में गिरफ्तारी या अवरोध (Arrest and detention) के विरुद्ध संरक्षण पाने का, अनुच्छेद 23 से 24 में बालश्रम आदि शोषण के विरुद्ध संरक्षण पाने का, अनुच्छेद 25 से 28 में धर्म की तथा इससे संबंधित शैक्षणिक संस्थाओं की स्वतंत्रता का, अनुच्छेद 29 से 31 में सांस्कृतिक एवं शैक्षिक स्वतंत्रता का अधिकार प्राप्त है। इन अधिकारों की सुरक्षा के लिए, यदि आवश्यक हुआ तो, सीधे उच्च न्यायालय अथवा उच्चतम न्यायालय में जाया जा सकता है।

(टिप्पणी :– संविधान के चौवालीसवें संशोधन अधिनियम 1978 द्वारा मूल अधिकारों के अनुच्छेद 19 की उपधारा (एफ) को हटाकर संविधान के अनुच्छेद 300 ए में समाहित कर दिया गया है। उक्त संशोधन अधिनियम के द्वारा अनुच्छेद 22 की धारा 4 को स्थानापन्न (substituted) कर दिया गया है तथा धारा 7 की उपधारा (ए) को हटाते हुए उपधारा (बी) को (ए) और उपधारा (सी) को (बी) कर दिया गया है।)

उपर्युक्त के अतिरिक्त न्यायालयों द्वारा समय–समय पर राज्य की नीति के कतिपय निदेशक तत्वों को भी मूल एवं मानव अधिकारों के समतुल्य माना गया है। इनका समावेश संविधान के भाग–4 में किया गया है। वस्तुतः राज्य को कल्याणकारी स्वरूप प्रदान करने वाले ये ही तत्व हैं जो सामाजिक न्याय, सुरक्षा, समाज कल्याण, अन्तरराष्ट्रीय शान्ति तथा मैत्री को सुनिश्चित करते हैं। मानवाधिकारों का वास्तविक स्वरूप भी इन्हीं तत्वों में परिलक्षित होता है। यद्यपि संविधान के भाग–3 अनुच्छेद 19 से 22 के अनुसार अभियुक्त को स्वयं अपने अपराध के विरुद्ध साक्ष्य देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता तथापि हिरासत में बढ़ती हिंसा की घटनाओं को देखते हुए, देश की सबसे बड़ी अदालत (उच्चतम न्यायालय) ने पुलिस प्रशासन व सरकार के कुछ अन्य विभागों को कुछ निर्देश दिए हैं। ये निर्देश किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने या हिरासत में रखने तथा पूछताछ से सम्बन्धित हैं :–

(1) किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने अथवा पूछताछ करने आए पुलिस कर्मियों को

सही व स्पष्ट दिखाई देने वाला पहचान चिह्न और नाम पट्टी लगाना आवश्यक है।

(2) गिरफ्तार व्यक्ति की पूछताछ कर रहे पुलिस कर्मी को उनका ब्योरा एक पंजी में दर्ज करना आवश्यक है। गिरफ्तार करते समय गिरफ्तारी–ज्ञापन (Memo of Arrest) बनाना आवश्यक है। इस पर कम–से–कम एक गवाह के हस्ताक्षर होने चाहिए। गवाह या तो परिवार में से हो अथवा उस क्षेत्र का कोई जाना–माना व्यक्ति हो। गिरफ्तार किए गए व्यक्ति के हस्ताक्षर भी होने चाहिए। गिरफ्तारी की तिथि व समय भी दर्ज होना चाहिए।

(3) गिरफ्तार व पूछताछ के लिए किसी भी प्रकार की हिरासत में रखे हुए व्यक्ति को हक है कि उसके किसी शुभ चिंतक, परिवार के सदस्य, मित्र या अन्य पहचान वाले को तुरन्त सूचना दी जाए कि उसे गिरफ्तार किया गया है और अमुक स्थान पर रखा गया है। यदि ऐसा व्यक्ति वही है जिसने मेमों पर हस्ताक्षर किए हैं तो अलग से सूचना देने की आवश्कता नहीं होती।

(4) यदि गिरफ्तार व्यक्ति के परिवार के सदस्य या मित्र उस गाँव या जिले से बाहर रहते हैं तो यह सूचना 8 से 12 घण्टे के भीतर तार से या दूरभाष से भेजी जानी चाहिए। यह सूचना जिला कानूनी सहायता केन्द्र और संबंधित थाना द्वारा दी जाएगी।

(5) गिरफ्तारी के समय गिरफ्तार व्यक्ति को यह बताना आवश्यक है कि उसे अपनी गिरफ्तारी के बारे में किसी को सूचना भिजवाने का अधिकार है।

(6) जिस जगह गिरफ्तार व्यक्ति को रखा जाएगा वहाँ उसका नाम व सूचित किए गए व्यक्ति का नाम इत्यादि रोजनामचा (डायरी) में दर्ज होना चाहिए जिन पुलिस कर्मियों की हिरासत में उस व्यक्ति को रखा जा रहा है, उनके नाम व अन्य जानकारी भी दर्ज होनी चाहिए।

(7) यदि गिरफ्तार व्यक्ति चाहे तो गिरफ्तारी के समय उसकी शारीरिक जाँच भी हो सकती है, यदि उसके शरीर पर छोटी या बड़ी चोटें हों तो उन्हें उसी समय दर्ज की जानी चाहिए। जाँच के बाद निरीक्षण मेमो पर गिरफ्तार व्यक्ति व गिरफ्तार करने वाले पुलिस कर्मी के हस्ताक्षर होने चाहिए। इस मेमो की एक प्रति (कापी) गिरफ्तार व्यक्ति को दी जानी चाहिए।

(8) हिरासत में रखने के बाद गिरफ्तार व्यक्ति की हर 48 घण्टों में डॉक्टरी जाँच होनी चाहिए। जाँच करने वाला डॉक्टर राज्य के स्वास्थ्य निदेशक (Director of health service) द्वारा चयनित पैनल का होना चाहिए।

(9) गिरफ्तारी के बाद गिरफ्तारी–ज्ञापन (Arrest of Memo) इत्यादि सभी दस्तावेजों

की प्रतियाँ इलाका मजिस्ट्रेट को भेजी जानी चाहिए जहाँ ये अभिलेख के रूप में रखी जाएंगी।

(10) गिरफ्तार व्यक्ति को हक है कि वह पूछताछ के दौरान अपने वकील को मिले।

(11) राज्य के हर जिले व राज्य के प्रमुख कार्यालयों में जहाँ नियंत्रण कक्ष (Control Room) का प्रावधान होता है, गिरफ्तारी के 12 घंटों के भीतर, सूचना दी जानी चाहिए। यह सूचना वहाँ किसी साफ दिखने वाले सूचना पट पर चिपकी होनी चाहिए। थाने में ये निर्देश स्पष्ट रूप से प्रदर्शित होना अनिवार्य समझा जाना चाहिए।

(टिप्पणी :– उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित ये निर्देश प्रत्येक राज्य के गृह सचिव एवं पुलिस महानिदेशक को भेजे गए हैं। इन निर्देशों का पालन न करने का अर्थ होगा उच्चतम न्यायालय की अवमानना। ऐसा होने पर इसकी शिकायत राज्य के उच्च न्यायालय में की जा सकती है।)

गिरफ्तार व्यक्ति के अन्य अधिकारों के साथ–साथ यह भी जरूरी है कि:–

(अ) गिरफ्तारी के समय अपराध बताया जाए;

(ब) गिरफ्तारी के समय जोर जबरदस्ती न की जाए;

(स) गिरफ्तारी के 24 घण्टे के अन्दर गिरफ्तार व्यक्ति को मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया जाए;

(द) हिरासत में किसी तरह की बदसलूकी न की जाए;

(य) हिरासत में, अपराध कबूल करने के लिए दिया गया बयान अदालत में मान्य नहीं होता है;

(र) महिला और 15 साल से कम उम्र के बालक को केवल पूछताछ के लिए थाने में नहीं ले जाया जा सकता है।

उन समस्त गरीब, दलित, पिछड़े वर्ग के लोगों, अनजान महिलाओं तथा उन असहाय एवं निराश्रित बालकों (जिनसे बलात् श्रम कराया जाता है) को मूल अधिकारों की जानकारी कैसे हो सके तथा उनके अधिकारों की रक्षा के उपाय कैसे सुलझाए जा सकें, इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए भारतीय संविधान के तहत राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की स्थापना की गयी है। अपने स्थापना काल से लेकर आज तक आयोग ने कई उलझी हुई समस्याओं को सुलझाते हुए महत्वपूर्ण निर्णय लिए हैं जिनके कतिपय उद्धरण "मानवाधिकारः नई दिशाएँ" नामक पत्रिका के पिछले अंकों में पुष्टि के रूप में प्रकाशित हुए हैं। इस दिशा में अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकार संगठन का गठन किया गया है। भारत में भी संविधान के नियमों का पालन करते हुए अखिल

भारतीय मानवाधिकार संगठन का गठन किया गया है :–

अखिल भारतीय मानवाधिकार संगठन और उसका उद्देश्य :–

अखिल भारतीय मानवाधिकार संगठन का मूल उद्देश्य मानव अधिकारों को संरक्षण देना है। संविधान की सीमा के भीतर रहते हुए संगठन की लड़ाई मानवाधिकारों की रक्षा और देश के हित के लिए है। सीमान्त प्रहरी की तरह यह संगठन समाज के निर्बल वर्गों के अधिकारों की रक्षा के लिए कार्य करता है। संगठन के मूल उद्देश्य इस प्रकार हैं :–

(1) विधि द्वारा संरक्षित और संविधान द्वारा परिभाषित मानव अधिकारों के वास्तविक संदर्भों में संरक्षण देने हेतु संघर्ष करता है। उद्देश्यों की पूर्ति के लिए यह संगठन, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, केन्द्र तथा राज्य सरकार के बीच, सेतु के रूप में कार्य करता है।

(2) मानवाधिकार हनन के दोषियों या इस सिलसिले में लापरवाही बरतने वालों के विरुद्ध शिकायतों का निराकरण कराना तथा अधिकार हनन के मामलों को रोकने का हर सम्भव प्रयास करना।

(3) मानवाधिकार आयोग, महिला आयोग, अल्पसंख्यक आयोग, तथा बाल मानवाधिकारों से जुड़े और प्राधिकृत इसी तरह के अन्य आयोगों, संस्थाओं और संगठनों तक मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 के किसी भी तरह के उल्लंघन होने की दशा में शिकायत पहुँचाना, उनका निराकरण कराना, न्याय न मिलने पर ऐसे मामलों को न्यायालय तक ले जाना और निर्णीत स्तर तक पहुँचाने के लिए संघर्ष करना है तथा बाल–श्रम उन्मूलन के लिए संघर्ष करना है।

(4) संविधान तथा विधि द्वारा प्रदत्त मानव अधिकार संरक्षण उपायों की समीक्षा करना। इसके लिए परिसंवादन–आन्दोलन का आयोजन, पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशन तथा पुस्तक प्रकाशन, स्मारिका प्रकाशन तथा लेखन आदि जन–जागरण के विविध कार्यक्रमों का आयोजन करना तथा प्रभावी क्रियान्वयन पर सुझाव आमंत्रित करना।

(5) मानवाधिकार संरक्षण की मूल भावना के अनुरूप शासकीय, अर्धशासकीय आदि सामाजिक संस्थानों की निगरानी व उनका निरीक्षण करना, सुधार गृहों, चिकित्सा संस्थानों, सरकारी कार्यक्रमों के क्रियान्वयन की निगरानी तथा निरीक्षण व उनके सुझावों का संकलन।

(6) राष्ट्रीयता व राष्ट्रीय हितों की अनदेखी तथा आतंकवाद के विरुद्ध राष्ट्रीय जन जागरण का शंखनाद करना। संगठन की दृष्टि में राष्ट्रीय हित, मानवाधिकारों की अपेक्षा कहीं अधिक सर्वोच्च एवं सम्पोषणीय है।

(7) मानवाधिकारों पर वृहद अनुसंधानिक कार्य, सक्रिय सहभागिता एवं इसके लिए प्रोत्साहन देने का कार्य।

(8) मानवाधिकारों के परिप्रेक्ष्य में शैक्षणिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक कार्यक्रमों का आयोजन करना। पर्यावरणीय तथा वानस्पतिक क्षेत्रों से जुड़े लोगों, कृषकों तथा सुदूर ग्राम्य जीवन से जुड़े अंतिम व्यक्ति के अधिकारों का संरक्षण, निरीक्षण तथा इनके प्रति जागरण अभियानों का संचालन करना।

(9) मानवाधिकारों के परिपेक्ष्य में शासन द्वारा संचालित योजनाओं का क्रियान्वयन तथा इनके लिए प्रदत्त अनुदानों, सहयोगी राशियों के कार्यक्रमों की सफलता के प्रयास में योगदान।

अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर यह संगठन कार्य कर ही रहा है, साथ ही भारत में यह संगठन प्रान्तीय तथा जनपदीय स्तर पर भी कार्य कर रहा है। उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, राजस्थान, तमिलनाडू, असम, पश्चिमी बंगाल, बिहार, हरियाणा, महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, उड़ीसा आदि सभी संघीय राज्यों के विभिन्न जनपदों, शहरों में यह संगठन सराहनीय कार्य कर रहा है। उत्तराखंड के जनपद चमोली तथा रुद्रप्रयाग में इस संगठन की स्थापना डॉ0 शिवदत्त शर्मा, प्रान्तीय अध्यक्ष उत्तरांचल (प्रान्तीय कार्यालय अल्मोड़ा) की अधिसूचना के तहत 19 मार्च 2004 में हुई हैं। तब से आज तक इस दिशा में जितने भी कार्य हुए हैं, उनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है :–

क्रम सं0	मामले का विवरण	संदर्भ	किसको सन्दर्भित है	परिणाम
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
1.	हेलंग ग्राम में नियुक्त शिक्षिका विमला नेगी का झुलसा हुआ मृत शरीर जो स्नान घर में मिला, की जाँच का मामला	सं0 9–4/मा0 अ0 स0 /05 दिनांक 10.01.05	(1) माननीय अध्यक्ष, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, नई दिल्ली (2) पुलिस महानिदेशक देहरादून (3) जिला अधिकारी व पुलिस अधीक्षक, चमोली	पुलिस उपमहानिरीक्षक एवं कानून व्यवस्था उत्तराखंड के पत्रांक डी.जी.–5–09 दिनांक 24–1–2004 के तहत पुलिस अधीक्षक चमोली को मामले की जाँच के आदेश। अपराधी पकड़ा गया।
2.	गुमशुदा श्रीमती पुष्पा देवी ग्राम–गंजाई की जाँच बाबत	सं0 15–5/मा0 अ0/05 दिनांक 01.03.05	1. माननीय अध्यक्ष राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, नई दिल्ली	आयोग में दर्ज केस सं0 40/35/2005–2006–wc/uc दिनांक 13.04.05

			2. अन्यों को	के तहत जिला मजिस्ट्रेट को जाँच आख्या हेतु नोटिस।
3.	रहस्यमय ढंग से 9 वर्षीय बालक सरजु ग्राम–देवर कण्डेरी पोस्ट–पाक्षों सैकोट का 07 मार्च 04 से लापता की जाँच बाबत	सं0 15–61 या अ0 105 दिनांक 01.03.05	(1) माननीय अध्यक्ष राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, नई दिल्ली। (2) अन्यों की।	पुलिस द्वारा पंजाब तक के समाचार पत्रों में सूचना जारी की गयी। मामला अभी भी अनिर्णीत
4.	जिला अस्पताल गोपेश्वर का दौरा	स0 15–11 / मा0अ0 / 05 दिनांक 15.11.05	(1) माननीय अध्यक्ष मानव अधिकार आयोग, नई दिल्ली (2) माननीय स्वास्थ्य एवं चिकित्सा मंत्री उत्तराखंड (3) जिला अधिकारी चमोली (4) मुख्य चिकित्सा अधीक्षक जिला अस्पताल गोपेश्वर	(1) आयोग में दर्ज केस 1156 / 35 / 2005–2006 / ओ सी दिनांक 10 दिसम्बर 05। अधिनियम की धारा 36 तथा संशोधित धारा 9 के अन्तर्गत न आने से अंगीकृत नहीं किया गया। (2) औषधि वितरण में सुधार आया। (3) मरीजों की भोजन व्यवस्था में सुधार आया। (4) स्वच्छता एवं सफाई में सुधार आया। (5) पैथालॉजिस्ट की नियुक्ति हुई तथा कतिपय रिक्त पदों पर नियुक्ति हुई।
5.	हिरासत में विचाराधीन 25 वर्षीय जय कृत सिहं पुत्र श्री शुक सिंह ग्राम–वणद्वारा पोस्ट–वैरागणा चमोली की	स0 15–61 मा0 अ / 2006 दिनांक 03.01.06	(1) माननीय अध्यक्ष राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, नई दिल्ली (2) जिला अधिकारी चमोली (3) पुलिस अधीक्षक	(1) सहायक रजिस्ट्रार केस सं0 1473 / 35 / 2005–2006 / oc दिनांक 22.02.2006 के तहत मामले की प्रति पुलिस अधीक्षक चमोली

	आकस्मिक मृत्यु पर जाँच तथा परिजनों को क्षतिपूरक दिलाने बाबत्		चमोली (4) डॉ0 एस. डी. शर्मा प्रांतीय अध्यक्ष उत्तराखंड	को भेजी गयी। (2) प्रान्तीय अध्यक्ष द्वारा शिकायत कर्ता श्री शुक सिंह रावत के पत्र का अपने पत्रांक शिकायत /
	मृतक के पिता का प्रार्थना पत्र का पुनः प्रेषण	अनुस्मारक 15–2/ मा0 अ0/06 दिनांक 7.2.06 संख्या 15–2/ मा0अ0/06 दिनांक 14.7.06	(1) प्रमुख सचिव गृह एवं कारागार उत्तराखंड सरकार (2) मा0 अध्यक्ष राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, नई दिल्ली (3) डॉ0 शिवदत्त शर्मा, प्रान्तीय अध्यक्ष अल्मोड़ा	2006 दिनांक 25.07.06 के तहत माननीय अध्यक्ष मानवाधिकार आयोग को भेजी गयी। (3) जिला अधिकारी चमोली के पत्रांक 1315/बीस–06 (2005 –2006) दिनांक 19/20 दिसम्बर 2006 के तहत
		सं0 15–11/ मा0अ0/06 दिनांक 22.12.06	(1) मा0 अध्यक्ष राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, नई दिल्ली (2) डॉ0 एस. डी. शर्मा प्रान्तीय अध्यक्ष उत्तराखंड।	वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग को मृतक जयकृत सिंह से संबंधित मजिस्टेरियल जाँच, मेडिकल रिपोर्ट, एफ. आई.आर. जी.डी. नकल पंचायतनामा, पोस्ट मार्टम रिर्पोट का प्रेषण किया गया।
6.	मानवाधिकार दिवस 10 दिसम्बर 2005 के अवसर पर जिला बन्दीगृह पुरसाड़ी चमोली की स्थिति का अध्ययन हेतु दौरा। कैदियों की समस्याओं के विषय में पूछताछ, उनके रहन–सहन, शौचालय, चिकित्सा स्वास्थ्य, भोजन	सं0 15–2/ मा0अ0/2005 दिनांक 15.12.05 के तहत रिपोर्ट को प्रेषण	(1) मा0 अध्यक्ष राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, नई दिल्ली (2) डॉ0 एस. डी. शर्मा प्रान्तीय अध्यक्ष उत्तराखंड अल्मोड़ा (3) जिला अधिकारी चमोली (4) प्रेस नोट	(1) माननीय अध्यक्ष द्वारा अपने पत्र दि0 22.12.2005 के तहत मा0 अध्यक्ष राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, नई दिल्ली के इस निवेदन के साथ रिपोर्ट की प्रति प्रेषित कि वे खामियों को दूर करने हेतु उत्तरांचल सरकार को निर्देशित करें।

	व्यवस्था का अध्ययन। लंगर तथा कैदियों की शिकायतों की जानकारी। 16 वर्षीय बाल कैदी से बातचीत। जिला अधिकारी को बाल गृह सुधार का सुझाव। कारागार भवन के अधूरे निर्माण से संबंधित कारणों की जानकारी। मानवाधिकार संबंधी दिशा निर्देशों की जानकारी			(2) मरीजों के रहन–सहन, खान–पान में सुधार आया। भोजन व्यवस्था के ठेकेदार को रुके हुए बिलों का भुगतान हुआ। (3) कारागार भवनों के अधूरे निर्माण एवं लंगर निर्माण हेतु धन का आबंटन किया गया।
7.	हिंसक वन्य जीव–जन्तुओं तथा हिरन आदि द्वारा किए जाने वाले जान–माल की हानि पर मुआवजे की प्रस्ताव संख्या – 6 व 7	स0 15–2/मा.अ. दिनांक 17.12.04	(1) मा0 अध्यक्ष राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, नई दिल्ली (2) मा0 गृह मंत्री भारत सरकार, नई दिल्ली (3) महामहिम राज्यपाल उत्तराखंड । (4) मा0 मुख्य मंत्री उत्तराखंड सरकार (5) जिला अधिकारी चमोली (6) अन्यों को	उत्तराखंड शासन के पत्रांक 2212/10.2.2005 दिनांक 28 जुलाई 2005 के तहत मुआवजे की धनराशि (अनुग्रह आर्थिक सहायता) की दर का निर्धारण किए जाने बाबत आदेश हुआ। शासन द्वारा जिला अधिकारियों तथा वनाधिकारियों को निर्देश दिए गए।
8.	वन्य जीव जन्तुओं द्वारा जान–माल के नुकसान पर शासन द्वारा स्वीकृत अनुग्रह (एक्स ग्रेशिया) आर्थिक	संख्या 15–3/ बैठक/ 2005 प्रस्ताव संख्या 2 तथा प्रस्ताव संख्या 3	(1) मा0 अध्यक्ष राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, नई दिल्ली द्वारा जिला अधिकारी चमोली (2) मा0 मुख्य मंत्री	अभी तक अनिर्णीत

	सहयोग की राशि बढ़ाए जाने का प्रस्ताव संख्या 2 दिनांक 21.10.2005 का प्रेषण (2) राज्य मानव अधिकार आयोग के संबंध में प्रस्ताव संख्या –3 दिनांक 21.10.2005		उत्तरांचल सरकार (3) डॉ0 एस0 डी0 शर्मा प्रान्तीय अध्यक्ष उत्तरांचल (4) जिला अधिकारी चमोली (5) समाचार पत्र	
9.	महिला उत्पीड़न– श्रीमती धानमती देवी बेवा स्व0 अवतार सिंह रावत ग्राम/पोस्ट–सेमा चमोली मानवाधिकार हनन (मारपीट) का मामला	स0 15–5/अ0मा0मा0अ0 संगठन/07 दिनांक 24.01.07	जिला अधिकारी चमोली को आवश्यक जाँच हेतु प्रेषित।	जिला प्रशासन द्वारा दोनों पक्षों की एफ.आई.आर. दर्ज की गयी।
10.	12 वर्षीय विषाल लाल पुत्र श्री सुरेन्द्र लाल (दलित वर्ग) ग्राम/पोस्ट–देवर खडोरा (गोपेश्वर) चमोली को दि0 18.12.06 की प्रातः 9.30 बजे स्कूल जाते समय बाघ द्वारा मारा जाना।	स0 15–5/अ0मा0मा0अ0 संगठन/2007 दिनांक 30.01.2007	(1) मा0 अध्यक्ष राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग फरीदकोट हाउस, कॉपरनिकस मार्ग, नई दिल्ली (संबंधित कागजातों की छाया प्रति सहित) (2) डॉ0 एस. डी. शर्मा प्रान्तीय अध्यक्ष अखिल भारतीय मानवाधिकार संगठन राधा निवास कोतली खत्याड़ी अल्मोड़ा	

उपर्युक्त मामलों के अलावा कुछ–कुछ ऐसे भी मामले संगठन की बैठक में लाये गए जिनका निराकरण जिला स्तर पर ही किया गया। इनमें से कई मामले आयोग के अभिलेखों में भी दर्ज हैं।

भारतीय संविधान में मूल अधिकारों को परिभाषित करने के साथ–साथ मूल कर्तव्यों का भी ज्ञान कराया गया है। कर्तव्यों का अनुपालन करने वाले नागरिक को वास्तव में चरित्र निर्माण तथा सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिलती है। गीता में भी श्री कृष्ण ने कर्तव्य कर्म की बात कही है। यद्यपि गीता का प्रधान लक्ष्य योग का ज्ञान देना ही रहा है तथापि इसमें कर्तव्य और ज्ञान दोनों विषयों का गहनता से निरूपण किया गया है। संविधान के भाग–4 अ में कर्तव्यों की राष्ट्रीय हित में व्याख्या की गई है। देश के प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि संविधान के भाग–4 अनुच्छेद–51 अ में जिन कर्तव्यों का निरूपण किया गया है, उनका कर्तव्य निष्ठा से पालन करे :–

(अ) संविधान व इसके आदर्शों का सम्मान एवं संस्थानों, राष्ट्रध्वज तथा राष्ट्र गान का आदर।

(व) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आन्दोलनों को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों का हृदय से पोषण और उनका अनुगमन।

(स) भारत की सम्प्रभुता, एकता और अखण्डता की रक्षा और उन्हें ऊँचा बनाए रखना।

(द) देश की रक्षा में सक्रिय भाग और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र सेवा के लिए समर्पित होना।

(य) धार्मिक, भाषाई और क्षेत्रीयता अथवा जातीय विविधता से ऊपर उठकर भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना भरना। स्त्री–सम्मान को आघात पहुँचाने वाली आदतों का परित्याग करना।

(र) हमारी समृद्ध एवं मिली–जुली संस्कृति की गौरवशाली परम्परा के महत्व को समझना और उनका परिरक्षण करना।

(ल) प्राकृतिक पर्यावरण, जिसके अन्तर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, उनका परिरक्षण एवं संवर्धन तथा प्राणि–मात्र के प्रति दयाभाव रखना।

(व) वैज्ञानिक प्रवृति का विकास, मानवतावाद और अनुसंधान तथा सुधार की भावना को बढ़ाना।

(श) सार्वजनिक सम्पति की सुरक्षा और हिंसा का त्याग करना।

(ष) व्यक्तिगत एवं सामूहिक गतिविधि के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास करना ताकि राष्ट्र निरन्तर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धियों की ऊँचाइयों को छू सके।

इस बात का उल्लेख करना भी अनुचित नहीं होगा कि मानवाधिकारों की घोषणा के 58 वर्षों बाद भी करोड़ों लोग मानव अधिकारों से वंचित हैं। करोड़ों लोग रोजी रोटी और मकान जैसी बुनियादी आवश्यकताओं के अधूरे स्वप्नों को देखकर इन मूल अधिकारों

से वंचित हैं। अरबों लोग आधुनिक चिकित्सा सुविधाओं से वंचित हैं। कई लोग शुद्ध पेय जल के अभाव में घेंघा (Goitre) तथा पाण्डुरोग कॉमला (Jaundice) जैसे रोगों के शिकार हो जाते हैं। दुनियाभर में करोड़ों बच्चे आज भी बाल–मजदूरी के शिकार हैं और शिक्षा के अधिकार से वंचित हैं। यद्यपि सरकार का ध्यान इस ओर अवश्य गया है किन्तु सर्वेक्षण में आज भी कमी रहती दिखाई देती है। करोड़ों महिलाओं का बहुत बड़ा भाग पारिवारिक पूर्ति के लिए शारीरिक एवं मानसिक श्रम में व्यस्त रहता है। भारत में करोड़ों लोग अधनंगे, भूखे तथा आसमान की खुली छत के नीचे उद्देश्यहीन जीवन बिता रहे हैं। यद्यपि समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करने, बाल–श्रम, महिला उत्पीड़न, श्रमिक शोषण, घूसखोरी तथा भ्रष्टाचार से मुक्ति दिलाने के लिए मानवाधिकार जैसे संगठनों का गठन किया जाता है किन्तु ऐसे संगठनों के साथ यदि शासन तथा प्रशासन का वांछित सहयोग न रहे तो अधिकारों से वंचित ऐसे लोगों के लिए मानव अधिकारों का महत्व ही क्या है। दलित, अशिक्षित, उपेक्षित तथा पिछड़े वर्ग के ग्रामीण लोग आज भी अभावों में जीवन यापन कर रहे हैं। आज भारत मानवाधिकारों की बात करता; इक्कीसवीं शताब्दी की बात करता है किन्तु सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में करोड़ों लोगों के जीवन का सवेरा 1947 से पूर्व के अँधेरे में भटक रहा है। समाज के ऐसे करोड़ों लोगों को यातायात के साधन, सस्ता खाद्यान्न, शुद्ध पेय जल, आवास, शिक्षा, विद्युत प्रकाश, स्वास्थ्य सुविधा, रोजगार के साधन आदि, बिना शर्त, जुटाने की आवश्यकता है। तब ही मानव–अधिकार–संरक्षण का उद्देश्य सार्थक होगा।

शुभम् भूयात्

"मानवाधिकार–वैश्विक संदर्भ में कर्तव्य"

* एस. के. सिंह
* मैथिली रमण प्रसाद सिंह

मानवाधिकार मूलतः मानव जाति को दिए या मिलने वाले अधिकारों से संबंधित है। प्राचीन भारतीय ग्रंथों में भी इनका प्रमाण मिलता है। अधिकार से उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों का शास्त्रकारों ने पूर्वानुमान कर लिया था और इसी कारण उन्होंने त्याग, तपस्या, सहयोग, परोपकार जैसे सद्गुणों के आधार पर अधिकार की अपेक्षा कर्तव्य को अति महत्वपूर्ण बताया। प्रत्येक व्यक्ति को सभी प्रकार के अधिकार देने के लिए अपने कर्तव्यों का उचित निर्वाह करना आवश्यक है। मानवीय संवेदना में आज निरंतर कमी आ रही है जिसे वैश्विक स्तर पर भी अनुभव किया जा रहा है। मानवाधिकारों के प्रति वैश्विक स्वीकृति को लुइस टेनकिन नामक विद्वान ने स्वीकार किया है। मानवाधिकारों का विकास और उसकी पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करने पर यह स्पष्ट होता है कि–"मानव अधिकार वे अधिकार हैं जो व्यक्ति को मानव होने के कारण प्राप्त हैं। इनका आधार मानव स्वभाव में ही निहित है।" मानवाधिकारों के प्रति सम्मान का भाव विकसित करने के लिए वैश्विक स्तर पर कर्तव्यों की व्याख्या करते समय प्राचीन भारतीय संदर्भ सदैव प्रासंगिक रहे हैं। समता और स्वतंत्रता को कायम रखना कर्तव्य होना चाहिए तथा मानवाधिकारों के संरक्षण हेतु धर्माचरण भी कर्तव्य होना चाहिए। वर्तमान व भावी जीवन के कर्तव्यों को उचित रूप से समझने तथा पालन करने के लिए इनकी शिक्षा देनी जरूरी है। वैश्विक स्तर पर कर्तव्य बोध को जागृत करने के लिए व्यक्ति के अस्तित्व की गरिमा का बोध कराया जाना चाहिए। साथ ही, समाज के सभी वर्गों का विकास जैसे कर्तव्य स्तर पर मानवाधिकारों की दशा बदलने में सक्षम हो सकते हैं। मानवाधिकारों के संरक्षण एवं संवर्धन के लिए सभी राष्ट्र सामूहिक सत्य मार्ग पर चलते हुए सामाजिक कल्याण के कर्मों में लग जाएं तो विश्व का संपूर्ण परिदृश्य ही बदल जाएगा और मानव की कल्पना साकार हो जाएगी।

बढ़ती प्रतिस्पर्धा एवं भौतिकता के कारण मानव को मानव कम तथा अन्य कुछ

* एस. के. सिंह – कार्यक्रम अधिशासी, दूरदर्शन केन्द्र, गोरखपुर (उ॰प्र॰)
* मैथिली रमण प्रसाद सिंह–प्रवक्ता, बी.एड., बी.आर. डी.पी.जी कॉलेज, देवरिया (उ॰प्र॰)

अधिक समझे जाने से मर्माहत पश्चिमी जगत में मानव को मिलने वाले अधिकारों के प्रति जो जागरूकता प्रदर्शित की जा रही है वह सर्वथा नवीन नहीं कही जा सकती। मानवाधिकार तो मूलतः मानव जाति को मिले अथवा दिये जाने वाले अधिकारों से संबंधित है जिसकी जड़ें बेबीलोन, असीरिया और प्राचीन यूनान तक फैली रही हैं। भारत में प्राचीन काल से मानवाधिकारों को महत्व मिलता रहा है। प्राचीन भारतीय ग्रंथों में वर्णित तत्संबंधी विषय इसका प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। अधिकार के अहंकार से उत्पन्न होने वाले संकटों का पूर्वानुमान करके शास्त्रकारों ने विनम्रता, सेवा, त्याग, तपस्या, सहयोग, परोपकार जैसे अनेक मानवीय सद्गुणों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया और अधिकार के स्थान पर कर्तव्य को अधिक महत्व प्रदान किया।

वास्तव में अधिकारों का दूसरा पक्ष कर्तव्यों से संबंधित है। सभी को सभी का अधिकार देने के लिए अपने कर्तव्यों का सम्यक् निर्वहन अत्यन्त आवश्यक है। आज सभी को उनके आवश्यक अधिकार न मिल पाने के कारण कर्तव्यों के प्रति बरती गयी उदासीनता है। भारत का संविधान अधिकारों के साथ कर्तव्यों की सम्यक् प्रस्तुति करता है जिसे व्यवहार में उतार लिया जाय तो अधिकारों की मानव के लिए उपलब्धता सुनिश्चित की जा सकेगी। अधिकारों की मांग के समानान्तर कर्तव्यों के प्रति तत्परता का प्रदर्शन आवश्यक है ताकि वंचितों को भी उनके अधिकार मिल सकें।

विश्व स्तर पर कर्तव्यबोध को जाग्रत करने के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति के अस्तित्व के प्रति गरिमा का बोध कराया जाय, **'सर्वे भवन्तु सुखिनः'** की संस्कृति आत्मसात कराई जाय, मानवतावादी विचारों एवं मूल्यों के प्रति समझ विकसित की जाय और उन स्थलों या तत्वों को पहचाना जाए जो मानव को उसके मानवीय अधिकार से वंचित करते हैं या उसे कर्तव्यों के प्रति अनुत्तरदायी अथवा उदासीन बनाते हैं।

सूचना क्रांति के दौर में विश्व में घट रही प्रमुख घटनाओं का मानव के जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। इन प्रभावों को भी ध्यान में रखना आवश्यक है। परस्पर सहयोग एवं समझ, बेहतर प्रबंधन एवं संसाधनों का संरक्षण, समाज के सभी वर्गों का विकास जैसे अनेक कर्तव्य हो सकते हैं जो विश्व परिदृश्य में मानवाधिकारों के संगत समीचीन होंगे।

मानव के प्रति मानव की संवेदना में आ रही निरन्तर कमी को वैश्विक स्तर पर अनुभव करते हुए जब पीड़ित को उसके अधिकार दिलाने की बात की जाती है तो प्रमुख रूप से दो मानवीय वर्ग उभर आते हैं जिसमें एक को शोषक तथा दूसरे को शोषित अथवा एक को शक्ति सम्पन्न और दूसरे को शक्तिहीन की संज्ञा मिल जाती है।

वैश्विक सभ्यता के प्रारंभ में शासक और शासित के मध्य का भेद इतना प्रबल था कि अत्याचारों एवं उत्पीड़न का विरोध करने की बात सोची भी नहीं जा सकती

थी। शासक वर्ग अपने हित में अथवा मनोरंजन हेतु सामान्य जनता के साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार करते थे।

आधुनिक सभ्यता के ध्वजवाहक का दम्भ पालने वाले पश्चिमी देशों में मनुष्यों को दास बनाकर उनकी खरीद–बिक्री, कोड़े से पीटना और अन्य अमानवीय दण्ड देना सामान्य बात थी। बाद में इनके द्वारा श्रेष्ठ शासन के खोखले तर्कों का सहारा लेकर उपनिवेशों के सहारे आधिपत्य एवं शोषण की दीर्घकालिक नीति अपनाई गई और इसके बहाने सभ्यता एवं संस्कृति के नवीन मानदण्डों की स्थापना करते हुए गैर–बराबरी एवं भेदभाव पर आधारित शासन–प्रणालियों का विकास किया गया।

हमारे मत से स्वलाभ के दीर्घकालीन उपायों की खोज में व्यस्त पश्चिमी जगत के देशों की मनोवृत्ति में दृष्टिगोचर परिवर्तन कतिपय जन क्रांतियों की देन है जिसमें प्रथम विश्व युद्ध ने एक निर्णायक भूमिका निभाई। मानव के प्रति वैश्विक संवेदना के स्वर यहीं से मुखरित होते हैं। यद्यपि कि इसकी निरंतर विकसित होती वैचारिक पृष्ठभूमि में अमेरिकी तथा फ्रांसीसी क्रांतियों को भुलाया नहीं जा सकता।

सन् 1763 से लेकर 1783 तक का काल अमेरिकी इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस अवधि में विभिन्न उतार–चढ़ावों एवं द्वन्द्वों के मध्य कुछ अधिकार सामने आये जिनमें जीवन का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, सुख प्राप्ति का अधिकार, वाक् एवं प्रेस की स्वतंत्रता, शांति से एकत्र होने की स्वतंत्रता, याचिका प्रस्तुत करने की स्वतंत्रता का अधिकार प्रमुख थे। इसी क्रम में आर्थिक एवं सामाजिक अन्याय के प्रति विद्रोह से उपजी जन क्रांति का प्रमुख उदाहरण 1789 की फ्रांसीसी क्रांति है। 27 अगस्त 1789 को फ्रांसीसी जनता के प्रतिनिधियों ने एक राष्ट्रीय असेम्बली का गठन करके विधिवत् कई प्रस्ताव पारित किये। उनकी घोषणा थी कि मनुष्य स्वतंत्र पैदा होता है और स्वतंत्र एवं समान अधिकारों के साथ रहता है। राजनैतिक संघ उसके नैसर्गिक और असंक्रमणीय अधिकारों की रक्षा के लिए हैं। वैयक्तिक और वैचारिक स्वतंत्रताओं का मानव के लिए बहुत महत्व है। ऐसे विचारों से युक्त मानवाधिकारों का फ्रांसीसी घोषणा पत्र, मानवाधिकार का महत्वपूर्ण आधार बन गया।

प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर व्यापक परिवर्तन देखने को मिला परन्तु राष्ट्र संघ में सम्मिलित आत्मनिर्णय एवं अल्पसंख्यक वर्गों के अधिकार व्यक्तिगत नहीं थे और प्रत्येक व्यक्ति के अधिकारों की बात अभी वैश्विक पटल पर उतनी स्पष्टता के साथ नहीं उभर सकी थी। मानवाधिकारों के सार्वभौमीकरण का प्रारंभ द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् ही हो सका। यहीं से सभी लोगों को मानवाधिकार और मूल स्वतंत्रताओं के प्रति जागरूक करने का अभियान चला।

सभी की सुरक्षा में अपनी सुरक्षा की भावना का विकास एक अन्य विशेषता रही जिसे वास्तव में सर्वे भवन्तु सुखिनः जैसी भारत की आदि विशिष्टता से जुड़ने का

जाना–अनजाना प्रयास कहा जा सकता है। इस समय मानवाधिकारों के प्रति वैश्विक स्वीकृति को लुइस हैन्किन नामक विद्वान ने भी स्वीकार किया। 6 फरवरी 1941 को अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने अपने संदेश में चार स्वतंत्रताओं को सम्पूर्ण विश्व के लिए उपलब्ध कराने की आवश्यकता बताई। ये चार स्वतंत्रताएँ थीं–वाक् एवं अभिव्यक्ति, उपासना, भय एवं अभावों से स्वतंत्रता।

मानवाधिकारों के विकास और उसकी पृष्ठभूमि पर यहां तक दृष्टिपात करने के उपरान्त उसका अर्थ सहज ही स्पष्ट रूप लेने लगता है। आर.जी. विन्सेट का मत है– "मानव अधिकार वे अधिकार हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को मानव होने के कारण प्राप्त हैं। इन अधिकारों का आधार मानव स्वभाव में निहित है।"

ए.ए. सईद ने बताया–"मानव अधिकारों का संबंध व्यक्ति की गरिमा एवं आत्मसम्मान के भाव से है जो व्यक्तिगत पहचान को रेखांकित करता है तथा मानव समाज को आगे बढ़ाता है।"

मानवाधिकारों की परिभाषा देते हुए प्लानो तथा ओल्टन ने बताया–"मानव अधिकार वे अधिकार हैं जो मनुष्य के जीवन, उसके अस्तित्व एवं व्यक्तित्व के विकास के लिए अनिवार्य हैं।"

स्पष्टतः मानवाधिकारों का अर्थ उन अधिकारों से लगाया जाता है जो मानव प्रजाति के विकास के लिए मूलभूत हैं तथा मानव की गरिमा से सम्बद्ध हैं और उसके पोषण के लिए आवश्यक हैं। मानवाधिकार सीधे–सीधे मनुष्य के अस्तित्व के कारण उससे संबंधित हैं इसीलिए ये जन्म से प्राप्त होते हैं, साथ ही, इनकी प्राप्ति में जाति, धर्म, लिंग, भाषा, रंग अथवा राष्ट्रीयता बाधक नहीं होती है। मानवाधिकारों को मूलाधिकार, आधारभूत अधिकार, अन्तर्निहित अधिकार तथा नैसर्गिक अधिकार आदि के नाम से भी जाना जाता है।

पूर्व में ही स्पष्ट किया जा चुका है कि मानवाधिकारों के प्रति पश्चिमी राष्ट्रों की चिन्ता द्वितीय विश्व युद्ध के पूर्व तथा उसके दौरान बढ़ने का प्रमुख कारण था–मानवाधिकारों का बहुत बड़े पैमाने पर हनन। संयुक्त राष्ट्र संघ की आर्थिक एवं सामाजिक परिषद् ने मानवाधिकारों के पारिभाषीकरण और प्रवर्तन के लिए मानवाधिकार आयोग को अधिकृत किया जिसका गठन इस परिषद् ने संयुक्त राष्ट्र संघ चार्टर के अनुच्छेद 68 के अधीन 1946 में किया था। इस मानवाधिकार आयोग का प्रथम अधिवेशन 1947 में हुआ था।

10 दिसम्बर 1948 को संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा को अंगीकृत किया। इसकी उद्देशिका में कहा गया–"यदि मनुष्य को अत्याचार और उत्पीड़न के विरूद्ध अंतिम अस्त्र के रूप में विद्रोह का अवलम्ब लेने

के लिए विवश नहीं किया जाना है तो मानव अधिकारों का संरक्षण विधिसम्मत् शासन द्वारा किया जाना चाहिए।" यह घोषणा पत्र 30 अनुच्छेदों में मूल अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं की विस्तृत सूची प्रस्तुत करता है।

प्रत्येक व्यक्ति को प्राण, स्वतंत्रता एवं दैहिक सुरक्षा का अधिकार है। प्रत्येक व्यक्ति विधि के समक्ष समान है और उसे व्यक्ति के रूप में मान्यता का अधिकार है। उसे सार्वजनिक सुनवाई और लोक विचारण का अधिकार है। दासता से मुक्ति का अधिकार, क्रूर, अपमानजनक या अमानवीय व्यवहारों से मुक्ति का अधिकार, मनमाने ढंग से निरुद्ध या निर्वासित नहीं करने का अधिकार, एकान्त भंग न करने का अधिकार, राष्ट्रीयता का अधिकार, राज्यों की सीमा में स्वतंत्र संचरण एवं निवास की स्वतंत्रता, अन्य देशों में शरण मांगने व लेने का अधिकार, वयस्कों को विवाह व परिवार स्थापित करने का अधिकार, सम्पत्ति का स्वामी बनने का अधिकार इत्यादि इस घोषणा पत्र में सम्मिलित है। इसी में व्यक्ति की मूलभूत स्वतंत्रताओं की चर्चा भी की गई है, जिनमें विचार, अन्तःकरण और धर्म की स्वतंत्रता, अभिमत और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, शांतिपूर्ण सम्मेलन व संगम की स्वतंत्रता सम्मिलित है।

राजनैतिक अधिकारों में सम्मिलित है–देश की सरकार में भाग लेने का अधिकार, अपने देश की लोक सेवाओं में समान पहुँच का अधिकार, आर्थिक एवं सामाजिक अधिकारों के अंतर्गत सामाजिक सुरक्षा का अधिकार, काम का अधिकार, विश्राम व अवकाश के साथ वेतन सहित आवधिक अवकाशों का अधिकार, बेरोजगारी के विरुद्ध संरक्षण का अधिकार, नियोजन के स्वतंत्र चयन का अधिकार, व्यावसायिक संघ निर्माण का अधिकार, समान कार्य के लिए समान वेतन का अधिकार इत्यादि प्रमुख हैं। शिक्षा को भी प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार स्वीकार किया गया है। इसके साथ–साथ मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा में सांस्कृतिक अधिकारों को भी सम्मिलित किया गया है।

मानवाधिकारों की इस सार्वभौम घोषणा का दूसरा चरण उस समय माना गया जबकि इसने संबंधित पक्षों के लिए विधिक रूप से बाध्यकारी स्वरूप ग्रहण किया। 16 दिसम्बर 1966 को संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने अपने 21वें अधिवेशन में दो अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदायें स्वीकार कीं–नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों की प्रसंविदा और आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों की प्रसंविदा।

इसके बाद तीसरा चरण मानवाधिकारों के प्रवर्तन से संबंधित है जोकि क्षेत्रीय, राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय स्तर में वर्गीकृत किया गया है। मानवाधिकारों के प्रवर्तन में क्षेत्रवाद का प्रसार द्वितीय विश्व युद्ध के बाद हुआ जबकि राष्ट्रीय स्तर पर इसका प्रवर्तन मुख्य रूप से राज्यों की परस्पर सहमति पर आधारित है। अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर स्वेच्छा से या नैतिक दबावों के चलते मानवाधिकारों का सम्मान होता है।

मानवाधिकारों पर अन्तरराष्ट्रीय दस्तावेजों में केवल अधिकार ही नहीं वरन्

कर्तव्यों की भी चर्चा की गई है। मानव पर कर्तव्य आरोपित करते हुए सार्वभौम घोषणा के शब्द हैं–प्रत्येक व्यक्ति के उस समुदाय के प्रति कर्तव्य हैं जिसमें उसके व्यक्तित्व का उन्मुक्त और पूर्ण विकास संभव है।" स्पष्टतः मानव को मिले अधिकार एवं स्वतंत्रताओं की रक्षा करना मानवाधिकार शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिए। मानवाधिकारों के प्रति सम्मान का भाव विकसित किये जाने के परिप्रेक्ष्य में वैश्विक स्तर पर कर्तव्यों की व्याख्या करते समय प्राचीन भारतीय सन्दर्भ दैव प्रासंगिक रहते हैं। एक उदाहरण देखिये तेत्तिरीयोपनिषद में कहा गया–"सत्यम् वद् धर्मम् चर" मानवाधिकारों की रक्षा के लिए सत्य और धर्म कैसे आवश्यक कर्तव्य बल्कि वैश्विक कर्तव्य बन सकते हैं इस पर चर्चा की जानी चाहिए। वस्तुओं और परिस्थितियों का विवेकजन्य तथा अनुभव पोषित ज्ञान ही सत्य स्वरूप है।[1]

चूंकि यह परम सत्य है कि सभी मानव स्वतंत्र एवं समान जन्मा हैं अतएव उनकी समानता एवं स्वतंत्रता अक्षुण्ण रखना परस्पर कर्तव्य होना चाहिए और स्वाभाविक धर्म भी इसलिए मानवाधिकारों के संरक्षण हेतु धर्माचरण भी कर्तव्य होगा। प्रश्न खड़ा होगा कि कब या किन परिस्थितियों में मानव को स्वतंत्रता मिलेगी और कब मानव को मानव के समान समझते हुए गैर–बराबरी के भेदभाव से मुक्ति मिलेगी। इसका उत्तर देने के लिए प्रचलित शासन पद्धतियों पर विचार करना होगा। हमारे मत से शासन प्रणालियों में सबसे कम बुरी प्रणाली लोकतांत्रिक प्रणाली है।

अतः इसको वर्तमान विश्व की परिस्थितियों के सर्वाधिक उपयुक्त स्वीकार किये जाने में संदेह नहीं होना चाहिए। के.जी. सैयदेन यह स्वीकार करते हैं कि वर्तमान एवं भावी जीवन के कर्तव्यों को उचित रूप से समझने तथा पालन करने के लिए इनकी शिक्षा देनी आवश्यक है। यह लोकतांत्रिक प्रणाली में ही संभव है। ऑटवे और आगे बढ़कर बताते हैं कि कर्तव्य ऐसे हों जो हमें अधिकाधिक संभव बनायें। कालिंगवुड कहते हैं कि "किसी व्यक्ति के प्रति सभ्य व्यवहार करने का अर्थ है–उसकी भावनाओं का सम्मान करना, उसमें ऐसा आवेश अथवा ऐसी उत्तेजना पैदा करने से बचना जिससे आत्मसम्मान को ठेस पहुंचती हो। अभिप्राय यह है कि ऐसा कुछ न करना जिससे उसकी स्वतंत्रता की चेतना को आघात पहुंचता हो और उस से यह आशंका होने लगती हो कि उसकी सहन शक्ति समाप्त हो जायेगी तथा उसका स्थान आवेश एवं उत्तेजना ले लेगी।" कुछ भी हो इससे तो यही लगता है कि मनुष्य के मन, वचन और कर्म में लोकतंत्र को उतार देना आवश्यक हो गया है।

समस्त मानव जाति को उसके अधिकार दिलाने के लिए प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से कर्तव्यों के प्रति बरती जाने वाली उदासीनता का क्रम तोड़ना ही होगा। भारत का संविधान तो अधिकारों के साथ ही कर्तव्यों की सम्यक प्रस्तुति करता है। यदि यह

1. वर्तमान भौतिक परिस्थितियों में सत्य का निर्वचन/आध्यात्मिक सत्य की सत्ता इससे भिन्न है

व्यवहार में उतर जाय तो मानव को उसके अधिकार स्वतः मिल जायेंगे। इसलिए आवश्यक है कि अधिकारों की मांग के साथ ही कर्तव्यों के प्रति तत्परता प्रदर्शित की जाए।

वैश्विक स्तर पर कर्तव्यबोध को जाग्रत करने के लिए व्यक्ति के अस्तित्व की गरिमा का बोध कराया जाय, सर्वे भवन्तु सुखिनः की संस्कृति आत्मसात कराई जाए, मानवातावादी विचारों एवं मूल्यों के प्रति समझ विकसित की जाए। साथ ही उन स्थलों या तत्वों को पहचाना जाए जो मानव को उसके मानवीय अधिकारों से वंचित करते हैं या उसे कर्तव्यों के प्रति अनुत्तरदायी बनाते हैं। सूचना क्रांति की वैश्विक तरंगों ने मानव के जीवन पर व्यापक असर डाला है जिसकी अनदेखी नहीं की जा सकती। इनके प्रभावों को भी ध्यान में रखना आवश्यक है। परस्पर सहयोग एवं समझ, बेहतर प्रबंधन एवं संसाधनों का संरक्षण, समाज के सभी वर्गों का विकास जैसे कर्तव्य वैश्विक परिदृश्य में मानवाधिकारों की दशा बदल सकने में सक्षम है।

कहना न होगा कि मानवाधिकारों के संरक्षण एवं संवर्धन के निमित्त (यदि वैश्विक स्तर पर) प्रत्येक राष्ट्र में समूह मन, सामूहिक सत्य मार्ग पर चलते हुए सामूहिक कल्याण के कर्मों में प्रवृत्त हो जायें तो नया विश्व परिदृश्य मानव की कल्पना के निकट आने लगेगा और यही परिवर्तन का प्रारंभ बिन्दु होगा।

आज आवश्यकता इसी बात की है कि लोकतांत्रिक मूल्यों एवं मान्यताओं के प्रति प्रतिबद्ध समूहों का निर्माण किया जाय, इसके लिए आवश्यक मनोदशा वाली आधारभूमि तैयार की जाय, शैक्षिक प्रक्रिया को इस कार्य में सहायक बनाया जाय, लोगों को लोकतंत्र का वास्तविक अर्थ समझाया जाय और इन सबके ऊपर मनुष्य को उसकी मनुष्यता और उसकी क्षमता का बोध कराया जाय।

मानवाधिकारों के प्रति चेतना, संरक्षण एवं विकास के संदर्भ में इससे अधिक सकारात्मक कर्तव्यों की विवेचना कर पाना संभवतः संभव नहीं होगा।

मानवाधिकार : जागरूकता की कमी

* महेन्द्र प्रताप गुप्त 'नभेन्द्र'

मानव अधिकार गूढ़ एवं विशाल विषय होने के कारण चिन्तन–मनन की आवश्यकता रखता है। एक प्रकार से यह मात्र चर्चा की ही आवश्यकता नहीं रखता अपितु मानव मात्र की गरिमा की रक्षा हेतु प्रत्येक व्यक्ति द्वारा इन्हें व्यावहारिक धरातल पर अपनाए जाने की अपेक्षा रखता है। जीवन का कोई भी पक्ष इससे अछूता नहीं बात चाहे संसद या विधान मंडलों में अभद्र व्यवहार की हो या इन की कार्यवाही में बाधा उत्पन्न करने की या सड़क पर जाम लगाने या बन्द का आयोजन करने की, सभी नागरिकों के मूलभूत अधिकारों से जुड़ी है। लेकिन इन अधिकारों पर दुर्दान्त अपराधियों और आतंकवादियों के दावे को हम उस सीमा तक स्वीकार्य नहीं कर सकते जिससे वे किसी प्रकार अपने द्वारा किए गए अपराधों से बच सकें। मानव अधिकारों के संरक्षण में भारत विश्व को संदेश दे सकने और इस दिशा में एक आदर्श राष्ट्र सिद्ध करने में तभी समर्थ होगा यदि हम प्रत्येक स्तर पर मानव अधिकारों की जागरूकता को बढ़ा सकें।

मानवाधिकार के विषय में बढ़ – चढ़कर चर्चाएं होती रहती हैं। मानवाधिकार अतिशय गूढ़ एवं विशाल विषय है जिसके लिए गहन चिन्तन–मनन एवं प्रसंग के सन्दर्भों में गहरी पैठ अपरिहार्य है। यह कोरी नारेबाजी तथा सतही बयानबाजी का मुद्दा नहीं अपितु व्यावहारिक धरातल पर अपनाया जाने वाला, प्राकृतिक न्याय सिद्धान्तों तथा संवेदनशील मानवता के मानवीय पक्षों पर आधारित मानव मात्र की गरिमा की रक्षा का उपाय और मानव को विसंगतियों, अन्याय एवं उत्पीड़न से बचाने का कवच है। जो लोग मानवाधिकार को लेकर प्रचार में बने रहने के लिए केवल हो–हल्ला ही अधिक मचाते हैं तथा जिन पर मानवाधिकारों के संरक्षण का दायित्व होता है, वे लोग ही अधिकांशतः मानवाधिकारों के हनन के अपेक्षाकृत अधिक दोषी होते हैं। ऐसा कुछ तो उनकी नासमझी के कारण से और कुछ स्वार्थ भावना के वशीभूत निहित स्वार्थों की प्रतिपूर्ति की गरज से घटित होता रहता है। सर्वोपरि कारण है, जनसाधारण में चेतना

* वरिष्ठ अधिवक्ता, जोधपुर (राज0)

एवं जागरूकता की कमी का होना; जिस कारण आए-दिन मानवाधिकारों का हनन होता रहता है और निरीह सामान्य-जन सब सहता रहता है एवं समर्थ व्यक्ति उदासीन बने रहते हैं।

मानवाधिकारों के संदर्भ में आम नागरिकों को सचेष्ट तथा सतर्क करने की पृष्ठभूमि में कतिपय गैर सरकारी संगठन (एन.जी.ओ.) अच्छा कार्य कर रहे हैं। उन्हें भरपूर प्रोत्साहित किए जाने की आवश्यकता है। किन्तु ऐसा होता नहीं है, जो स्थिति अत्यन्त खेदजनक ही नहीं, वरन् दुर्भाग्यपूर्ण भी है। इसके विपरीत राजनैतिक पृष्ठभूमि वाले मानवाधिकारीवादी संगठन, मानवाधिकारों की रक्षा तथा पीड़ितों की सहायता के प्रति इतने गंभीर नहीं होते हैं, जितने की स्वयं की राजनैतिक महत्वाकांक्षा व व्यक्तिगत प्रचार-प्रसार के प्रति यहां पर उनकी दलीय निष्ठा तथा संगठन के प्रति प्रतिबद्धता भी गौण हो जाती है और 'स्व' उभर कर सामने आ ही नहीं जाता है, वरन् उनके समस्त क्रिया-कलापों के ऊपर छा भी जाता है इन्हीं कारणों से मानवाधिकारों से सम्बन्धित कानूनों के उपलब्ध होते हुए भी उसका लाभ जन-जन तक नहीं पहुंच पा रहा है। इसके विपरीत मानवाधिकारों के हनन व क्षरण की अवांछनीय घटनाओं के रिकार्ड में बढ़ोतरी ही होती हुई नजर आ रही है।

संसद / विधान मण्ड़लों से लेकर सड़क तक मानवाधिकार के हनन की घटनाएं आए दिन की बातें हो गई हैं। संसद / विधान मण्ड़लों के अन्दर अभद्र व्यवहार करना, क्या एक पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष की गरिमा एवं सम्मान पर हमला करके, उसके मानवाधिकारों का हनन नहीं है? सामान्य संसदीय एवं विधान मण्डलीय कार्यवाही में बाधा उत्पन्न कर ठप कर देना, क्या भारतीय जनता के मूलभूत मौलिक अधिकारों पर आक्रमण और उसके भारत का नागरिक होने एवं मतदाता के रूप में उसके मूलभूत अधिकारों की उपेक्षा, अपने दलीय एवं निजी स्वार्थों के लिए करना, प्रकारान्तर से उसके मानवाधिकारों का हनन नहीं है? इस सबका एक गलत सन्देश देशवासियों को जाता है। विद्यालयों, विश्वविद्यालयों के विद्यार्थी व कर्मी, व्यापारिक व व्यवसायिक संगठनों के सदस्य, शासकीय क़र्मचारी, संगठित व असंगठित क्षेत्रों के कर्मचारी, निजी एवं सरकारी संगठनों के श्रमिक, स्थानीय स्तर के अन्य संगठनों तथा राजनैतिक दलों के क्षेत्रीय व स्थानीय संगठनों के सदस्य व प्रतिनिधि, इत्यादि भी अपने स्तर से और अपने तरीके से मानवाधिकारों के हनन में किसी प्रकार से पीछे नहीं रहना चाहते हैं या यों कहें कि न रह सकने को मजबूर हैं। कारण स्पष्ट है, कि कानून व्यवस्था, प्रशासन तथा पुलिस से उनका विश्वास उठ गया है। फलतः कानून अपने हाथों में लेने तथा विध्वसंक गतिविधियों को अन्जाम देने में उनकी आस्था अधिकाधिक बढ़ती चली जा रही है, जो कि शुभ संकेत नहीं है। लोग कानून के राज और जंगल राज के भेद को भुला देने पर तुले हुए हैं। जाम लगाना, बन्द का आयोजन करना, आवश्यक सेवाएं ठप कर देना, बात-बात पर हड़ताल करना तथा तोड़-फोड़, आदि करना क्या दूसरे के मानवाधिकारों

का हनन नहीं है? दुर्घटना कहीं होती है, दोषी कोई होता है, परन्तु कानून अपने हाथों में लेकर बवाल मचाना आम बात हो गई है। ऐसा वे लोग ही आमतौर पर करते हैं, जिनका दुर्घटना या पीड़ित पक्ष से कोई सरोकार नहीं होता है। केवल अराजक मनोवृत्ति ही उन पर हावी होती है। जाम लगाकर या अन्य किसी प्रकार की गैर कानूनी प्रक्रिया द्वारा शान्तिप्रिय तथा नियम–कानून के पाबन्द नागरिकों का उत्पीड़न संज्ञेय गैर–कानूनी अपराध माना जाना चाहिये। निरीह राहगीरों, नागरिकों पर हमला करने तथा निजी अथवा सरकारी सम्पत्ति की तोड़–फोड़ करने वालों को समाज का कंटक या आन्तरिक / स्थानीय आतंकवादी समझते हुए उनके विरुद्ध रासुका की कार्रवाई की जानी चाहिये। अन्यथा हम राम राज्य की जगह रावण राज्य और कानून के राज के स्थान पर जंगल के कानून का राज होते हुए देखेंगे भी और परिणाम भी भुगतेंगे। इसके लिए उन सबको भी तैयार रहना चाहिए, जो ऐसा करने अथवा होने देने के लिए उत्तरदायी हैं। यहां पर यह स्मरण रखने की बात है, जहां किसी निर्दोष का उत्पीड़न होता है, उसके मानव होने की गरिमा को ठेस पहुंचाई जाती है, वह सब मानवाधिकार हनन के दायरे में आता है। अब भूख हड़ताल, सत्याग्रह तथा शान्तिपूर्ण धरना–प्रदर्शन का स्थान विध्वंसक गतिविधियों तथा पर–उत्पीड़न ने ले लिया है।

बड़े–बड़े राजनैतिक जलूस, रैलियां एवं सभाएं जनता तक अपनी बात शान्तिपूर्ण एवं अनुशासित ढंग से पहुंचाने के स्थान पर शक्ति प्रदर्शन कर राजनैतिक दबंगई स्थापित करने का जरिया अधिक बन गई हैं। इस सबसे नागरिकों का सामान्य जीवन अस्त–व्यस्त होता है और उन्हें अति त्रासद कठिनाईयों से गुजरना पड़ता है। यहां पर यह बात विशेष ध्यान रखने की है, कि मानवाधिकार, जैसा कि शब्दों से स्वतः स्पष्ट है, मानवों के लिए होते हैं–दानवों या मनुष्यों के रूप में छिपे दानवों के लिए नहीं। दुर्दान्त अपराधी तथा आतंकवादी मानवाधिकारों की आड़ लेकर बच निकलने का प्रयास करते हैं, उनके पक्ष में कुछेक समाजद्रोही प्रवृत्ति के संगठन तथा चन्देक देशद्रोही व्यक्ति खड़े नजर आते हैं। ऐसा करके वे उनके अपराध में सहभागी अभियुक्त भर ही बनते हैं, मानवाधिकारों के रक्षक नहीं। वर्तमान समय की उहापोह की स्थिति को देखते हुए, इस बात की अत्याज्य आवश्यकता है, कि सांसदों, विधायकों, शासकीय व प्रशासकीय अधिकारियों तथा पुलिस बल, आदि को मानवधिकारों का पाठ पढ़ाया व सिखाया जाये। मानवाधिकारों के पालन में ढील व लापरवाही बरतने वालों के विरुद्ध अनुशासनात्मक विभागीय कार्रवाई अवश्यमेव हो। साथ ही जनसाधारण को मानवाधिकारों के प्रति जागरूक किए जाने और उसकी सही–सही परिभाषा समझाए जाने पर विशेष बल दिए जाने की महती आवश्यकता है। कूट रचित आंकड़ों के आधार पर नहीं, अपितु तथ्यपरक सच्चाई के धरातल पर खड़े होकर, हम विश्व को यह सन्देश दे सकने में समर्थ हो सकेंगे कि मानवाधिकारों के संरक्षण में भी विश्व के अग्रणी राष्ट्रों में भारत अपना प्रमुख स्थान रखता है।

गांधी दर्शन : मानव अधिकारों की आधारपीठिका

* अंशु गुप्ता

मानव के अधिकार एवं कर्तव्य समाज में उसकी गरिमा और प्रतिष्ठा के लिए जिम्मेदार माने जाते हैं। इन्हीं अधिकारों और कर्तव्य को मद्देनजर रखते हुए विभिन्न समाज सुधारकों ने अपना तन मन धन मानव अधिकारों की रक्षा में न्यौछावर कर विश्व बन्धुत्व पर विशेष बल दिया जिनमें महात्मा गाँधी, राजा राममोहन राय, अब्राहम लिंकन, मदर टेरेसा, नेल्सन मंडेला के नाम प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं।

मानव अधिकारों के हक में लड़ी जाने वाली इस लड़ाई की शुरूआत हाड–माँस के एक सामान्य से दिखने वाले इंसान ने दक्षिण अफ्रीका में रेलगाड़ी में सफर के दौरान की और अपनी अंतिम साँस तक इस लड़ाई को जारी रखा। आगे चलकर यही व्यक्ति जन–जन की चेतना बन महात्मा गाँधी के नाम से प्रसिद्ध हुआ। समाज को बदलने के लिए गाँधी ने स्वयं को बदल दिया था। अहिंसा को उन्होंने बुनियादी जीवन का मूल्य माना। सत्य को एक अस्त्र के रूप में प्रयोग किया है जिसका वार कभी निष्फल नहीं होता।

विश्व के विभिन्न मनीषियों, समाज सुधारकों ने एक स्वर में इस बात को स्वीकार किया कि गाँधी के बिना मानवाधिकार की संकल्पना अधूरी रह जाती है। मानवाधिकार की पृष्ठभूमि गाँधी की दृष्टि और दर्शन का ही परिणाम है।

अधिकार और कर्तव्य की अवधारणा के बीज भारतीय समाज में प्राचीन काल से ही उपस्थित रहे हैं। चौदहवीं–पन्द्रहवीं शताब्दी से ही इस संकल्पना का प्रस्फुरण तत्कालीन समाज में व्याप्त चिन्तन में दृष्टिगत होता है। उसकी स्थापना मनुष्य की गरिमा और प्रतिष्ठा को कायम करने के लिए की गयी थी। सत्रहवीं शताब्दी में इसके

* हिंदी लेखन एवं मीडिया से संबद्ध, 104 सी, सेक्टर–6, आकाश गंगा सोसायटी, द्वारका, नई दिल्ली

विकास के संबंध में कुछ आशा की किरण दिखाई दी और उन आशा की किरणों ने समाज में एक नई क्रांति के बीज के रूप में कुछ समाज सुधारकों ने जन्म लिया और उन्होंने इस का भार अपने सबल कंधों पर लेकर विश्व में शांति और समन्वय की स्थापना के लिए एक जन आन्दोलन की शुरूआत की। वैसे तो अठारहवीं–उन्नीसवीं शताब्दी जिसे भारत के पुनरोत्थान का काल कहा जाता है, में सांस्कृतिक चिन्तन की अवधारणा के साथ–साथ मनुष्य के अधिकार और कर्तव्य की अवधारणा को भी व्यापक जनसमर्थन मिला। इस शताब्दी में ऐसे मनीषियों, विचारकों, समाज सुधारकों और राष्ट्रभक्तों का आविर्भाव हुआ जिन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किया। इनमें राजा राम मोहन राय, अब्राहम लिंकन, महात्मा गांधी, नेल्सन मंडेला एवं मदर टेरेसा (18–19वीं शताब्दी में) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन सभी ने कर्मप्रधान विश्व की संरचना करने में महत्वपूर्ण अवदान किया है। इन लोगों ने जगत को विश्व बंधुत्व का ऐसा पाठ पढ़ाया जो आज भी उतना ही प्रासंगिक और समीचीन है।

उपर्युक्त पृष्ठभूमि में गांधीजी का नाम सबसे महत्वपूर्ण है। गांधी जी के बारे में अल्बर्ट आइन्स्टाइन ने कहा था कि "आने वाली पीढ़ियाँ इस बात पर विश्वास ही नहीं करेंगी कि हाड़–मांस का ऐसा कोई इंसान इस धरती पर पहले कभी हुआ था।"

मानवाधिकार की संकल्पना बिना गांधी के अधूरी है, क्योंकि मानवाधिकारों की सांस्कृतिक और वैचारिक पृष्ठभूमि गांधी की दृष्टि और उसके दर्शन पर ही आधारित है। अहिंसा के पुजारी गांधी जी ने, सभी विचारों के बीच एक ऐसा समन्वय स्थापित किया जहां से विश्व को व्यक्ति के मानवाधिकारों के लिए एक दिशा मिली।

गांधी जी की मानवाधिकारों के लिए लड़ाई तब शुरू हुई जब दक्षिण अफ्रीका में उनके पास प्रथम श्रेणी का टिकट था, और उन्हें रेलगाड़ी में सफर नहीं करने दिया गया एवं उसके बाहर फेंक दिया गया। तब उन्होंने वहां बसे भारतीय समुदाय के लोगों के मानवाधिकारों के बारे में जांच पड़ताल की। उन्होंने वहां बसे भारतीय समुदाय के लोगों की मदद की ताकि वे भेदभाव के शिकार न हो सकें। एक सहमे हुए भारतीय वकील ने दबे और बेसहारा तथा अधिकारहीन लोगों को उनके मानव अधिकार दिलाने में महारत हासिल कर ली। उन्होंने कानूनी प्रस्तुतिकरण में आत्मविश्वास हासिल किया एवं वे सर्वोच्च न्यायालय में वकालत करने लगे। आने वाले कई हफ्तों तक उनके खिलाफ हिंसात्मक प्रदर्शन एवं प्रतिरोध हुआ।

जब 1899 में बोर युद्ध हुआ तो उन्होंने करीब हजार लोगों का दस्ता तैयार किया जो युद्धभूमि में जाकर घायलों एवं अपंगों की देखभाल व बचाव का कार्य करता। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की मदद से लगभग एक लाख भारतीयों को, जो दक्षिण अफ्रीका में रहते थे, समान अधिकार दिलाने की उन्होंने पैरवी की। उन्होंने भारतीयों से परमिट के नये नियम का विरोध करने को कहा। सत्याग्रह व अहिंसात्मक असहयोग आंदोलन

उनके प्रमुख व शक्तिशाली हथियार बने। गांधी का समन्वयवादी सिद्धान्त मनुष्य के विवेक की धुरी था और सत्याग्रह और अहिंसा की बुनियाद पर कायम था। गांधी ने अहिंसा के जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया उसकी कसौटी विश्व के सभी धर्मग्रन्थों का मूल थी। इस संदर्भ में बात को और अधिक प्रमाणित करने के लिए गांधीजी के कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं। गांधी जी लिखते हैं–"अहिंसा व्यापक वस्तु है। हिंसा की होली की लपेट में आए हुए हम पामर प्राणी हैं। जीवै जीव अधारा की बात गलत नहीं है। मनुष्य क्षण भर भी बाह्य हिंसा के बिना नहीं जी सकता। खाते–पीते, उठते–बैठते सब कर्मों से, इच्छा से हो या अनिच्छा से कुछ न कुछ हिंसा तो वो करता ही रहता है। उस हिंसा से निकलने का उसका महाप्रयास हो, उसकी भावना में अनुकम्पा हो।" गांधी जी को कभी ये नहीं लगा कि राज्य की हिंसा निन्दनीय है और क्रांतिकारियों की हिंसा स्वीकार्य है। इस मान्यता के लिए उन्होंने अपने जीवन में काफी लानत मलामत भी सही। इसका तात्पर्य यह है कि गांधीजी की करनी और कथनी में कोई भेद नहीं था। वे जिसका विरोध करते थे उस पर मजबूती से खड़े दिखते थे। उनका जीवन "प्राण जाये पर वचन नहीं जाए" के सिद्धान्त पर आधारित था।

अज्ञानता, अंधविश्वास से मुक्त, विवेकशील और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मानवता को अपनाने वाले तथा अहिंसा परमो धर्मः की नींव डालने वाले महात्मा गांधी का चिन्तन और दर्शन शांति, बंधुत्व, सहिष्णुता, विकास और एकता जैसे विचारों से अनुप्राणित था। गांधीजी के जितने भी सिद्धान्त देश व विदेश में प्रतिपादित हुए, उन सब के मूल में संकल्प का ताना–बाना बुना हुआ था। उनका मानना था कि समाज को बदलने के लिए पहले स्वयं की धारणा और दृष्टि को बदलना होगा, तभी हम दूसरे को बदलने के लिए प्रभावित कर सकते हैं। वे व्यक्ति की आन्तरिक भावनाओं की एकाग्रता के सहारे सामासिक संस्कृति की बुनियाद रखना चाहते थे तथा व्यक्तित्व के विकास में इसका महत्वपूर्ण अवदान भी समझते थे। वे सकारात्मक तथा रचनात्मक कार्यों के द्वारा देश के लोगों को अधिकार और कर्तव्य के लक्ष्य को प्राप्त करने की धुरी समझते थे। वे विचार–विमर्श, परस्पर विनिमय तथा वैज्ञानिक तानों–बानों के सहारे प्रगतिशील विश्व की रचना करना चाहते थे जिसमें युवाओं की सकारात्मक सोच को विशेष महत्त्व देते थे। उनका मानना था कि हम सभी एक नियामक शक्ति की सत्ता के अन्तर्गत निवास करते हैं इसलिए हमें कभी उस अदृश्य सत्ता को नजर अंदाज नहीं करना चाहिए। वे इंसानों द्वारा मर्यादाओं को लांघते हुए प्रकृति के साथ किए जाने वाले दुर्व्यवहार के घोर विरोधी थे। वे प्रकृति और मनुष्य के बीच ऐसा अभेद संबंध स्थापित करना चाहते थे जो प्रकृति की साधना का मनुष्य की आंतरिक साधना के साथ एकात्म संबंध स्थापित करने में सफल हो सके। गांधी जी का कहना था हिंसापूर्ण समाज में हम अहिंसा को सर्वोच्च मानवीय मूल्य के तौर पर स्वीकार करने की हिम्मत रखते हैं तो हम उसमें अपने साथ–साथ दूसरों के लिए भी उसी मूल्य को स्थापित करने का प्रयास करते हैं। गांधी की अहिंसा पारम्परिक धार्मिक अहिंसा से भिन्न इस अर्थ में है कि वह किसी धार्मिक

आदर्श और किसी धार्मिक मूल्य की अनुगामी नहीं है बल्कि वह तरह–तरह के धर्माचरणों की कसौटी पर स्वयं खड़ी दिखाई देती है। गांधी जी के लिए अहिंसा केवल आदर्श नहीं है बल्कि बुनियादी जीवन मूल्य भी है। संयम और करुणा की व्याख्या करते हुए गांधी जी ने लिखा है, संयम केवल दूसरे पर की जाने वाली कृपा नहीं है बल्कि खुद के जीवन को जीने के लिए बुनियादी बोध है।

संसार का कोई भी ऐसा धर्म नहीं है जो हिंसा का उपदेश देता हो या मार्ग बताता हो। विश्व में जितने भी चर–अचर प्राणी हैं, उन सबमें एक दूसरे के प्रति सहयोग, आपसी भाई चारा, परस्पर सद्भाव, सर्वधर्म समभाव का तत्व विराजमान है। गांधीजी की आंतरिक साधना और दिनचर्या में भी मानव अधिकारों की साफ झलक दिखाई पड़ती है। अपनी दैनिक दिनचर्या में दूसरों के अधिकारों का हनन न हो, इसका उन्होंने हमेशा ध्यान किया, चाहे वो पूजा का समय हो, चाहे वो रात्रि में सोने का समय हो, चाहे वो साधना का समय हो, सब में वे इस बात का ध्यान रखते थे कि मेरे कारण किसी व्यक्ति के व्यक्तिगत एवं समष्टिगत अधिकारों का कोई उल्लंघन न हो। वे कर्म पर आधारित विश्व की संरचना को देखना चाहते थे। उन्हें भारतीय वर्ण व्यवस्था उतनी ही प्रिय थी जितनी भारतीय कर्म व्यवस्था। वे दोनों के परस्पर सहयोग से एक ऐसे विश्व की नींव रखना चाहते थे जिसमें धर्म, कर्म, जाति, ऊँच–नीच, सब कुछ एक में समा जाये और विश्व का अस्तित्व 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' एवं 'ईशावास्यमिदम् सर्वम् यत्किंच जगत्यां जगत' के सिद्धान्त पर कायम रहे। गांधी जी उपनिषद के इस मंत्र से बहुत ही प्रभावित थे और इसे वे सार्वभौम मानवीय मूल्यों की अभिव्यक्ति का तथा ऋषियों की वाणी का अनोखा वरदान समझते थे। वे इसके घोर विरोधी थे कि ब्राह्मण के यहां पैदा हुआ बच्चा, पैदा होते ही कुलीन वंश का माना जाएगा और हरिजन का बच्चा जन्म लेते ही छुआछूत के अभिशाप से ग्रस्त हो जाएगा। अपने आश्रम में भी इस भेद–भाव के प्रति उनका गुस्सा हमेशा फूटता रहता था और वे कभी–कभी आश्रम के लोगों को सख्त हिदायत देते रहते थे कि हमारे आश्रम में कोई भी व्यक्ति ऊँच–नीच की मानसिकता न रखे, परस्पर सद्भाव से रहे और सबमें ईश्वर का वास देखें, क्योंकि उनके दर्शन में इन्सानियत को खास महत्व दिया गया है। वे इन्सानियत के चश्मे से सभी धर्मों के प्रमुख ग्रंथों का पारायण करते थे। वे कहा करते थे कि सभी जाति के इन्सानों के खून का रंग एक ही होता है। यदि ईश्वर के द्वारा जाति को प्रधानता दी जाती तो वे उनके लहू के रंग को भी अलग–अलग बना देते। वे हमेशा कहा करते थे, चाहे हिन्दू का हो, चाहे मुस्लिम का हो, चाहे ईसाई का हो या सिख का हो, लहू का रंग एक ही होता है। इस सम्बन्ध में वे आश्रम वासियों को हमेशा एक उदाहरण देकर कहा करते थे कि जिस प्रकार कफन और हवन के धुंओं के रंग में कोई अन्तर नहीं होता है, उसी प्रकार इन्सानियत के लहू के रंग में भी कोई अन्तर नहीं होता है। उनका मानना था कि अंधेरा जितना घना होता है, दीपक उतना ही प्रासंगिक होता है। उनकी साधना "वसुधैव कुटुम्बकम्" के सिद्धांत पर आधारित थी, और उनकी सोच "एकम् सद् विप्रा बहुधा वदन्ति" पर आधारित थी।

वे मन, कर्म, वचन तीनों से एक थे तभी वे कह सके कि 'मेरा जीवन ही मेरा सन्देश है। उनका कहना था कि सत्य शाश्वत है। वे सत्य के अवतार थे और अपने जीवन में वे 'सत्यमवद, धर्ममचर' का अक्षरशः पालन करते थे और आश्रमवासियों को भी इसी सूत्र में बंधने की सीख देते थे। वे गीता के कर्म एवं ज्ञान योग के सिद्धान्त के प्रबल समर्थक थे। वे केवल इसके समर्थक ही नहीं उसे अपने जीवन में ज्यों का त्यों अपनाते भी थे। वे विश्व के सभी धर्म ग्रंथों में मानवीय संवेदना, मानवाधिकारों, मानवीय गरिमा के सूत्र को खोजते रहते थे, और जहाँ जो जिस रूप में मिलता था उसे वे अपने जीवन में उतारने की कोशिश करते। इन सूत्रों पर संवाद और बहस भी खूब करते थे। वे उपनिषदों की विचारधारा से विशेष प्रभावित थे तथा उसे ज्ञान की गंगा मानते थे। गांधी जी आदर्श एवं व्यवहार की शिक्षा के प्रति हमेशा सजग थे और वे कर्म की शिक्षा को सर्वोपरि महत्व देते थे। वे भारतीय चिन्तन धारा के उस मार्ग के अनुयायी थे, जिसमें ज्ञान, कर्म एवं भक्ति की त्रिवेणी बहती है। वह अनुभवजन्य ज्ञान की शलाका के ऐसे तीर्थोदक थे, जिसके स्पर्श मात्र से ही लोग प्रभावित हुए बिना नहीं रहते थे। उनकी वाणी में राष्ट्रभक्ति और जनकल्याण की अजस्त्र धारा निरन्तर बहती थी।

उपरोक्त तथ्यों के आलोक में यह बात स्पष्ट हो जाती है कि गांधी–दर्शन के बिना शांति और मानव अधिकारों की संकल्पना बेमानी होगी क्योंकि गांधी जी ने जिस इन्सानियत की बुनियादी अवधारणा का बीज बोया उसकी आधारशिला सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, शारीरिक श्रम, सादगी और सत्याग्रह पर आधारित थी। सत्याग्रह की व्याख्या करते हुए गांधीजी ने लिखा है सत्याग्रह का अर्थ है अपने घोर विपक्षी के सत्य में भी, उसकी संभावना में भी आस्था रखना। विश्व में यदि कहीं भी मानव अधिकारों की अवधारणा के संबंध में विमर्श व बहस होगी तो उनमें गांधी जी द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से जिक्र अवश्य होगा। यह सर्वविदित है कि गांधी जी का जीवन स्वयं अपने लिए नहीं था, बल्कि दूसरों के लिए समर्पित था। जिसका जीवन हमेशा दूसरों के लिए रहा हो, उससे अधिक परमार्थ व मानव अधिकार की बात करने वाला दूसरा कोई व्यक्ति हो ही नहीं सकता। उनके जीवन–दर्शन की मूल संकल्पना में व्यक्ति की गरिमा, प्रतिष्ठा और उसके सम्मान की बातें कूट–कूट कर भरी थीं। गांधी जी मनुष्य के रूप में अंग्रेजों से भी प्राणी होने के कारण प्रेमभाव रखते थे। उन्हें भारत में ही नहीं अपितु विश्व में शांति का अग्रदूत, दलितों का मसीहा तथा सेवाभाव को प्रेरित करने वाले जननायक के रूप में जाना जाता है। गांधी जी मानते थे कि शरीर सेवा के लिए प्राप्त है और हृदय आत्म दर्शन के लिए। गांधी जी ने अपने जीवन में केवल सत्य का प्रयोग ही नहीं किया बल्कि उसको जीया भी। उनका विचार था केवल सत्य बोलने से ही मनुष्य एवं विश्व का कल्याण नहीं होगा बल्कि उसे अपनी अंतरात्मा में रखते हुए सत्य को जीने की कला लानी होगी। ज्ञान और कर्म की साधना करने वाले तथा गीता के दर्शन को अपने जीवन की बुनियाद बनाने वाले गांधी की विचारधारा की जड़ में मानव अधिकारों की संकल्पना का बीज स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित होता है। अहिंसा

और सर्व–धर्मसमभाव की गांधी जी की अवधारणा मानव अधिकारों की आधार शिला है। यह अकारण नहीं है कि गांधी जी का सबसे प्रिय नरसी मेहता का निम्नांकित गुजराती भजन मानव अधिकार की ही गाथा कहता है:–

वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीड पराई जाणे रे।
पर दुःखे उपकार करे तोये, मन अभिमान न आणे रे।।
सकल लोकमां सहुने बंदे, निंदा न करे केनी रे।।
वाच काछ मन निश्चल राखे, धन धन जननी तेनी रे।
समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी, पर स्त्री जेने मात रे।
जिह्वा थकी असत्य न बोले, पर धन नव झाले हाथ रे।।
मोह माया व्यापे नहिं जेने, दृढ़ वैराग्य जेना मनमां रे।।
वणलोभी ने कपटरहित छे, काम क्रोध निबायां रे।
भणे नरसैंयो तेनुं दरसन करतां, कुल एकोतर तायां रे।।

प्रेमचन्द के साहित्य में मानवाधिकार का यथार्थ

* डॉ. अप्रमेय मिश्र

साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। चूंकि व्यक्ति या लेखक भी उस समाज का एक अभिन्न अंग होता है इसलिए किसी व्यक्ति विशेष के साहित्य को समग्रता से जानने के लिए उस के जीवन–वृत को जानना अति आवश्यक है। प्रेमचंद ने अपने जीवन के विभिन्न अनुभवों और समाज की प्रत्येक छोटी बड़ी घटना का गहरी सूक्ष्मता के साथ अवलोकन किया और उसे मनोवैज्ञानिक और यथार्थ के धरातल पर विश्लेषण करते हुए अपने साहित्य में अनुस्युत किया। उनके अपने अनुभवों की ही यह पूंजी हमारे समक्ष साहित्य के रूप में साक्षात् होती है। एक ओर जहां प्रेमचंद के साहित्य में स्वतंत्रता को पाने की देशवासियों की ललक दृष्टिगत होती है वहीं दूसरी ओर वे उस स्वतंत्र भारत की कल्पना करते समय स्वतंत्रतोपरान्त समाज के निम्न वर्गों, जातियों और समुदायों के समान अधिकार, उन्हें सुविधा सम्पन्न तथा शोषण करने वाले उच्च वर्गों के चंगुल से मुक्ति दिलाने और उनके अधिकारों के प्रबल पक्षधर प्रतीत होते हैं। उनका सम्पूर्ण साहित्य मानव अधिकारों के लिए दलित, शोषित, निम्न वर्गों का निरन्तर संघर्ष परिलक्षित होता है।

किसी व्यक्ति के साहित्य को यदि बारीकी से समझना हो, तो प्रथमतः समग्रता से उसके सम्पूर्ण साहित्य पर दृष्टि डालनी होगी और साथ ही साथ उसके जीवन यात्रा को भी देख लेना उचित होगा।

एक मायने में इस पर विवाद हो सकता है कि जीवन यात्रा का साहित्य से कोई नाता है अथवा नहीं, पर इसमें कोई संदेह नहीं कि अभी हमारे पास किसी व्यक्ति के साहित्य और उसके जीवन यात्रा के अलावा कोई और विकल्प नहीं है, जिससे की उसका मूल्यांकन किया जा सके। अतः उपरोक्त कथन हमारे लिए साहित्यिक मीमांसा हेतु

* संगीत विभाग से संबद्ध, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

अपरिहार्य हैं। प्रेमचंद की जीवनी मुख्यतया दो लोगों ने लिखी है एक तो मदन गोपाल जी की अंग्रेजी में लिखी हुई तथा दूसरी उनकी पुत्री द्वारा लिखी गई 'कलम का सिपाही' है। यदि प्रेमचंद के ही शब्दों को लें तो उन्होंने कहीं कहा है कि 'उनकी जिंदगी एक समतल–सपाट मैदान की तरह है। उनके कहने का आशय यह लगाया जा सकता है कि उनकी जिंदगी कहीं से भी किसी भी कोण से तवज्जो लायक नहीं है, एकदम साधारण है। परंतु उनके सम्पूर्ण साहित्य अथवा जीवन को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि यह उनकी विनम्रता अथवा संकोच ही है, जिसमें उनकी सत्यता, विनम्रता एवं संकोच के बादल से ढक सी गई है; कारण इतने गहन साहित्य का प्रणेता, जिसने ज़िंदगी में इतने उतार–चढ़ाव देखे हों वह सपाट और समतल नहीं हो सकता। हां एक मायने में सपाट और समतल होना उस खेत की तरह है जिसमें बीज बोने से पहले, झाड़–झंकार, ऊँच–नीच को झाड़–बुहार खोद कर समतल तैयार किया गया है–अच्छी फसल की पैदावार के लिए। बहरहाल, प्रेमचंद सन् 1881 ई. में एक साधारण परिवार में पैदा हुए। पिता डाकखाने में मुंशी थे। घर की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। प्रेमचंद जब नौंवी कक्षा में पढ़ रहे थे तभी उनके पिता का देहावसान हो गया। इस वक्त इनका विवाह भी हो चुका था, तथा पत्नी के अलावा उन पर विमाता और उनके दो बच्चों के भरण–पोषण की भी जिम्मेदारी थी। घर–परिवार की जिम्मेदारियों को चलाते हुए सन् 1910 ई. में प्रेमचंद ने इंटर की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। इसके अतिरिक्त मुदर्रिसी के साथ–साथ बी.ए. की डिग्री भी हासिल कर ली थी। बी.ए. पास कर लेने के पश्चात् संयुक्त प्रांत के शिक्षा विभाग में मुलाजिम हुए और 'डिप्टी इंस्पैक्टर ऑफ स्कूल्स' के पद तक पहुंचे। यहां यह बता देना आवश्यक जान पड़ता है कि नौकरी के दौरान जगह–जगह उनके तबादले हुए जिसका एक लाभ यह हुआ कि उन्हें तरह–तरह की जगहों और तरह–तरह के लोगों के अनुभव मिले। अनुभवों की यह पूंजी उनके साहित्य में बड़ी संजीदगी से दिखाई पड़ती है।

इस पूरे दौर में उनकी जिंदगी में और भी उतार–चढ़ाव आये। पत्नी की मृत्यु, बाल–विधवा शिवरानी से विवाह; श्रीपत, अमृत दो पुत्रों तथा बेटी कमला का जन्म, इसके अतिरिक्त बीच में ही नौकरी से इस्तीफा, इत्यादि–इत्यादि। इन सब घटनाओं में जो सबसे महत्वपूर्ण बात है वह यह कि ये सारी घटनाएं प्रेमचंद को विचलित न कर सकीं बल्कि उनके लेखन का कार्य जो मैट्रीकुलेशन के आस–पास शुरू हुआ था, तब तक बंद न हुआ जब तक की उनकी मृत्यु न आई। प्रेमचंद की मृत्यु 1936 ई. में हुई। प्रेमचंद का सम्पूर्ण साहित्य मानव केन्द्रित है, इस लिहाज से यदि उनके साहित्य का अवलोकन किया जाए तो प्रेमचंद और उनका मानव, प्रेमचंद के जन्म सन् 1881 ई. से लेकर उनकी मृत्यु 1936 ई. तक के मानव संबंधित यथार्थवादी साहित्य का एक जीवंत दस्तावेज है।

उनका पहला प्रकाशित कहानी–संकलन सोजे–वतन, देशभक्ति की कहानियों का संकलन है। उनका यह कहानी संग्रह तत्कालीन ब्रिटिश सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया था तथा उनका अंतिम कहानी संग्रह 'समर–यात्रा' शीर्षक से प्रकाशित हुआ।

प्रथम कहानी–संकलन की ही तर्ज पर इस अंतिम कहानी संग्रह में संकलित कहानियां भी भारत के स्वाधीनता–संग्राम से ही जुड़ी हुई हैं।

उपरोक्त कथन के आधार पर यह बात जाहिर होती है कि मानव अधिकार के बुनियादी तत्वों अर्थात् स्वतंत्रता की कशमकश प्रेमचंद में कूट–कूट कर भरी हुई थी और यह अंग्रेजी सियासत के बरक्स पूरे मुस्तैदी के साथ कलम के जरिये अहिंसात्मक क्रांति थी। इस सन्दर्भ में यहां यह कह देना अतिशयोक्ति न होगा कि कहानी के माध्यम से वह केवल स्वाधीनता संग्राम के लेखक ही नहीं, उसके उपज भी थे। भारतीय स्वाधीनता संग्राम के विविध पक्षों तथा उसके विविध आयामों से अपरिचित व्यक्ति मात्र उनके उपन्यासों एवं कहानियों के माध्यम से स्वाधिनता आंदोलन तथा उसके विभिन्न पहलुओं की जानकारी हासिल कर सकता है।

ऐसा कहा जाता है कि प्रेमचंद अपने आरंभिक दौर में कांग्रेस में गरम दल के प्रवक्ता, बालगंगाधर तिलक के उग्र–राष्ट्रवाद के पक्षधर थे किंतु कालांतर में गांधी जी के दक्षिण अफ्रीका से लौटने के बाद उनके चलाये गए राष्ट्रीय आंदोलनों से वह काफी प्रभावित हुए जिसके फलस्वरूप उनके लेखन में सांप्रदायिक एकता, स्त्री–उत्थान तथा हरिजन जैसे तत्वों का भी समावेश हुआ।

यहां यह बात भी विचारणीय है कि प्रेमचंद तत्कालीन उस स्वतंत्रता प्राप्ति से संबंधित उन तमाम विचारों से सहमत होते हुए भी स्वाधीनता आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में थोड़े अलग दिखाई पड़ते हैं। वे स्वयं 'जागरण' जैसे पात्रों के माध्यम से स्वाधीनता आन्दोलन के स्वरूप और चरित्र के गुणात्मक बदलाव की बात कर रहे थे। उन्हें इस बात की कसक थी कि अपने वर्ग चरित्र के चलते राष्ट्रीय आंदोलन का मुख्य नेतृत्व किस तरह किसान–मजदूर और साधरण जनता की जिन्दगी से जुड़े सवालों को हाशिए पर डाल कर स्वाधीनता आंदोलन को महज राजनीतिक स्तर पर, राजनीतिक सत्ता हस्तांतरण पर केन्द्रित कर राजनीतिक सत्ता भर हथियाना चाहता है। इस मायने में प्रेमचंद स्वतंत्रता के यथार्थ की बात तो बड़ी शिद्दत से दोहरा रहे थे। वह बार–बार अपने लेखों में यही कहते नजर आते हैं कि स्वाधीनता का आंदोलन केवल साम्राज्यवाद विरोध के मोर्चे पर ही न लड़ा जाय, वह सामंतवाद और पूंजीवाद–विरोध के मोर्चे पर भी समानान्तर लड़ा जाए। अगर यह लड़ाई इस तरह नहीं लड़ी गई तो भारत को सच्चे मायनों में स्वतंत्रता नहीं मिलेगी।

यह सत्य है कि जिस आजादी की परिकल्पना प्रेमचंद ने की थी वह उनके जीवनकाल में क्या अब भी साकार नहीं दिखती। इस मायने में भारत राजनीतिक तौर पर आजाद तो जरूर हुआ पर जिस सत्य की इच्छा प्रेमचंद की साधारण जनता, किसान–मजदूर, स्त्री, हरिजन इत्यादि को लेकर थी वह बाद में और भी जटिल होती चली गई। इस बात की प्रमाणिकता 'गबन' उपन्यास के पात्र देवीदीन खटिक की वाणी में देखी जा सकती है। वह अपने दो बेटों को आजादी की लड़ाई में गंवा चुका है।

आंदोलन के नेतावर्ग की आगामी जिन्दगी पर जो जो वह टिप्पणी करता है, महत्वपूर्ण है कि आजादी के बाद आप बड़े–बड़े बंगलो में रहोगे, हलवा–पूड़ी खाओगे, मजे उड़ाओगे, आज हमारी आंखों का सच बन चुकी है। समाज में आज भी गैर–बराबरी है, घोर गरीबी है और घोर अमीरी है। किसान, मजदूर, स्त्री, हरिजन, सब आज अपने अधिकारों के लिए लड़ रहे हैं।

अभी तक चले आ रहे सम्पूर्ण लेख में जिस बात पर हमें केन्द्रित होना है उस पर भी अब थोड़ा विचार कर लेना आवश्यक जान पड़ता है। मानवाधिकार को लेकर प्रेमचंद की परिकल्पना समग्र रूप से सत्य और यथार्थ पर ही अवलम्बित है। उनके साहित्य में अगर भारत के स्वाधीनता आंदोलन की बात कही गई है तो वह महज राजनैतिक स्वतंत्रता की बात नहीं है अपितु उस स्वतंत्रता की बात है जहां मानव–मानव की बात आती है। भारत तत्कालीन समय में जहां एक ओर गोरों के कारण अभिशप्त था, वहीं भारत की अधिसंख्य जनता देश के तमाम ऊंचे तबकों पर बैठे जमींदारों, सेठों साहूकारों से भी त्रस्त थी।

प्रेमचंद के साहित्य में सामाजिक जीवन के यथार्थ और साधारण जनता के जीवन–सन्दर्भो में समान मानव अधिकार की पहल को लेकर, किसान, स्त्री एवं हरिजन के संबंध में उनकी चिंता प्रमुख है। यह बात उल्लेखनीय है कि प्रेमचंद के समय में दिए गए उपरोक्त सन्दर्भों में निहित उनकी दृष्टि समग्र रूप से उस समय हो रहे घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में है। कहना न होगा कि प्रेमचंद जिस मानव–मानस की बात उजागर तथा (चाहे वह शोषित करने वाले व्यक्ति के विषय में अथवा जो शोषण कर रहा है उसके विषय में) क्रोध करना चाहते हैं वह दरअसल तत्कालीन घटनाओं का सहारा लेते हुए हमेशा से चले आ रहे मानवाधिकार के हनन के विषय की ओर इशारा करते हैं।

प्रेमचंद जिस किसान की बात अपनी कहानियों और उपन्यासों में लाते हैं वे धनी किसान नहीं हैं, छोटी जाति अथवा छोटे–पूंजी के किसान हैं और दरअसल जीवन की यही विचित्र विडम्बना है कि मानव संबंधित किसी भी क्षेत्र का छोटे वर्ग के साथ ही शोषण की प्रक्रिया अधिकांशतः जुड़ी रहती है।

प्रेमचंद के साहित्य में जो सबसे महत्वपूर्ण बात सामने आती है वह यह कि जहां वह एक तरफ शोषण के विरूद्ध अपनी कलम चलाते हैं, वहीं दूसरी तरफ शोषित वर्गों की तमाम कमजोरियों को भी नजर अंदाज नहीं करते। इस लिहाज से हम उनके साहित्य के किसान पात्रों के चरित्रों पर अगर नजर दौड़ाएं तो हम देख सकते हैं कि छोटी हो, शंकर हो, दुखी हो सब बाहरी संदर्भों के साथ अपनी प्रवृत्तिबद्धता तथा रूढ़िवाद के कारण भी अभिशप्त होते हैं। 'पूस की रात' का हल्कू अपने आलस्य के चलते अपनी फसल का विनाश देखता है और इसी से मिलती–जुलती स्थिति 'मुक्ति मार्ग' के उन पात्रों की भी है, जो अपनी व्यक्तिगत ईर्ष्या, द्वेष के चलते अपना विनाश देखते हैं।

मानवाधिकार के हनन अथवा उसके प्रायोजित स्वरूप के यथार्थ का मनोविज्ञान से बड़ा गहरा संबंध है। प्रेमचंद, इन दोनों तथ्यों को बखूबी समझते थे। दरअसल मानवाधिकार के हनन की जो घटनाएं घटती हैं, मुख्यतया दो वर्गों में विभाजित की जा सकती हैं। एक–वह जो किसी के द्वारा प्रायोजित रूप में प्रयोग में लायी जाती हैं, जैसे–हत्या, लूट, बलात्कार इत्यादि–इत्यादि। दूसरी वह जो सामाजिक व्यवस्था के हाथ उपजी हुई होती हैं उसमें हम शोषण, छूआ–छूत इत्यादि को रख सकते हैं।

शोषण, छुआ–छूत की प्रक्रिया समाज में एक तो खराब मानसिकता का परिणाम हो सकती है। अतः इसलिए वह फलती–फूलती है और दूसरी ओर, जिन पर इस तरह के शोषण हो रहे होते हैं उनका उस पर संघटित रूप से विरोध न करने के कारण भी हो सकते हैं, यह एक पक्ष है मानवाधिकार के हनन का, इस तरह के न जाने कितने ही कारण होते हैं जो इस तरह की विकृत घटनाओं के जन्म का कारण होती हैं। कुल मिला–जुलाकर मानवाधिकार समाज के परिप्रेक्ष्य में उनके अधिकारों के हनन के खिलाफ होने की प्रक्रिया में नहीं है, अपितु मानवाधिकार का क्षेत्र व्यक्ति के उन तमाम, गुणों के विकास से भी संबंधित है जिसमें कि समाज प्राकृतिक रूप से अपने विवेक, चातुर्य एवं कार्य प्रवीणता के जरिए, उन तमाम दुर्घटनाओं के बरक्स खड़ा हो सकता है जिससे कि मानवाधिकारों के हनन की संख्या में वृद्धि न हो और यही संकेत प्रेमचंद ने किसानों के माध्यम से कहना चाहा है, जिसे हम मानवाधिकार के संबंध में देख सकते हैं।

बौद्ध धर्म और मानव अधिकार

* सरोज कुमार शुक्ल

आज सम्पूर्ण विश्व में हिंसा, उन्माद, अशांति, घृणा और द्वेष का सर्वत्र बोल बाला है। इसके कारण न केवल अस्थिरता बढ़ रही है बल्कि विकास की गति भी धीमी हो रही है। यहां तक कि मानव के भविष्य पर ही प्रश्न चिह्न लग रहा है। आज हम भयानक क्षणों में जी रहे हैं और मनुष्य ही मनुष्य का दुश्मन बनता जा रहा है।

यदि हम इन चुनौतियों की ओर ध्यान दें और इसके निवारण के लिए अपनी प्राचीन परम्पराओं और विचारों की ओर नजर डालें तो हमारे सम्मुख भगवान बुद्ध के विचार ऐसे रत्न की भांति उपस्थित होते हैं जिनकी प्रकाश किरणों से हमारी बुद्धि भ्रम का अंधकार छट सकता है। लेखक की दृष्टि में भगवान बुद्ध की अनेक साधनाएं, विचार एवं ज्ञान मानव कल्याण के लिए मील के पत्थर हैं क्योंकि भगवान बुद्ध ने अहिंसावादी समाज की रचना के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भगवान बुद्ध ने कहा है कि घृणा से घृणा कभी समाप्त नहीं होती अपितु केवल प्यार से घृणा मिटती है।

आज के विश्व–पटल पर जो घटनाएँ हो रही हैं उनमें हिंसा के उन्माद और उससे उपजने वाली अशान्ति, घृणा और द्वेष का बोलबाला है। इसके फलस्वरूप न केवल अस्थिरता बढ़ रही है और विकास की गति मंद पड़ रही है बल्कि मानव के भविष्य पर ही प्रश्न चिह्न लग रहा है। सबके सुख, सबके निरोग रहने, सभी कल्याण की ओर अग्रसर हों और कोई भी दुखी न हो–ऐसी कामना हम हमेशा से करते रहे हैं। पृथ्वी, जल, अन्तरिक्ष, समाज, पशु, पक्षी, वनस्पति, सबके लिए शांति की मंगलकामना भी हम वैदिक काल से ही करते चले आ रहे हैं पर आज हम भयानक क्षणों में जी रहे हैं। मनुष्य ही मनुष्य का दुश्मन बनता जा रहा है।

आज मानव अधिकारों की रक्षा करना, मनुष्यता को बचाना और मानव–परिवेश को सुरक्षित रखना कठिन होता जा रहा है। इस पर यदि गौर से विचार करें तो स्पष्ट

* सहायक निदेशक, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, दिल्ली

हो जायेगा कि हमारी सोच में कहीं कमी आई है, अन्तराल आया है और हम गलत दिशा में भटक रहे हैं। सही या सम्यक् मार्ग क्या हो सकता है जिस पर चल कर समस्त मानव जाति का कल्याण हो? यह एक बड़ी चुनौती है और जिसका समाधान ढूंढने के लिए अपनी पारंपरिक विचारों की धरोहरों पर नजर डालें तो हमारे सामने भगवान बुद्ध के विचार ऐसे रत्न की भांति सामने आते हैं जिनकी प्रकाश–किरणों से हमारे मतिभ्रम का अन्धकार छंट सकता है।

महात्मा बुद्ध को ज्ञान की प्राप्ति हुए अर्थात् महानिर्वाण की स्थिति को आज दो हजार पांच सौ वर्ष से अधिक का समय बीत चुका है। परन्तु संघें (मठवासियों) ने बुद्ध की शिक्षा को शताब्दियों तक सुरक्षित रखा और उसके प्रचार–प्रसार में अपना संपूर्ण जीवन अर्पित कर दिया ताकि पृथ्वी पर रह रहे मनुष्यों को ज्ञान की प्राप्ति का सही रास्ता दिखाया जा सके। ज्ञान की परंपरा में यह एक क्रांतिकारी घटना थी जिसने मानव समाज के सम्मुख सम्यक् जीवन की नई शैली प्रस्तुत की।

बौद्ध–विचारों के प्रति समर्पित शिष्यों में अंगारिक धर्मपाल नाम का एक शिष्य भी था। श्रीलंका के इस सपूत ने सन् 1891 में भारत में महाबोधि सोसायटी नामक संस्था की स्थापना की और बौद्ध धर्म को पुनर्जीवित किया।

ज्ञान का अवतरण

दो हजार पांच सौ वर्ष पहले महात्मा बुद्ध ने पांच ब्राह्मण सन्यासियों और बनारस के पचपन श्रेष्ठ युवकों को धम्मा (धर्म) का उपदेश दिया। दीक्षा प्राप्त करने के पश्चात् जब वे शिष्य बन गए तो बुद्ध ने उन्हें इस धर्म की शिक्षा के प्रचारक के रूप में भारत के विभिन्न राज्यों में भेजा : "जाओ और श्रेष्ठ आचरण के इस सुसमाचार की घोषणा करो जो प्रारम्भ में मधुर है, यह मध्य और अंत में भी मधुर है, संसार के लिए अनुकंपा के रूप में देवताओं और मनुष्यों की खुशी तथा कल्याण के लिए इस धर्म का उपदेश दो। तुममें से दो साथ–साथ एक ही मार्ग पर न चलना।" महात्मा बुद्ध के उक्त उपदेश सर्व कल्याण से ओत प्रोत हैं और इन्सानियत की पीठिका तैयार करते हैं।

ज्ञान का प्रसार

श्रेष्ठ आचरण (शील) पर विशेष जोर देते हुए बुद्ध ने अपने सन्यासी शिष्यों से दस नियमों का कठोरतापूर्वक पालन करने के लिए कहा – जीव हत्या न करना, चोरी न करना, मद्यपान न करना, दोपहर में भोजन न करना, नाचना, गाना–बजाना और मनोरंजन के अन्य साधनों से परहेज करना, सौंदर्य वृद्धि हेतु मालाओं, इत्रों, प्रसाधनों आदि के प्रयोग से अलग रहना, अधिक मूल्यवान आसनों, शैय्या आदि का प्रयोग न करना और चांदी तथा सोने का इस्तेमाल न करना।

बौद्ध धर्म के प्रारंभिक काल में बुद्ध अपने शिष्यों के लिए एक पथ–प्रदर्शक

थे परन्तु बाद में बौद्ध धर्म में वे एक उद्धारक बन गए। उनकी ख्याति फैलती गई और उन्हें मनुष्यों के मुक्तिदाता के रूप में मान लिया गया अर्थात् उनकी कृपा से निर्वाण प्राप्त हो सकेगा।

बुद्ध ने जगह – जगह जाकर लोगों के साथ बैठकें कीं, उन्हें बौद्ध धर्म की शिक्षा प्रदान की और उन्हें अपना अनुयायी बनाया। उन्हें अपने धर्म के पक्ष में जनमत तैयार करने में अपार सफलता भी प्राप्त हुई। 45 वर्ष तक लगातार वे इस धर्म का सफलतापूर्वक प्रचार करते रहे ओर अंत में अस्सी वर्ष की आयु में उनका मल्लों के गणराज्य की राजधानी कुसिनारा में स्वर्गवास हो गया।

थेरवादी बौद्ध धर्म के अनुसार भगवान बुद्ध के जीवन में बैशाख की पूर्णिमा के दिन तीन घटनाएं घटीं। ये हैं – वृत्ति, प्रबोधन और परागमन।

बौद्ध धर्म द्वारा प्रस्तुत जीवन–दृष्टि

बुद्ध भगवान की अपने अहिसंक अनुयायियों के लिए यह सलाह है कि "घृणा से घृणा कभी समाप्त नहीं होती, अपितु केवल प्यार से घृणा मिटती है।" आधुनिक बमों के लिए एक मात्र उत्तर प्यार भरी दया है। यह संदेश मानव अधिकारों के लिए मील का पत्थर साबित हो सकते हैं।

यदि कोई पढ़ना–लिखना सीखना चाहता है, तो उसे क़िसी स्कूल में भर्ती होना पड़ेगा। इसी तरह से शरीर को स्वस्थ और मजबूत बनाए रखने के लिए किसी व्यायामशाला में जाना पड़ेगा। योग एवं प्राणायाम सीखने के लिए किसी योग की पाठशाला में जाना पड़ेगा। ठीक इसी तरह विपासना की तकनीक, जो कि बुद्ध भगवान के उपदेश का सारतत्त्व है, को सीखने के लिए किसी विपासना योगध्यान केन्द्र में जाना होगा।

विपासना : मानव कल्याण का प्रशस्त मार्ग

यदि ध्यानमग्नता का उद्देश्य केवल मन को एकाग्र करना है, तो व्यक्ति को योग ध्यान की तकनीक सीखनी चाहिए, जिसके लिए वह किसी गुरु से ध्यान एकाग्रता का मंत्र अथवा बिम्ब (प्रतिरूप) प्राप्त करे। इसका अभ्यास घर पर भी किया जा सकता है। इस तकनीक से मन शान्त हो जायेगा, मन की एकाग्रता प्राप्त होगी और यहां तक कि मन की सतह भी शुद्ध होगी। परन्तु विपासना से केवल मन की सतह ही शुद्ध नहीं होती, अपितु यह तो एक प्रकार से मन का गहरा मंथन है, शल्य क्रिया के समान। यह मन को उसके अन्तःकरण में पैठकर परिशुद्ध करता है, क्योंकि वही जगह ऐसी है जहां से मन कलुषित होता है और उसी को शुद्ध करना जरूरी होता है। ये कलुषित भावनाएं मन की गहराई में असंख्य योनियों में, जन्म–जन्मान्तरों में संचित रहती हैं। जो लोग पिछले जन्म में विश्वास नहीं करते उनके बारे में यही कहा जा सकता है कि

ये कलुषित भावनाएं इस जीवन के दौरान संचित होती हैं। मन की गहराई में, अर्थात् अन्तर्मन में कलुषित भावनाओं के इस तरह के प्रादुर्भाव के फलस्वरूप यह मन इनका गुलाम बन जाता है। वास्तव में यह एक महान बन्धन है। इसीलिए व्यक्ति को मन के इस बन्धन से मुक्ति पानी है और कलुषित भावनाओं के जन्म जन्मांतर पर बढ़ते स्वरूप को बदलना है। अतः इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए मन को बहुत अच्छी तरह से परिशुद्ध करना अत्यावश्यक है, ऐसे ही जैसे किसी रोग को दूर करने के लिए शल्यक्रिया की जरूरत होती है।

इसलिए इसे किसी भी प्रकार के दूषित वातावरण से मुक्त स्थिति में ही ठीक तरह से सीखा जा सकता है। इसके लिए केवल पर्यावरणीय अथवा वायुमंडलीय दूषित वातावरण से ही अलग नहीं होना चाहिए, अपितु मन की कलुषित भावना के परिणामस्वरूप उत्पन्न दूषित वातावरण से भी बचना चाहिए।

व्यक्ति विपासना की तकनीक को केवल, नैतिक जीवन जी कर तथा सबको मानवीय गरिमा देकर ही सीख सकता है। नैतिक जीवन मन पर नियंत्रण रखकर जिया जा सकता है। मन पर विजय पाने व मन को शुद्ध करने के लिए व्यक्ति का जीवन नैतिकता पर आधारित होना चाहिए। मनुष्य को ऐसी कोई मुखर या भौतिक क्रिया नहीं करनी चाहिए, जिससे कि दूसरों की शांति भंग हो ओर उनके सुखचैन में बाधा पड़े। अन्तर्मन से कोई कार्य करने के लिए व्यक्ति के लिए एक ऐसी स्थिति चाहिए जिसके अन्तर्गत कलुषित भावनाओं के वेग के बढ़ने पर भी वह दोलायमान न हो, वे भावनाएं बढ़ने न पाएं और मन में कलुष के ज्वार आन्दोलित न होने पाएं। विपासना की स्थिति में व्यक्ति क्षण–क्षण में स्वयं के बारे में सच्चाई के दर्शन करता है।

उपसंहार

'बुद्ध', अर्थात् जिसे ज्ञान प्राप्त हो चुका है, भारत की समग्र चिन्तनधारा के ऐसे प्रतीक हैं जिनकी छवि आज भी अक्षुण्ण है। आज के जटिल समय में जहाँ प्रतियोगिता, हिंसा, अपराध और लोभ सिर ऊपर उठा रहे हैं, बुद्ध के वचन हमें मानव अधिकारों की रक्षा में श्रेयस्कर मार्ग के अवलम्ब के साथ हमारे सामने आते हैं। शांति, सहयोग और सौहार्द की त्रिवेणी ही आज वेदना से छटपटाती मानवता की पीड़ा हर सकती है। मानव अधिकारों के प्रति समर्पित होने के लिए बुद्ध वचनों से श्रेष्ठ विचार कोई और नहीं हो सकता क्योंकि ये वैज्ञानिक और पंथ–निरपेक्ष (सेक्युलर) हैं। हम आशा करते हैं कि बुद्ध के इन संदेशों से परिपूरित जीवन–शैली में ही मानवता का भविष्य सुरक्षित हो सकेगा और इसी में जीवन की संभावना निहित है।

भारतीय सिनेमा और मानवाधिकार

* हेमन्त राज पटेल

साहित्य के समान सिनेमा भी समाज का दर्पण है। ऐसे में सिनेमा में मानव अधिकारों की चर्चा होना स्वाभाविक है। समाज में विद्यमान प्रत्येक बड़ाई और मानवीय दृष्टि से क्रूर घटनाओं को फिल्मकारों ने बड़ी सहजता से पर्दे पर उतार कर फिल्मों को यथार्थता से जोड़ने का प्रयास किया है।

ज्वलंत सामाजिक विषयों को पर्दे पर दिखाने का प्रयास का क्रम 1935 में व्ही. शांताराम की फिल्म 'अमर ज्योति' से आरंभ होता है, जिसमें स्त्री–पुरुष के अधिकारों की समानता का मुद्दा उठाया गया था। इसी क्रम में इस परम्परा को आगे के निर्देशकों जैसे श्याम बेनेगल, गोविंद निहलानी, ऋषिकेश मुखर्जी, प्रकाश झा आदि ने आगे बढ़ाया जो वर्तमान युग की 'ट्रैफिक सिग्नल', 'कार्पोरेट' और 'ब्लैक फ्राइडे' जैसी फिल्मों में देखने को मिलती है। मानव अधिकारों को पर्दे पर उतारने के दो कारण हैं:– पहला यह कि निर्देशक और फिल्मकार अपनी फिल्म के माध्यम से समाज को संदेश देने का प्रयास करते हैं। यह व्यक्ति विशेष से नहीं अपितु आम जनता को समग्र रूप से एक दिशा देने का प्रयास है। दूसरा कारण है कि जिन मानव अधिकारों का संरक्षण हम वास्तविक जीवन में नहीं देख पाते उन्हें पर्दे पर देखकर आम जनता वास्तविक जीवन में संभव करने की प्रेरणा एवं आशा महसूस करती है।

सिनेमा को समाज में गूंजने वाली ध्वनियों की प्रतिध्वनि माना जाता है। रूपहले परदे की कहानी समाज के बीच से होकर ही निकलती है। ऐसे में सिनेमा में मानवाधिकारों की चर्चा होना लाजिमी है। भारत की विडंबना कहें या सामाजिक विसंगति 'वसुधैव कुटुंबकम' व 'सर्वे भवंतु सुखिनः' की भावनाओं से ओत प्रोत यह देश मानवीय दृष्टि से क्रूर घटनाओं से भरा पड़ा है। छुआछूत, धार्मिक–जातिगत भेदभाव, सामंतवाद, बालविवाह, सती प्रथा, भ्रष्टाचार जैसी तमाम बुराइयों को जड़ से उखाड़ फेंकने का

* 2–भरत नगर, न्यु फ्रेंड्स कॉलोनी, नई दिल्ली–110025

दम भरने वाली प्रजातांत्रिक सरकारी मशीनरी होने के बावजूद आज 21वीं सदी में भी इनसे मुक्ति नहीं मिली है। 1950 में संविधान के निर्माण व मानवाधिकारों की सूची बनने के बाद भी आज आबादी के एक बड़े हिस्से को अपने अधिकारों की समुचित जानकारी उपलब्ध नहीं है।

ये कुछ ऐसे मुद्दे हैं जिनकी तपिश में मानव अधिकार पिघलते रहे हैं। यही तपिश जब कुछ फिल्मकारों के जहन में बेचैनी पैदा करती है तो बैंडेट क्वीन, गंगाजल, वॉटर, ब्लैक, आक्रोश, निशांत, पार, तमस, गर्महवा, मम्मो, मैं जिंदा हूं, दो बीघा जमीन, दुनिया न माने, दो आंखे बारह हाथ, मदर इंडिया, मंडी, बाजार व मातृभूमि जैसी फिल्में हमारे सामने आती हैं, जो सामाजिक परंपराओं व आर्थिक सुधारों की ओट में आम आदमी के मानवीय अधिकारों के कत्ल की गवाह बनती हैं।

चालीस के दशक से ही मानवाधिकारों की सुरक्षा व तत्कालीन परिस्थितियों को लेकर सिनेमा आवाजें उठा रहा है। वहीं शांताराम ने तो 1935 में अपनी फिल्म 'अमर ज्योति' के माध्यम से 'स्त्री व पुरुष के अधिकारों की समानता' का मुद्दा तब उठाया था जब संवैधानिक रुप से भी ऐसी कोई व्यवस्था नहीं थी। सत्तर के दशक में जब फ्रांस के 'न्यू वेब सिनेमा' की लहर भारत आई तो श्याम बेनेगल, गोविंद निहलानी, मणि कौल, एस.एस. सथ्यू, ऋषिकेश मुखर्जी, बासु भट्टाचार्य, गौतम घोष, बुद्धदेव दास गुप्त, अडूर गोपाल कृष्णन, प्रकाश झा, सई परांजपे व सुधीर मिश्रा जैसे निर्देशक मानव जीवन की त्रासदियों व उसके मूल अधिकारों के हनन की कहानी को बेबाकी से सिनेमा के परदे पर लेकर आए।

मानव अधिकारों का सबसे पहला व मूल अधिकार है 'जीने का अधिकार' यानि मनुष्य का इच्छानुसार जीवन व्यतीत करने व उसके विकास का अधिकार। इसके अंतर्गत 'कन्या भ्रूणहत्या', गर्भपात, व 'इच्छामृत्यु' जैसे संवेदनशील मुद्दों से जुड़े अधिकारों को शामिल किया गया है। हमारे समाज में कन्या को बोझ जाना जाता रहा है और पुत्र को 'कुलदीपक'। हालांकि सूचना प्रसार व सुधारवादी आंदोलनों के चलते यह धारणा कम हुई है लेकिन आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में ऐसी (कु) रीतियाँ विद्यमान हैं जिनके चलते कन्या के जनमते ही उसे विष देकर, सांस रोककर या दूध में डुबोकर खत्म कर दिया जाता है। इस विषय पर यूनेस्को की रिपोर्ट बताती है कि भारत में पिछले सौ सालों में तकरीबन पैंतीस करोड़ भ्रूण हत्याएं हुई हैं। इस रिपोर्ट को आधार बनाकर निर्देशक मनीष झा ने 'मातृभूमि–ए नेशन विदाउट वोमेन' का निर्माण किया था जो उस कड़वी सच्चाई की वीभत्सता को हमारे मन मस्तिष्क में उड़ेल देती है।

यह फिल्म एक ऐसे गांव की कहानी है जहां कन्या के जन्म लेते ही उसे परंपरानुसार दूध से भरे पात्र में डुबो दिया जाता है। अब इस गांव में एक भी स्त्री नहीं है। ऐसे में पास के गांव में 'कालकी' नामक लड़की का पता चलता है। और फिर कालकी की शादी होती है, एक नहीं पांच भाइयों से और यहां से शुरु होता है पुरुष की बंद

दैहिक वासनाओं के फूटने का सिलसिला। कुछ दृश्यों में तो कालकी 'स्त्री' न होकर 'साधन' मात्र बनकर रह जाती है। कालकी जब इस आमनवीय परिस्थिति से लड़ते–लड़ते टूट जाती है तो वह एक निम्न जाति के नौकर के जरिए वहां से भागने का प्रयास करती है लेकिन पकड़ी जाती है। यहां से दो जातियों के वर्चस्व की जंग शुरु होती है जो उस पर कहर बनकर टूटती है। 'गौशाला' में बंधी गांव की एकमात्र स्त्री पर दोनों जातियों के लोग बारी–बारी से अपने पुरुषत्व की जोर आजमाइश करने आते हैं। परदे पर चलती यह फिल्म एक साथ कई सवाल हमारे लिए छोड़ जाती है। स्त्री के जन्म लेने का अधिकार, पुरुष समाज में उसके जीने का अधिकार, यौन जीवन की निज़ता व चुनाव का अधिकार, सभी अपनी निर्बलता की कहानी बयां करते हैं। श्याम बेनेगल की 'हरी–भरी' भी इसी कड़ी का एक हिस्सा है जो स्त्री के यौन जीवन व प्रजनन संबंधी अधिकारों पर खुलकर चर्चा करती है।

संविधान में यह प्रावधान किया गया है कि प्रत्येक मनुष्य को अपनी 'जीविका उपार्जन की स्वतंत्रता का अधिकार' मिलना चाहिए। किसी भी तरह की बंधुआ मज़दूरी, स्त्री–पुरुष में विभेद व कार्यस्थल पर यौन अतिक्रमण से सुरक्षा के अधिकार प्रत्येक नागरिक को दिए गए हैं। जीविका के अधिकार पर विमल राय की फिल्म 'दो बीघा जमीन' (1957) एक बेहतरीन उदाहरण है। शम्भू की अपनी दो बीघा जमीन उसकी जीविका का एकमात्र साधन है लेकिन साहूकार अनपढ़ शम्भू से वह जमीन छीनना चाहता है। साहूकार के कर्ज के चंगुल से अपनी जमीन को बचाने के लिए शम्भू कोलकाता आ जाता है। पैसा कमाने के लिए यहां वह रिक्शा चलाने लगता है और अंत में एक धनी आदमी की प्रेमिका के रिक्शे का पीछा करते हुए शम्भू हादसे का शिकार हो जाता है। उसका एकमात्र सपना उसकी जमीन शम्भू से छीन ली जाती है। सामंतवाद पर प्रहार करती यह फिल्म जीविका के प्रदत्त अधिकार व यथार्थ में उसे हासिल करने की जंग का प्रतिनिधित्व करती है। मधुर भंडारकर जैसे निर्देशक आज भी 'ट्रैफिक सिग्नल' व 'कार्पोरेट' जैसी फिल्मों के जरिए इन मुद्दों को उठाते रहते हैं। 'ट्रैफिक सिग्नल' जहां लाल बत्ती पर होने वाले रोजगार व उससे जुड़े लोगों के जीवन की परतें खोलती है वहीं 'कार्पोरेट' हाई सोसायटी के बिजनेस के तौर तरीकों के बीच स्त्री की स्थिति व उसके 'यूज' होने की कहानी कहती है।

रोटी, कपड़ा और मकान आम आदमी की मूलभूत आवश्यकताएँ हैं जिन्हें संयुक्त राष्ट्र की मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा (1948) में भी शामिल किया गया है और भारतीय संविधान में भी। लेकिन अधिकारों की घोषणा मात्र करने से उनकी सार्थकता सिद्ध नहीं होती। इस यथार्थ की पुष्टि सिनेमा 'अशनि संकेत' (सत्यजीत रे), 'अकालेन संधाने' (रित्विक घटक), 'मदर इंडिया' (महबूब) जैसी फिल्मकृतियों के माध्यम से करता है, जो अकाल व भूख में तड़पते लाखों मनुष्यों की लाचारी पर जमींदारों, साहूकारों व राजनैतिक गठजोड़ों की तफ्तीश करती हैं।

मनुष्य जन्म से अपराधी नहीं होता बल्कि परिस्थितियां उसके अपराधी बनने के लिए जिम्मेदार होती हैं। इसलिए मानव अधिकारों का हनन करने वाले अपराधी भी मानवता की कसौटी पर अपने 'मानवीय अधिकारों' का लाभ उठा सकते हैं। अंडर ट्रायल केसों में होने वाली अमानवीय क्रूरता से सुरक्षा के उपाय संविधान में किए गए हैं। अपराधियों के जीवन पर व्ही. शांताराम ने 1957 में 'दो आंखे बारह हाथ' का निर्माण किया था जिसमें एक जेलर छह कैदियों को गांधीवादी आदर्श 'पाप से घृणा करो पापी से नहीं' के माध्यम से सुधारने का संकल्प लेता है। ऐसा ही प्रयास वास्तविक जीवन में करने वाली 'किरन बेदी' को मैगसेसे पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। अपराधियों को अपनी सुरक्षा के अधिकार न दिए जाएं तो स्थिति कितनी भयानक हो सकती है इसकी बानगी प्रकाश झा की फिल्म 'गंगाजल' में देखने को मिलती है जो 1980 में बिहार की भागलपुर जेल में घटित 'अंखफोड़वा कांड' की सच्ची घटना पर आधारित है। इसमें जेल में बंद कैदियों को निजी रंजिश के चलते आंखों में तेजाब डालकर अंधा कर दिया गया था। संविधान प्रत्येक मनुष्य को ऐसे किसी भी अमानवीय कृत्य से सुरक्षा के अधिकार सुनिश्चित करता है।

मानव अधिकारों की कड़ी में एक और महत्वपूर्ण अधिकार है जिस पर सिनेमा में काफी ज्यादा काम हुआ है यह है 'धर्म की आजादी का अधिकार'। किसी भी व्यक्ति को अपने धर्म को मानने, उसका प्रचार प्रसार करने व उसके संरक्षण का अधिकार है। यह पूर्णतया व्यक्तिगत विषय है। भारत में तकरीबन 80 प्रतिशत हिंदू, 12 प्रतिशत मुसलमान, 2.1 प्रतिशत सिख, 1.8 प्रतिशत इसाई व 6 प्रतिशत बौद्ध हैं। इस बहुधर्मी देश में यह अधिकार तब और प्रासंगिक हो जाता है जब हम इसके अतीत पर नजर डालते हैं। बंटवारे के बाद हिंदू–मुसलमान के बीच अविश्वास का जो बीज पनपा था उसका फल आज तक हम भोग रहे हैं। 1992 में बाबरी मस्जिद विध्वंस, 1993 में हुए मुंबई बम धमाके व अभी गुजरात में हुआ गोधरा कांड जैसे हादसे धर्म के नाम पर हुई लाखों बेगुनाह मौतों के चश्मदीद गवाह हैं। सिनेमा ने धर्म से जुड़े आम आदमी के अधिकारों को '1947 अर्थ', मम्मो, गर्महवा, तमस, व पिंजर के जरिए सशक्त रूप से उठाया है। एक तरफ अनुराग कश्यप की 'ब्लैक फ्राइडे' है जो मुंबई बम धमाकों का खुला दस्तावेज है तो दूसरी तरफ राहुल ढोलकिया की 'परजानिया' है जो गोधरा कांड के दौरान एक पारसी परिवार की त्रासदी की सच्ची घटना पर बनी है।

जब धार्मिक उन्माद अपने चरम पर होता है तो मानव अधिकारों की दीवारें रेत की तरह ढ़ह जाती हैं। ये फिल्में धर्म के नाम पर अधिकारों के इस खोखलेपन को उजागर करती हैं, सभी समाज के ठेकेदारों को धर्म से जुड़े मानवाधिकारों की सुरक्षा के लिए एक मजबूत व बेहतर विकल्प तलाशने का संकेत भी करती हैं।

संविधान में 73वें संशोधन के जरिए यह व्यवस्था की गयी थी कि 'दलितों व महिलाओं को राजनीति में बराबर की हिस्सेदारी' हासिल हो सके। इसके तहत पंचायत

चुनाव में एक तिहाई सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित कर दी गयी हैं इस विषय पर बंगाली निर्देशक अनन्या चटर्जी ने 2003 में 'द्वितीय पक्ष' नाम से फिल्म का निर्माण किया था, जिसमें सरकारी प्रावधान के चलते श्यामा को ग्राम प्रधान बनने का अवसर मिलता है। फिल्म श्यामा में अपने ससुर के हाथों की कठपुतली होने से लेकर अपने वास्तविक अधिकारों को हासिल करने की कहानी है।

वास्तव में आज भी समाज ने सदियों तक अपने अधिकारों से वंचित नारी व दलित को दिए गये संवैधानिक अधिकारों को पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं किया है। इसका जीता जागता सबूत छत्तीसगढ़ के रायगढ़ जिले में देखने को मिलता है जहां लता साहू नामक निम्न जाति की महिला जब पंचायत चुनाव में यादव जाति की महिला उम्मीदवार के सामने खड़ी हो जाती है तब उसे उसकी 'गलती' का सबक सिखाने के लिए सारे गांव में नग्न करके घुमाया जाता है और बेइज्जत किया जाता है।

मानव अधिकारों की व्यवस्था करके 'प्रत्येक मनुष्य के लिए विकास के समान अवसरों की उपलब्धता' का जो बीज डाला गया है उसके फल तब तक मीठे नहीं होंगे जब तक बीज के सुनिश्चित व सुरक्षित अंकुरण की व्यवस्था नहीं की जाएगी।

आयोग के कुछ महत्वपूर्ण निर्णय

"उड़ीसा में तेंदु पत्तों को तोड़ने वालों की स्थिति नामक अनुसंधान प्रोजेक्ट, मानव विकास सोसाइटी, नई दिल्ली द्वारा उनकी सामाजिक–आर्थिक स्थितियों का अध्ययन" से प्रकट हुई संस्तुतियाँ :–

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग द्वारा सोसाइटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 के अंतर्गत पंजीकृत एक गैर–सरकारी संगठन मानव विकास सोसायटी (एच डी एस), नई दिल्ली को उड़ीसा में तेंदु पत्तों को तोड़ने वालों की स्थिति – बच्चों और बंधुआ मजदूरी प्रथा के विशेष संदर्भ में उनकी सामाजिक–आर्थिक स्थिति का अध्ययन" नामक अनुसंधान प्रोजेक्ट सौंपा गया।

मानव विकास सोसाइटी द्वारा प्रेषित अध्ययन रिपोर्ट पर राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने विचार किया और तेंदु पत्तों को तोड़ने वालों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति को सुधारने हेतु उड़ीसा सरकार को निम्नलिखित संस्तुतियाँ भेजी।

1. कुछ तेंदु पत्ता तोड़ने वालों के पास अपने प्लकर काड्र्स (Plucker Cards) नहीं हैं। इस प्रथा से उन्हें अपने श्रम को रिकार्ड कराने के अधिकार से वंचित रखा जा रहा है। इसलिए यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि प्रत्येक तेंदु पत्ता तोड़ने वालों को प्लकर कार्ड जारी किए जाएं।

2. 14 वर्ष की कम आयु के बच्चों को प्लकर कार्ड जारी किए गए हैं। यह एक गंभीर मामला है क्योंकि ऐसे में सरकार स्वयं ही बाल श्रमिकों की नियुक्ति कर रही है। संविधान की धारा 21 (क) के अंतर्गत 14 वर्ष की आयु के कम उम्र के बच्चों को इस कार्य में नहीं लगाना चाहिए और उन्हें स्कूल भेजा जाना चाहिए।

3. पत्ता तोड़ने वालों को समय पर भुगतान नहीं किया जाता जिससे साहूकार के पास अपना प्लकर कार्ड गिरवी रखने जैसी कुप्रथा को बढ़ावा मिलता है। अतः राज्य सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि पत्ता तोड़ने वालों को समय पर भुगतान किया जाए। सरकार को निधियों की पर्याप्त उपलब्धता सुनिश्चित करने हेतु भी कदम उठाने चाहिए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि भुगतान होने में किसी तरह की देरी न हो।

4. अनुसंधान प्रोजेक्ट के निष्कर्षो से यह पता लगता है कि इससे होने वाले लाभ को उन क्षेत्रों में निवेश किया जा रहा है जहाँ तेंदु पत्ते की तुड़ाई नहीं होती। उड़ीसा सरकार को इस पर पुनर्विचार कर ऐसी कार्यप्रणाली तैयार करनी चाहिए जिससे राज्य के सामान्य राजस्व में इस लाभ को न डाला जाए और इस लाभ

को ऐसे क्षेत्रों के मूलभूत ढाँचे के सुधार और विकास में लगाना चाहिए जहाँ तेंदु पत्तों की तुड़ाई होती है।

5. इस अनुसंधान से यह भी पता चलता है कि जैसे–जैसे पत्ता तोड़ने वालों की संख्या बढ़ रही है वैसे–वैसे उनकी आय कम हो रही है, इसलिए सुझाव है कि इस क्षेत्र में रोजगार को बढ़ावा देने के लिए सरकार को अन्य विकास कार्यक्रमों पर ध्यान देना चाहिए ताकि ऐसे समय में जब कृषि में रोजगार के अवसर कम हों या मंदी का समय हो, तो लोगों के पास रोजगार के वैकल्पिक साधन उपलब्ध हों।

6. मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ और आंध्र प्रदेश राज्यों में अंगीकृत पद्धति कई वर्षों से अच्छे ढंग से काम कर रही है। इन राज्यों के अनुभवों को देखते हुए उड़ीसा राज्य भी इन राज्यों की भांति सहकारी ढाँचे को अपना सकता है। ऐसा होने पर तेंदु पत्ता तोड़ने वालों को न केवल अपनी मज़दूरी मिलेगी बल्कि तेंदु पत्तों से होने वाले लाभ का भाग भी वे प्राप्त कर सकेंगे। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने उपर्युक्त राज्यों के मॉडल को अपनाने की संस्तुति की है क्योंकि इससे उपरिलिखित (1) से (5) तक की संस्तुतियों को पूरा करने में सहायता मिलेगी।

आयोग ने 14 मार्च 2007 को उपर्युक्त संस्तुतियों को कार्यान्वयन हेतु मुख्य सचिव, उड़ीसा सरकार को प्रेषित किया।

हिरासतीय न्याय के बारे में विज्ञान भवन नई दिल्ली में (30–31 मार्च 2006 को) आयोजित दो दिवसीय सेमिनार की संस्तुतियाँ

पुलिस की प्राथमिक जिम्मेदारी नागरिकों के जान–माल और स्वतंत्रता की रक्षा करना है। दांडिक न्याय प्रणाली, इन अधिकारों की रक्षा सुनिश्चित करने के लिए है। जब कोई व्यक्ति हिरासत में होता है तो वह राज्य की हिरासत में माना जाता है और इसलिए, उसके मानवाधिकार सुरक्षित रहें, यह प्रत्यक्ष रूप से राज्य की चिंता एवं उत्तरदायित्व का विषय बन जाता है। व्यक्तियों को पुलिस स्टेशन में, जेल में, न्यायिक हिरासत में, किशोर अपराधी गृहों में एवं मानसिक रूप से विक्षिप्त व्यक्तियों के लिए नियत गृहों में रखा जाता है। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने दांडिक सुधार एवं न्याय प्रशासन (पी आर ए जे ए) के सहयोग से दिनांक 30–31 मार्च, 2006 को विज्ञान भवन, नई दिल्ली में न्यायिक हिरासत विषय पर दो दिवसीय कार्यशाला आयोजित की। इस सेमिनार का मुख्य उद्देश्य इस तथ्य को उजागर करना था कि हिरासतीय प्रताड़ना को रोका जा सकता है और यह कि हिरासत में लोगों के अधिकारों की रक्षा करना राज्य का दायित्व है।

विचार–विमर्श के उपरांत उपर्युक्त सेमिनार से जो प्रमुख सिफारिशें सामने आयीं, उन्हें दो शीर्षों के अंतर्गत रखा जा सकता है। इनमें से पहली पुलिस ढांचें से संबंधित और दूसरी कारागार से संबंधित है।

पुलिस ढांचा

पुलिस हिरासत में पूछताछ के दौरान मानवाधिकारों का उल्लंघन होता है जिसके परिणामस्वरूप मृत्यु और शारीरिक यातना दी जाती है।

पुलिस हिरासत में होने वाली मृत्यु और हिंसा पर निगरानी रखने वाली संस्था के रूप में, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने जाँच–पड़ताल के लिए नजरबंद लोगों के प्रति वैज्ञानिक, व्यावसायिक और मानवीय दृष्टिकोण अपनाने पर बल दिया है।

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, यह सिफारिश करता है कि जाँच–पड़ताल शीघ्रता से और एक निश्चित समयावधि में किए जाने की आवश्यकता है। डी. के. बसु बनाम पश्चिम बंगाल मामले में निर्धारित, हिरासत में लेने संबंधी दिशा–निर्देशों का पालन किया जाना चाहिए। इसके साथ ही, जाँच–पड़ताल के कार्य में और हिरासत में रखे गए व्यक्ति के हिरासतीय प्रबंधन में वरिष्ठ नेतृत्व को शामिल किए जाने की तत्काल आवश्यकता है। जाँच–पड़ताल के दौरान शारीरिक यातना को रोकने के लिए वैज्ञानिक

तकनीकों एवं न्यायिक विज्ञान का पूर्ण इस्तेमाल किया जाना चाहिए। जाँच–पड़ताल कौशल में पुलिस प्रशिक्षण सभी प्रकार की जाँच पड़ताल के लिए अनिवार्य है।

अल्पसंख्यकों, बच्चों एवं महिलाओं के प्रति होने वाले अपराध से संबंधित आंकड़ों का विश्लेषण करने पर यह पता चलता है कि इन पर विशेष ध्यान दिए जाने और शीघ्रता से निपटाए जाने की जरूरत है। अतएव, इन मामलों की प्रत्येक पखवाड़े में निगरानी किए जाने की जरूरत है।

हिरासत में होने वाले मानवाधिकारों का किसी भी तरह का उल्लंघन सहन नहीं किया जाना चाहिए। जिन मामलों में पुलिस कार्मिकों के दुर्व्यवहार अथवा दोष की पुष्टि हो जाती है, उनमें यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि लगाया गया हर्जाना उनके दुर्व्यवहार/दोष के अनुसार हो।

पुलिस कार्मिकों को जाँच–पड़ताल और कानून एवं व्यवस्था के लिए दो पक्षों में बांटने की अति आवश्यकता है। तद्नुसार, जाँच–पड़ताल प्रक्रिया में विशेषज्ञता देने के लिए कार्मिकों को प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। इससे निश्चित रूप से मामलों के शीघ्र निपटान में सहायता मिलेगी।

उपर्युक्त परिपाटी को अपनाने के लिए, प्रशिक्षण को सतत प्रक्रिया के रूप में लिया जाना चाहिए और इसे पुलिस कार्मिकों की मानसिकता और मनोवृत्ति को परिवर्तित करने के प्रयोजन के रूप में उपयोग किया जाए।

कारागार :

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने यह पाया है कि विचारणाधीन कैदियों की संख्या दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। कारगारों में उनके पड़े रहने की अवधि भी काफी लम्बी है। कुछेक मामलों में मानव अधिकार आयोग ने यह पाया है कि विचारणाधीन कैदी 20 से 54 वर्षों से न्यायिक हिरासत में है जो किसी भी धारा के अंतर्गत निर्धारित दंड से बहुत अधिक है।

अतएव, मानव अधिकार आयोग न केवल उन विचाराधीन कैदियों, जिन्होंने अपने कारावास की अवधि पूरी कर ली है, को छोड़ने के संबंध में विचारणाधीन कैदियों की तत्काल पुनरीक्षा करने के बारे में सिफारिश करता है बल्कि यह निम्नलिखित के अलावा कारागारों में भीड़–भाड़ को कम करने के बारे में सिफारिश करता है :–

क) मामलों के शीघ्र निपटारे के लिए कारागारों में नियमित रूप से विशेष अदालते चलाने की प्रणाली तैयार करना।

ख) न्यायिक अधिकारियों को जमानत याचिकाओं पर सावधानीपूर्वक विचार करने और हिरासत में उत्पीड़न की किसी भी संभावना का निराकरण करना होगा।

इसी प्रकार, सभी न्यायिक कार्यों में त्वरित विचारण सुनिश्चित करने पर बल देना चाहिए। इसमें गवाहों को समन भेजना और उनसे जिरह करना शामिल है। अन्वेषण एजेंसियों, जहां आवश्यक हो, विधिक सहायता प्रदान करने का विशेष प्रयास करें।

ग) जिला मजिस्ट्रेट, एस एस पी, और न्यायिक अधिकारियों द्वारा कारागारों का निरीक्षण औपचारिकता मात्र नहीं होना चाहिए और उन्हें मामलों को शीघ्र निपटाने के लिए किए गए प्रयासों को रिकार्ड करना चाहिए। यदि कैदी ने अपनी सजा की आधी या दो तिहाई अवधि पूरी कर ली है तो विचाराधीन कैदियों को बॉण्ड पर छोड़ने जैसे अभिनव तरीके भी अपनाए जाने चाहिए।

सजायाफ्ता कैदियों को हिरासत से मुक्त किये जाने के बाद, उनके लिए विकास विभागों के साथ मिलकर सुधार और पुनर्वास कार्य की रूपरेखा तैयार करनी चाहिए और उन्हें ऐसा कौशल प्रदान करना चाहिए जो उन्हें बेहतर रोज़गार अवसर उपलब्ध करा सकें। देश के विभिन्न भागों में इस तरह के बढ़िया उदाहरण देखे गए हैं और इन्हें प्रोत्साहित किये जाने की आवश्यकता है। विशेष प्रकार के मामलों में जहाँ मुख्य उद्देश्य उनमें सुधार करना है, राज्य सरकारों को उन्हें कौशल प्रदान करने के विशेष प्रावधानों को अपनाने पर आग्रह किया जाना चाहिए जिससे पुनर्वास के बेहतर अवसर उपलब्ध हो सकें।

महिलाओं, वृद्धों और मानसिक रूप से रूग्ण कैदियों के लिए कारावास की स्थिति को ज्यादा से ज्यादा मानवीय बनाया जाना चाहिए।

मानसिक रूप से रूग्ण कैदियों की नियमित स्वास्थ्य जांच और विशेष प्रावधान जेल की व्यवस्था में गौण होते जा रहे हैं। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, राज्य सरकारों का ध्यान आकृष्ट करना चाहेगा कि वे यह सुनिश्चित करें कि मानसिक रूप से रूग्ण कैदियों को अलग रखा जाए और उन्हें आवश्यक चिकित्सा सुविधाएं प्रदान की जाएं।

मैला ढ़ोने की प्रथा का उन्मूलन

मानव मल को हाथों से उठाने की अमानवीय एवं अपमानजनक प्रथा, जो कि मानव प्रतिष्ठा पर प्रहार है और मानव अधिकारों संबंधी एक बहुत बड़ा विषय है, की ओर राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का ध्यान गया है। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने इसे एक बहुत बड़ी सामाजिक कुरीति माना है और अपने स्थापना काल से ही आयोग इस अमानवीय प्रथा को समाप्त करने के संबंध में प्रयासरत रहा है।

केन्द्र सरकार ने 24 जनवरी 1997 को सिर पर मैला ढ़ोने वाले व्यक्तियों के रोजगार और शुष्क शौचालय निर्माण (निषेध) अधिनियम, 1993 अधिसूचित किया। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग देश में सिर पर मैला ढ़ोने की अपमानजनक प्रथा को समाप्त करने की आवश्यकता पर प्रबल तरीके से कार्य कर रहा है। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के अध्यक्ष द्वारा क्रमबद्ध व्यक्तिगत हस्तक्षेपों के माध्यम से केन्द्र और राज्य सरकारों के उच्चतम अधिकारियों के साथ इस मामले पर विचार किया गया है।

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने राज्य सरकारों के साथ कई बैठकें आयोजित कीं। केन्द्र और राज्य सरकारों के प्रतिनिधियों तथा अन्य साझेदारों के साथ राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के कार्यकारी अध्यक्ष की अध्यक्षता में सिर पर मैला ढ़ोने के उन्मूलन विषय पर नई दिल्ली में 18 मार्च 2007 को इसी प्रकार की एक बैठक हुई थी। बैठक में व्यापक विचार–विमर्श करने के पश्चात् राज्यों / केन्द्र सरकारों के संबद्ध प्राधिकारियों द्वारा कार्यान्वयन / अनुवर्ती कार्रवाई के लिए निम्नलिखित सिफारिशें उभर कर आई:–

1. सभी राज्यों को हाथ से मैला उठाने या सिर पर मैला ढ़ोने की अमानवीय प्रथा के पूर्ण उन्मूलन के लिए 2007 की लक्षित तिथि तक कार्य पूरा कर लेना चाहिए। हालांकि इस तिथि का मार्च 2009 तक विस्तार करने का विचार किया जा रहा है। यह उचित समय है तथा बिना समय गंवाए राज्यों को इस अधिनियम को अपनाना चाहिए। उन राज्यों, जिन्होंने इस अधिनियम को नहीं अपनाया है, के मामले में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग गंभीरता से विचार करेगा।

2. सिर पर मैला ढ़ोने वाले व्यक्तियों की पहचान के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में भी नवीन सर्वेक्षण करवाया जाएगा और सिर पर मैला ढ़ोने वाले पहले से पहचाने गए 3.4 लाख व्यक्तियों के पुनर्वास की समानान्तर कार्रवाई चलती रहेगी।

3. सिर पर मैला ढोने वाले व्यक्तियों के लिए योजना (एस. आर.एम.एस.) के अंतर्गत सिर पर मैला ढ़ोने वाले व्यक्तियों की पहचान, क्षमता निर्माण, रोजगार संयोजन, अन्य कार्यक्रमों के साथ अभिसरण तथा पुनर्वास की प्रक्रिया में शुरू से अंत तक गैर सरकारी संगठनों को शामिल करना। कैबिनेट द्वारा स्वीकृत एन.एस.एल.

आर. एस. योजनाओं को, जिन्हें अब सिर पर मैला ढ़ोने वाले व्यक्तियों के पुनर्वास के लिए योजनाएं (एस.आर.एम.एस.) के नाम से जाना जाता है, में जोर दिया था कि एस.आर.एम.एस. को राज्य सरकारों के माध्यम से कार्यान्वित किया जाए।

4. उपयुक्त पुनर्वास योजनाओं को निष्पादित एवं मॉनीटर करने की आवश्यकता है। सभी राज्य सरकारों को केवल पुनर्वास के लिए ही प्रयास नहीं करने चाहिए बल्कि सिर पर मैला ढोने वाले पहचाने गए व्यक्तियों की समाज में स्वीकार्यता एवं उनका पुनः एकीकरण भी सुनिश्चित करना चाहिए।

5. राज्य सरकारों को शुष्क शौचालयों को पानी वाले शौचालयों में बदलने के लिए तिमाही लक्ष्य निर्धारित करने चाहिए।

6. योजना के अंतर्गत स्वच्छ शौचालयों के परिवर्तन/निर्माण के कार्य को चुने गए गैर सरकारी संगठनों को सौंपा जाना चाहिए, जिनके पास अनुभव, मानव शक्ति, संरचना, सुविज्ञता, विश्वसनीयता हो। सरकार को उन गैर सरकारी संगठनों की एक सूची तैयार करनी चाहिए जो इन मानदण्डों को पूरा करते हों।

7. प्रेरक अभियानों सहित सूचना, शिक्षा तथा संचार (आई ई सी) के लिए अलग से प्रावधान होना चाहिए। ग्रामीण साफ–सफाई के मामले में इसी प्रकार के प्रावधान हैं। यह सुझाव दिया गया था कि शहरी साफ–सफाई के मामले में भी इसे समान रूप से शामिल किया जाना चाहिए।

8. राज्यों द्वारा सिर पर मैला ढ़ोने वाले व्यक्तियों के बच्चों के लिए प्राथमिक स्तर पर शिक्षा देने के लिए आवश्यक कदम उठाए जाने चाहिए।

9. इसे अधिक व्यवहार्य बनाने के लिए विद्यमान आर्थिक छूट योजना की जांच किए जाने की आवश्यकता है।

10. नगर निकायों के पास अधिक जन–सुविधाओं के निर्माण के लिए विस्तृत योजना होनी चाहिए।

11. सिर पर मैला ढ़ोने वाले विमुक्त किए गए व्यक्तियों को उनकी रूचि के व्यवसाय में प्रशिक्षण देने की आवश्यकता है।

12. स्व–रोजगार उद्यमों को प्रारंभ करने के लिए मुक्त किए गए सिर पर मैला ढ़ोने वाले व्यक्तियों के लिए बैकों द्वारा उदार ब्याज दरों पर ऋण दिया जाए।

13. सिर पर मैला ढ़ोने वाले व्यक्तियों के बच्चों के लिए अच्छी तथा उत्कृष्ट स्कूली शिक्षा के साथ–साथ, उनके बच्चों के लिए छात्रवृत्ति जारी रखने को सुनिश्चित करने की आवश्यकता है। पुनर्वास के प्रयासों से वैकल्पिक रोजगार, आश्रितों की बेहतर शिक्षा एवं उनका पूर्ण पुनः एकीकरण होना चाहिए।

14. शहरी आवास एवं गरीबी उपशमन मंत्रालय (एम. एच. यू. पी. ई.) को नई योजनाओं की स्वीकृति का कार्य शीघ्र पूरा करना चाहिए ताकि तद्नुसार कार्रवाई की जा सके।

15. शुष्क शौचालयों का विकल्पः– अधिरचना, जिसे लागत के भाग के रूप में नहीं माना गया था, इसे अब लागत में जोड़ा जाता है।

16. राज्यों का निकट से मॉनीटर करने पर, विद्यमान सर्वेक्षण से संकेत मिला है कि उत्तर प्रदेश, बिहार और पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों में अभी भी बड़ी संख्या में शुष्क शौचालय हैं।

17. उन नगर निकायों को जिन्होंने शुष्क शौचालयों को नहीं हटाया है केन्द्र सरकार की निधियों से वंचित करना चाहिए क्योंकि निधियां देने के मामले में यह एक मानदण्ड है।

18. जल–आपूर्ति के प्रयासों के विस्तार की आवश्यकता है क्योंकि शुष्क शौचालयों को पानी वाले शौचालयों में बदलना केवल सिर पर मैला ढ़ोने के उन्मूलन के लिए ही नहीं बल्कि सामान्य स्वच्छता के लिए भी आवश्यक है।

19. सुलभ इंटरनेशनल की तर्ज पर मानव मल से ऊर्जा प्राप्त करने की तकनीक का विस्तार होना चाहिए।

20. यदि आवश्यक हो अपराध दण्ड संहिता की धारा 133 के अंतर्गत उन व्यक्तियों को दण्डित किया जाए जिन्होंने शुष्क शौचालयों को पानी वाले शौचालयों में परिवर्तित नहीं किया है।

21. शहरी विकास निकायों, जिन्होंने सिर पर मैला ढ़ोने की बुराई को समाप्त करने तथा सिर पर मैला ढ़ोने वाले विमुक्त किए गए व्यक्तियों और उनके परिवारों का पुनर्वास करने में शत् प्रतिशत परिणाम प्राप्त किए हैं, के लिए पुरस्कार योजना तैयार करना।

आयोग ने 10 अप्रैल 2007 को आयोजित अपनी बैठक में उपर्युक्त सिफारिशों को स्वीकार किया था। सिफारिशों को अनुवर्ती कार्रवाई के कार्यान्वयन के लिए सभी राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों को भी भेज दिया गया था।

मानसिक अस्पताल में रोगियों की मृत्यु के मामलों के बारे में आयोग के दिशा–निर्देश

11 नवम्बर 1997 के अपने आदेश द्वारा उच्चतम न्यायालय ने राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग से आगरा, ग्वालियर और रांची के मानसिक अस्पतालों की मॉनीटरिंग तथा महिला संरक्षण गृह, आगरा की मॉनीटरिंग से संबंधित कार्य के पर्यवेक्षण में शामिल होने का अनुरोध किया।

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने मानसिक अस्पतालों अर्थात् आर.आइ.एन.पी.ए.एस, रांची, आई.एम.एच.एच., आगरा और जी.एम.ए. ग्वालियर से रोगियों की प्राकृतिक कारणों से मृत्यु के संबंध में अथवा अप्राकृतिक कारणों अर्थात् नरहत्या अथवा आत्महत्या के विषय में समय–समय पर प्राप्त रिपोर्टों पर संज्ञान लिया है। मृत्यु की रिपोर्टिंग में अपनाई गई कार्रवाई / प्रक्रिया ने कई अनसुलझे प्रश्न छोड़ दिए हैं जिनके लिए परिहार्य पत्र–व्यवहार की आवश्यकता है। मृत्यु की रिपोर्टिंग में तीन अस्पतालों द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया को मानकीकृत करने की दिशा में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने भविष्य में अनुपालन के लिए निम्नांकित दिशा–निर्देश प्रतिपादित किए हैं:–

(क) संस्थान में होने वाली रोगी की प्राकृतिक अथवा अप्राकृतिक, प्रत्येक मृत्यु के विषय में आयोग को तत्काल अवश्य सूचित किया जाना चाहिए।

(ख) मृत्यु के प्रत्येक मामले में शव परीक्षा अवश्य करायी जानी चाहिए। प्रत्येक मामले में अस्पताल का निदेशक शव परीक्षा रिपोर्ट में उल्लिखित मृत्यु के कारण को ध्यान में रखते हुए जांच करेगा।

(ग) अप्राकृतिक मृत्यु अर्थात् आत्महत्या अथवा नर हत्या के मामलों में।

   (i) यदि विवादस्पद मृत्यु अप्राकृतिक मृत्यु हो अथवा मृत्यु की परिस्थितियां किसी धोखे का संदेह उत्पन्न करती हैं तो, संस्थान का निदेशक, एक वरिष्ठ डॉक्टर की अध्यक्षता वाले अधिकारियों के बोर्ड द्वारा मामले के सभी संगत पहलुओं की जांच का आदेश दे सकता है।

   (ii) कोर्ट की जाँच रिपोर्ट को प्रबंधन समिति की समय–समय पर होने वाले सांविधिक बैठकों में विचार–विमर्श करने तथा जांच के निष्कर्षों के विषय में उसकी संतुष्टि के पश्चात् ही अंतिम रूप दिया जाना चाहिए।

   (iii) नरहत्या अथवा आत्महत्या के सभी मामलों में जाँच करने वाले अधिकारियों के बोर्ड को पर्यवेक्षी स्टाफ के दायित्वों के विषय में भी विचार करना चाहिए तथा इस संबंध में स्पष्ट निष्कर्ष देना चाहिए।

(घ) प्राकृतिक मृत्यु अर्थात् बीमारी के कारण हुई मृत्यु अथवा कोई दुर्घटना, जो कि मृतक की मानसिक दशा के कारण उसकी ओर से हुई लापरवाही से हुई हो के मामलों में:–

(i) निदेशक को शव–परीक्षा रिपोर्ट का परीक्षण करने के पश्चात् जाँच रिपोर्ट राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग को भेजनी चाहिए।

(ii) यदि शव–परीक्षा रिपोर्ट में विस्तृत जाँच के उचित कारण दिए गए हों अथवा मृतक के परिवार से कोई शिकायत प्राप्त हो तो उपर्युक्त (ग) में दी गई प्रक्रिया का अनुपालन किया जाना चाहिए।

आयोग की मॉनीटरिंग के अंतर्गत आने वाले सभी तीनों मानसिक अस्पताल अर्थात् आर.आई.एन.पी.ए.एस. रांची, आई एम.एच.एच. आगरा और जी एम.ए. ग्वालियर, उपयुक्त दिशा–निर्देशों का पालन कर रहे हैं।

समीक्षा

पुलिस कर्मियों के लिए मानवाधिकार संबंधी उपयोगी पुस्तक

* अंजली सिन्हा

शासन व्यवस्था की एक अनिवार्य इकाई पुलिस होती है। राज्य में शांति और अमन कायम करने तथा अपराध नियंत्रित कर नागरिकों के जान–माल की सुरक्षा करने के लिए उसकी जरूरत पड़ती है। वस्तुतः किसी भी देश की संप्रभुता इस बात से ही आंकी जाती है कि वहां शांति तथा कानून–व्यवस्था का राज है। लोक जीवन में कानून–व्यवस्था बहाल करने, शांति का राज कायम रखने की जिम्मेदारी स्वाभाविक रूप से पुलिस तंत्र की होती है। कार्य निष्पादन के लिए उनके पास प्रायः विशेषाधिकार होते हैं जिनकी शक्ति उन्हें अपराधों की रोकथाम और अमन–चैन कायम करने में समर्थ बनाती है। इसलिए जैसे–जैसे अपराधों की आवृत्ति में वृद्धि होती है, उनके स्वरूप में परिवर्तन होता है, प्रायः वैसे–वैसे पुलिस के निरोधी अधिकार भी बढ़ते जाते हैं। पुलिस को अधिकार संपन्न बनाने के पीछे देश की शासन व्यवस्था का मकसद भले ही अपराध नियंत्रण और शांति की बहाली हो, ऐसे उदाहरण भी कम नहीं हैं जब पुलिसकर्मी अपने विशेषाधिकारों के मद में निरंकुश न हो उठते हों और स्वयं कानून के राज को धता बताते हुए मानवाधिकारों का हनन करने लगते हों। अधिकार हनन की प्रवृत्ति की वजह से ही समाज में पुलिस की एक सीमा तक नकारात्मक छवि बनी हुई है।

यह कोई नवीन प्रवृत्ति नहीं है, न ही ऐसी चीज़ जिससे नीतिगत निर्णय लेने वाले लोग और स्वयं शीर्ष पुलिस व्यवस्था अवगत न हों। वस्तुतः वास्तविक जीवन में अनेक मर्तबा कानून और व्यवस्था साथ–साथ नहीं चल पाते। अनेक मर्तबा शांति और व्यवस्था की रक्षा करने के क्रम में पुलिसकर्मी कानून अपने हाथ में ले लेते हैं। ऐसी स्थिति में सर्वप्रथम मानवाधिकारों की उपेक्षा होती है और मनुष्य को नैसर्गिक अधिकारों से वंचित कर उसके साथ पाशविक व्यवहार होने लगता है।

इसी तथ्य को ध्यान में रखकर पुलिस और अर्धसैनिक बलों के प्रशिक्षण कार्यक्रम में मानव अधिकार को अनिवार्य विषय के रूप में शामिल किया गया है ताकि आरंभ में ही उन्हें नागरिकों के नैसर्गिक अधिकारों से अवगत कराया जा सके, न केवल अवगत कराया जाए बल्कि यह तथ्य उनके मनोमस्तिष्क में स्थापित कर दिया जाए कि इन्हीं अधिकारों का संरक्षण और संवर्धन व्यावहारिक जीवन में कर्त्तव्यपालन के दौरान उनका अभीष्ट होना चाहिए। लेकिन इस दिशा में एक बड़ा अवरोध मानवाधिकारों की सम्यक जानकारी देने वाली पाठ्य सामग्री के अभाव के रूप में उपस्थित होता है। भारतीय पुलिस सेवा से संबद्ध रहे डॉ0 एस. सुब्रह्मण्यम को अपने सेवाकाल के दौरान पाठ्य

* स्वतंत्र पत्रकार, समीक्षक, बी–339, केन्द्रीय विहार, सेक्टर 51, नोएडा (उ0प्र0)

सामग्री के अभाव से अनिवार्य रूप से रूबरू होना पड़ा होगा जिसने उन्हें अंततः अवकाशग्रहण करने के उपरांत 'पुलिस और मानवाधिकार' नामक पुस्तक के सृजन के लिए प्रेरित किया होगा।

इस तरह डॉ0 एस. सुब्रह्मण्यम द्वारा प्रणीत 'पुलिस और मानवाधिकार' शीर्षक पुस्तक, दोनों के अंतर्संबंध अथवा अंतर्द्वंद्व को लेकर किसी किस्म की वैचारिक बहस नहीं छेड़ती, यह उसका अभीष्ट भी नहीं है। पुस्तक का अभीष्ट, जैसा कि 'प्राक्कथन' में भी कहा गया है, पुलिस और अर्धसैनिक बलों के कार्मिकों के प्रशिक्षण कार्यक्रमों में 'मानव अधिकार' विषय पर स्तरीय पाठ्य पुस्तक की आवश्यकता पूरी करना है। इस ध्येय की पूर्ति के लिए पुलिसकर्मी के बतौर जीवन आरंभ करने वाले और सेवारत पुलिसकर्मियों को जितनी और जिन बातों की जानकारी होनी चाहिए उनका संकलन इस पुस्तक में करने की कोशिश की गई है। पुस्तक अपने इस घोषित अभीष्ट की पूर्ति में किस हद तक सफल रहती है, इसका मूल्यांकन करने से पूर्व आइये देखें इसकी अंतर्वस्तु में क्या चीजें शामिल हैं।

155 पृष्ठों की इस किताब को 10 अध्यायों में विभक्त किया गया है। साथ में एक परिशिष्ट भी है जिसमें संविधान के भाग 3 में उल्लिखित मौलिक अधिकारों को प्रस्तुत किया गया है। 'लोकतंत्र में पुलिस सेवा' नामक पहले अध्याय में जहां यह बताने की कोशिश की गई है कि 'लोकतंत्र' नाम वाली शासन व्यवस्था वस्तुतः होती क्या है और उसकी क्या विशेषताएं होती हैं, वहीं लोकतांत्रिक व्यवस्था में पुलिस प्रणाली कैसी हो तथा उसके क्या गुण–धर्म हों इनकी भी विवेचना की गई है। 'मानव अधिकारः एक सिंहावलोकन' शीर्षक दूसरे अध्याय में संक्षेप में वैश्विक स्तर पर तथा भारतीय परिप्रेक्ष्य में भी मानवाधिकारों के विकास क्रम की चर्चा की गई है। इस अध्याय में उन अधिकारों को भी सूचीबद्ध किया गया है जिन्हें संयुक्त राष्ट्र ने नागरिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों के रूप में मान्यता दी है। यहां भारत में मानवाधिकारों की संकल्पना के विकास–क्रम का वर्णन भी संक्षिप्त रूप में किया गया है जिसमें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा सन् 1895 में तैयार किए गए भारतीय संविधान बिल (होमरूल दस्तावेज़) में शामिल नागरिक अधिकारों से लेकर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की ही पहल पर गठित मोतीलाल नेहरू रिपोर्ट, 1928 तथा 1931 के कराची कांग्रेस में पारित मूल अधिकार एवं सामाजिक संकल्प का वर्णन यहां मिलता है। इस अध्याय में आगे चलकर जनवरी 1950 में पारित भारतीय गणतंत्र के संविधान की प्रस्तावना और आगे भाग–3 में शामिल मौलिक अधिकारों का भी संक्षिप्त वर्णन किया गया है।

'दंड न्याय प्रणाली' शीर्षक तीसरे अध्याय का विषय इसके बारे में समुचित जानकारी की उम्मीद जगाता है लेकिन पुस्तक में इसे बहुत संक्षेप में समेट दिया गया है। यदि प्रशिक्षु और सेवारत पुलिस कर्मियों को दंड न्याय प्रणाली की विस्तृत और समुचित जानकारी दी जाती तो वह उनके व्यावहारिक जीवन में दायित्व निर्वहन के

क्रम में काफी उपयोगी होता। 'दंड न्याय प्रशासन में मानव अधिकार' नामक चौथा अध्याय दरअसल पिछले अध्याय का ही विस्तार है। इस अध्याय में संविधान तथा दंड प्रक्रिया संहिता की विभिन्न धाराओं में वर्णित अभियुक्तों के मानवाधिकारों को चुनकर एक जगह संगृहीत किया गया है। साथ ही, पीड़ितों के मानवाधिकारों, उन्हें प्राप्त संरक्षणों का विवरण भी यहां है। कहना न होगा कि न्याय प्रशासन वस्तुतः पीड़ितों के अधिकार रक्षण का ही दूसरा नाम है, किंतु दंड न्याय प्रशासन के क्रम में भी अधिकार हनन की संभावना बनी रहती है। उससे बचाव के लिए जो प्रावधान किए गए हैं उनका उल्लेख भी यहां है।

'हिंसा : कारण और निदान' शीर्षक पांचवां अध्याय पुस्तक का दूसरा सबसे बड़ा अध्याय है जिसमें हिंसा को जन्म देने वाले सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, व्यावसायिक और प्रशासनिक कारणों के बारे में बताया गया है। साथ ही इसमें हिंसा निवारण के नैदानिक उपायों की भी चर्चा है। लेकिन अध्याय का सर्वाधिक बड़ा हिस्सा संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा द्वारा पारित 10 दिसंबर, 1984 को अंगीकृत 'यातना और क्रूर, अमानवीय एवं अपमानजनक व्यवहार अथवा दंड के विरुद्ध अनुबंध' की पुनर्प्रस्तुति में लगाया गया है। बावजूद इसके यहां यह उल्लेख नहीं है कि भारत ने इस अनुबंध पर हस्ताक्षर कर दिया है अथवा नहीं।

छठे अध्याय का शीर्षक है – 'विधि प्रवर्तकों से संबंधित आचार संहिता'। इस अध्याय में कानून लागू करने वाले पुलिस अधिकारियों के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा बनाई गई आचार संहिता के अलावा पुलिस हेतु भारतीय आचार संहिता का भी वर्णन है। दोनों ही आचार संहिताओं का फलक व्यापक है और उनमें आग्नेयास्त्रों के इस्तेमाल से लेकर हवालात में बंद कैदियों पर नियंत्रण और उनसे संबंधित रिपोर्टिंग प्रविधि तक का उल्लेख है।

अगला अध्याय 'कैदियों के अधिकारों' पर केंद्रित है। यह पुस्तक का सर्वाधिक बड़ा अध्याय (लगभग 40 पृष्ठ) भी है। लेकिन यहां भी संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा अपनाए गए संकल्प की पुनर्प्रस्तुति में ही सारे पृष्ठ खपा दिए गए हैं। कहीं भारतीय जेल अधिनियम के प्रावधानों और उसमें किए गए संशोधनों का संक्षिप्त उल्लेख तक नहीं है। और तो और, कारागार सुधार के लिए भारत सरकार ने अलग–अलग समय पर जो समितियाँ गठित की, उनकी रिपोर्ट, अनुशंसाओं, उनमें से कौन–सी लागू की गईं; और कौन सी लागू होने से रह गईं, और किन वजहों से; इसका कोई उल्लेख इस अध्याय में नहीं मिलता।

आठवें अध्याय में जहां आंतरिक सुरक्षा संबंधी कार्रवाइयों के क्रम में मानव अधिकारों की चर्चा है, वहीं नौवें अध्याय में पाठकों को राष्ट्रीय मानव अधिकर, उसके कार्यक्षेत्र, भूमिका, शक्तियों के साथ–साथ राज्य मानव अधिकार आयोग तथा मानव

अधिकार न्यायालय के बारे में सूचनाप्रद जानकारी दी गई है। अंतिम अध्याय 'पुलिस तथा अर्धसैनिक बलों को मानव अधिकार प्रशिक्षण' पर केंद्रित है। इस अध्याय में लेखक ने मानव अधिकार प्रशिक्षण की आवश्यकता को अपरिहार्य बताते हुए प्रशिक्षण प्रविधि का भी संक्षिप्त उल्लेख किया है।

आरंभ में उल्लेख किया जा चुका है कि इस पुस्तक का अभीष्ट पुलिस और अर्धसैनिक बलों को मानव अधिकारों संबंधी प्रशिक्षण हेतु सूचनाप्रद जानकारी मुहैय्या कराना है। अपने इस ध्येय में यह पुस्तक 'अंशतः' सफल होती है। 'अंशतः' इसलिए कि अनेक स्थानों पर सूचनाएं अधूरी रह गई हैं और उनको पूरा करने का प्रयास नहीं किया गया है। स्रोत और संदर्भ सामग्री के लिए अधिकाधिक संयुक्त राष्ट्र जैसे बाह्य निकायों पर निर्भर रहा है और भारतीय संदर्भ अनेक मर्तबा उपेक्षित रह गए हैं। कई बार यह भी नहीं बताया जा सका है कि संयुक्त राष्ट्र के जिन संकल्पों की पुनर्प्रस्तुति में जो इतने पृष्ठ प्रयुक्त किए गए हैं, उन संकल्पों को भारत ने अंगीकार कर लिया (हस्ताक्षर कर दिया) है अथवा नहीं।

यह पुस्तक मूलतः अंग्रेजी में लिखी गई थी। हिंदी अनुवाद बढ़िया है, लेकिन जैसा कि हम जानते हैं, अनूदित कृति मौलिक कृति का स्थानापन्न नहीं हो सकती। इसीलिए, पाठ के बीच–बीच में ऐसे शब्द या वाक्यांश / वाक्य भी मिलते हैं जो अप्रचलित और अग्राह्य हैं और कोश तक सिमट कर रह गए हैं, जैसे : विसामान्य, मतिमंश, उपधारणा आदि। कई बार जानकारियों की पुनरावृत्ति दृष्टिगोचर होती है जिनसे हर हाल में बचा जाना चाहिए ताकि पुस्तक बोझिल और उबाऊ न होने पाए। यह भी सही है, और ऊपर रेखांकित किया जा चुका है कि इन कुछ कमियों के बावजूद पुस्तक अभीष्ट सिद्धि में काफी हद तक सफल है।

पुस्तक : पुलिस और मानवाधिकार
लेखक : डॉ0 एस. सुब्रह्मण्यम
प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली
संस्करण : 2007; पृ0 सं0 155; मूल्य : 150/– रुपए

राष्ट्रीय सरोकारों से जुड़े मानवीय प्रश्न

* उषा जैन

आज सम्पूर्ण विश्व में आतंकवाद, धार्मिक कट्टरता एवं अंधराष्ट्रवाद जनित हिंसा आदि के खतरे सर्वत्र मंडरा रहे हैं। ऐसी स्थिति में सभी राष्ट्रों की यह नैतिक जिम्मेदारी बनती है कि वह अपने नागरिकों के साथ–साथ देश में आने वाले आगन्तुकों की रक्षा करें तथा उसके लिए एक मानक निर्धारित करें।

प्रस्तुत पुस्तक उपर्युक्त विषय पर केन्द्रित मानव अधिकार एवं राष्ट्रीय सुरक्षा, प्रो० राजेन्द्र प्रसाद द्वारा संपादित एक सूचनाप्रद, उपयोगी एवं विषय वस्तु की सीमाओं से भरपूर उपयोगी पुस्तक के रूप में हमारे सामने आई है। इस पुस्तक में मानव अधिकारों से जुड़े समसामयिक विषयों पर केंद्रित विभिन्न विद्वानों के लेख संगृहीत हैं। प्रस्तुत पुस्तक के संपादक का रक्षा अध्ययन से गहरा ताल्लुक रहा है और वे इस विषय के अधिकारी विद्वान भी हैं।

पुस्तक का पहला लेख स्वयं संपादक का है जिसमें उन्होंने अनन्त ब्रह्माण्ड को परिधि में रखकर मानव अधिकार और वैश्विक चुनौतियों पर अपनी लेखनी चलाई है। उनकी सोच है कि जब तक इंसान, जीयो और जीने दो के नैसर्गिक सिद्धान्त को नहीं अपनाएगा तब तक हमें अपने जीवन में निराशा, कुंठा, विपत्ति, उत्पीड़न और हिंसा की भयानक त्रासदी को झेलना ही पड़ेगा। लेखक का यह भी मानना है कि आज संचार प्रौद्योगिकी का जमाना है और इसी में हमारा अपना सारा संसार सिमटा हुआ है। उन्होंने इस सिकुड़न को वैश्विक ग्राम की संज्ञा दी है। लेखक की यह भी चिन्ता है कि मानव कल्याण कैसे हो। इस संदर्भ में लेखक ने शक्ति सम्पन्न राष्ट्रों को यह सलाह दी है कि वे अपनी शक्ति का अधिक से अधिक प्रयोग मानव कल्याण और मानव अधिकारों की चेतना को बढ़ाने में करें।

पुस्तक के दूसरे लेख में मानव अधिकार की नई संकल्पनाओं को केन्द्र में रखकर, उससे जुड़ी संवेदनाओं को तलाशने व तराशने की कोशिश की गई है। लेखक का मानना है कि मानव अधिकार तभी सुरक्षित रह सकता है जब हम अलग–अलग संदर्भों में सम्पूर्ण विश्व में वसुधैव कुटुम्बकम की अवधारणा को विकसित करने का प्रयास करें। लेखक ने इस लेख में मार्क्स के सिद्धान्त को भी मानव अधिकारों के आंदोलन को आगे ले जाने में एक कड़ी के रूप में देखा है। इस संदर्भ में उसने मार्क्स और गांधी के विचारों की तुलनात्मक व्याख्या करते हुए एक नई जीवन पद्धति को विकसित करने का प्रयास किया है। लेखक की दृष्टि में मन्द बुद्धि और विवेक की स्वतंत्रता में अन्तर होता है और यदि तीनों एकाकार हो जाएं तो व्यक्ति का अपने अंदर निहित अधिकारों की संकल्पना पर स्वयं का अधिकार हो जाता है।

* 96, एमआईजी फ्लैट्स, डीडीए, प्रसाद नगर, नई दिल्ली–5

पुस्तक का तीसरा लेख मानव अधिकार और राष्ट्रीय सुरक्षा पर केन्द्रित है। इसमें लेखक ने मानव की आजादी और उसकी गरिमा के महत्व को रेखांकित करते हुए लिखा है कि मनुष्य का सर्वांगीण विकास तभी संभव है जब वह सामाजिक जीवन की परिभाषा को अपने अनुरूप ढाल ले। इस संदर्भ में वह महान दार्शनिक रूसो का कथन उद्धृत करता हुआ कहता है कि मनुष्य स्वतंत्र पैदा हुआ है पर हर जगह वह जंजीरों से जकड़ा हुआ है। लेखक यह भी मानता है कि मानव अधिकारों के प्रति अन्तरराष्ट्रीय जागरूकता एक दिन का परिणाम नहीं है अपितु सदियों के विकास की यात्रा है।

पुस्तक का चौथा लेख भूख, मानव अधिकार और राष्ट्रीय सुरक्षा पर केंद्रित है। आज सम्पूर्ण विश्व में भूख से हुई मौतों की खबरें अखबारों की सुर्खियों में छाई रहती हैं। लेखक की दृष्टि में ये सुर्खियां विश्व पटल पर न केवल एक कलंक हैं अपितु संपूर्ण मानवता के लिए अभिशाप है। लेखक ने इस लेख के माध्यम से यह बताया है कि मानव अधिकारों का अर्थ मनुष्य को सहज एवं स्वाभाविक रूप से प्राप्त अधिकारों से है। इस संबंध में सर्वोच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश श्री एच. आर. खन्ना के लेख के एक अंश को लेखक उद्धृत करते हैं – "अत्याचार के विरुद्ध प्राचीरों की प्रतिरक्षा अन्ततः लोगों के हृदय में है। संविधान, न्यायालय एवं कानून इन प्राचीरों को सफल या मजबूत बनाने में मदद कर सकते हैं। वे इन प्राचीरों का न तो स्थान लेती हैं और न ही विकल्प दे सकती हैं।" लेखक की दृष्टि में उपर्युक्त उद्धरण मानव अधिकार, भारतीय संविधान एवं राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए मानक सिद्ध हो सकते हैं।

पुस्तक का पांचवां लेख भारतीय परम्परा, मानव अधिकार एवं स्त्री शक्ति की सुरक्षा की अवधारणा पर केंद्रित है। लेखक ने भारत की प्राचीन परम्परा का उल्लेख करते हुए कहा है कि हमारे ऋषियों और मुनियों में मानव अधिकारों की रक्षा का समाधान का मार्ग उनके पास मौजूद था क्योंकि भारतीय ऋषियों और मुनियों ने मानव अधिकारों के दमन को न केवल प्रत्यक्ष देखा है अपितु उसका साक्षात अनुभव भी किया है इसलिए गोस्वामी तुलसीदास की यह पंक्ति "जासु राज प्रिय प्रजा दुखारि सो नृप अवसी नरक अधिकारी" मानव अधिकार की चेतना जगाने में मील का पत्थर साबित हो सकती है। वैसे भी हमारे प्रमुख ग्रंथ रामायण और महाभारत इस बात के गवाह हैं।

इस पुस्तक का छठा लेख आतंकवाद या मानव अधिकार पर केन्द्रित है। आज विश्व आतंकवाद के साये में जी रहा है। अतः 21वीं शताब्दी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं विचारणीय विषय आतंकवाद एवं मानव अधिकार हो सकता है। आज सम्पूर्ण संसार में मानव अधिकारों के संरक्षण और संवर्धन का आंदोलन विश्व स्तर पर चलाया जा रहा है, उससे यह पता चलता है कि लोग अपने अधिकारों के प्रति कितने सजग और जागरूक हैं साथ ही वे इसके समक्ष आने वाली चुनौतियों का सामना करने के लिए तत्पर है। प्रस्तुत लेख आतंकवाद एवं मानव अधिकारों के विविध संदर्भों का गहराई से पड़ताल करता है साथ ही वह मानव अधिकारों व आतंकवादियों को कानूनी चश्मे से भी देखने का प्रयास करता है। वैसे यह एक विवाद का विषय है कि आतंकवादियों के मानव अधिकारों की रक्षा हो या न हो।

पुस्तक का सातवां लेख मानव अधिकारों के हनन को रोकने पर केन्द्रित है। इस लेख में लेखक ने मानव अधिकारों के इतिहास की दुहाई देते हुए अनेक उद्धरणों के सहारे यह बताने की कोशिश की है कि संपूर्ण विश्व में मानव अधिकारों का हनन बिना सामाजिक आन्दोलन के नहीं रोका जा सकता। इसके लिए इच्छा शक्ति, नैतिक बल और बुद्धि बल तीनों का होना आवश्यक है। भारत का राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग इस संबंध में गंभीर प्रयास कर रहा है और आशा की जानी चाहिए कि निकट भविष्य में आयोग के गंभीर प्रयासों से मानव अधिकारों का यह आंदोलन आम जन मानस में बौद्धिक चेतना का विस्तार करने में सफल हो सकता है।

पुस्तक के अंतिम पांच लेख मानव अधिकार, शिक्षा, विकास तथा लोकतांत्रिक अपेक्षाओं पर केन्द्रित हैं। इन लेखों में संपादक ने मानव अधिकार शिक्षा की आवश्यकता, कर्तव्य से उन्मुख प्रणाली का विकास तथा संस्कारित एवं प्रज्ञावान शिक्षा के बौद्धिक स्तर को उठाने की पुरजोर कोशिश की है। संपादक का यह भी मानना है कि सदियों से हमारी शिक्षा प्रणाली में असमानता का स्वर सुनाई पड़ता है। वर्ण व्यवस्था पर आधारित भारतीय समाज में हर वर्ग के लिए शिक्षा हेतु आयु का निर्धारण किया गया है। वैदिक चिन्तन, धर्मसूत्र, इतिहास, पुराण और दण्ड नीति का अध्ययन केवल ब्राह्मण के बच्चों के लिए ही था। इसीलिए भारत सरकार ने एक कानून बनाते हुए कहा कि शिक्षा पर किसी वर्ग विशेष का अधिकार नहीं होना चाहिए बल्कि यह एक सार्वभौमिक अधिकार है और इस शिक्षा में भारतीय जीवन पद्धति के मानकों का भी निर्धारण किया जाए।

प्रस्तुत पुस्तक मानव अधिकार एवं विकास के आइने को एक साथ दिखाने वाला संग्रहणीय दस्तावेज हो सकता था यदि इस पुस्तक में संग्रहीत विभिन्न लेखों का संपादन एवं संशोधन ठीक प्रकार से किया गया होता। कई लेख एक ही विषय वस्तु के इर्द–गिर्द मंडराते रहते हैं जिसके कारण पुस्तक उबाऊ एवं बोझिल हो गई है। जिस विषय वस्तु को लेकर पुस्तक का आरंभ किया गया था अंत में उसका क्रम टूट सा गया है जो संपादक की एक बहुत बड़ी भूल ही नहीं अपितु अनदेखी भी कही जा सकती है। अच्छा होता, संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार संबंधी अभिसमयों, संधिपत्रों का हिंदी अनुवाद दिया गया होता जो भारत में अंग्रेज़ी न जानने वाले अधिसंघ समूह के लिए उपयोगी सिद्ध होता है। पुस्तक की भाषा सरल, सुबोध व बोधगम्य है। फिर भी कुल मिलाकर यह पुस्तक मानव अधिकार से जुड़े कार्यकर्त्ताओं, शोधार्थियों, विद्यार्थियों के लिए उपयोगी एवं सूचनाप्रद है।

पुस्तक का नाम – मानव अधिकार एवं राष्ट्रीय सुरक्षा
संपादक – प्रो0 राजेन्द्र प्रसाद
प्रथम संस्करण – 2006
प्रकाशक – राधा पब्लिकेशन्स, दरियागंज
मूल्य – 500 रु0

आयोग के प्रकाशन

क्रम सं0	प्रकाशन	मूल्य
1.	महत्वपूर्ण अनुदेश / दिशानिर्देश	50.00
2.	महत्वपूर्ण अनुदेश / दिशानिर्देश (संशोधित)	75.00
3.	लार्ज वाल्यूम पारएन्टेरल्सः टुवर्ड जीरो डिफेक्ट	205.00
4.	स्टेट ऑफ दी आर्ट फॉरेंसिक साइंसः फॉर बेटर–क्रिमिनल जस्टिस	110.00
5.	क्वालिटी एश्योरेंस इन मेंटल हेल्थ	250.00
6.	हैंड बुक ऑन ह्यूमन राइट्स फॉर ज्यूडिशियल ऑफिसर्स	220.00
7.	मानव अधिकार शब्दावली (अंग्रेजी–हिंदी)	230.00
8.	अनुप्रयुक्त मानव अधिकार शब्दावली (हिंदी–अंग्रेजी)	250.00
8.	जर्नल ऑफ दी नेशनल ह्यूमन राइट्स कमीशन–खंड–II, 2003	150.00
9.	जर्नल ऑफ दी नेशनल ह्यूमन राइट्स कमीशन खंड–III, 2004	150.00

(निःशुल्क)

1. नेशनल कांफ्रेन्स ऑन ह्यूमन राइट्स एण्ड एच.आई.वी. / एड्स (24–25 नवम्बर, 2000 नई दिल्ली)
2. नेशनल सेमिनार–कम–पब्लिक कन्सल्टेशन ऑन रेसिज्म, रेशियल डिस्क्रिमिनेशन, जीनोफोगिया एण्ड रिलेटेड इनटॉलरेन्स–12 रिपोर्ट (11 अगस्त, 2001, नई दिल्ली)
3. प्रोफेशनल पॉलिसिंग–थीम्स, ह्यूमन राइट्स इनवेस्टिगेशन एण्ड इंटरव्यूइंग स्किल्स, ह्यूमन राइट्स एण्ड कस्टडी मैनेजमेंट (नेशनल ह्यूमन राइट्स एण्ड ब्रिटिश काउंसिल)
4. जर्नल ऑफ दी नेशनल ह्यूमन राइट्स कमीशन
5. मानवाधिकारः नई दिशाएँ (वार्षिक हिंदी पत्रिका)
6. भारतीय संस्कृति में मानव अधिकार की अवधारणाएँ
7. नेशनल ह्यूमन राइट्स कमीशन्स गाइडलाइन्स फॉर स्पॉन्सरिंग रिसर्च
8. नेशनल ह्यूमन राइट्स ब्रॉशर

9. रीजनल कन्सल्टेशन ऑन पब्लिक हेल्थ एण्ड ह्यूमन राइट्स (10.11 अप्रैल, 2001, नई दिल्ली)

10. इन्फॉर्मेशन किट ऑन ट्रैफिकिंग इन वीमन एंड चिल्डरन

11. डिस्क्रिमिनेशन बेस्ड ऑन सेक्स, कास्ट, रीलिजियन एण्ड डिसएबिलिटी

12. रिपोर्ट ऑन प्रिवेंशन ऑफ एट्रोसीटीज एगेंस्ट सेड्यूल्ड कास्ट

13. ए गाइड बुक फॉर मीडिया ऑन सेक्सुअल वायलेन्स एगेंस्ट चिल्डरन

14. डिसएबिलिटी मैनुअल

15. अपने अधिकार जानें (इस श्रृंखला की आठ पुस्तिकाएँ हैं)

(अंग्रेजी में प्रकाशित/हिंदी में प्रकाशनाधीन)

16. ह्यूमन राइट्स एजुकेशन फॉर बिगनर्स–नरेटिव्स ऑफ ह्यूमन राइट्स मूवमेंट इन इंडिया

17. फ्रॉम बॉण्डेज टू फ्रीडम, एन एनालिसिस ऑफ इंटरनेशनल लीगल रेजीम ऑन ह्यूमन ट्रैफिकिंग